वीतराग पंथ के
राही को
हमारा शतः शतः
प्रणाम !

पूज्य गुरुदेव

श्री कानजी स्वामी

को

हमारी विनम्र

अभिनन्दनांजलि !

मुकंद लाल गुलशन राय जैन

खंडसारी निर्माता तथा कमीशन एजेन्ट्स

४५-बी, नई मण्डी,

मुजफ्फर नगर (उ. प्र.)

उद्योग :

अमृत शुगर फैक्टरी

शेर नगर, मुजफ्फर नगर (उ. प्र.)

गुलशन खंडसारी उद्योग

दघेड़ू, मुजफ्फर नगर (उ. प्र.)

दूरभाष :

कार्यालय : १०५

शेर नगर : ३०४

दघेड़ू : ३६

निवास : १०५, ६६२, ८७६

शुभकामनाओं सहित

सिद्धोमल एण्ड संज

चावड़ी बाजार

दिल्ली-६

'सच्चे मुनि का स्वरूप जो जानते नहीं और कुलिंग को भी मुनि के रूप में जो मानता है, वह वास्तव में मुनि को मानता ही नहीं, और न वह मुनि भक्त है।'

अहो! गुरुदेव, हम आपके अत्यन्त आभारी हैं। आपने धर्म को ठीक-ठीक समझने की अलौकिक दृष्टि प्रदान की है।
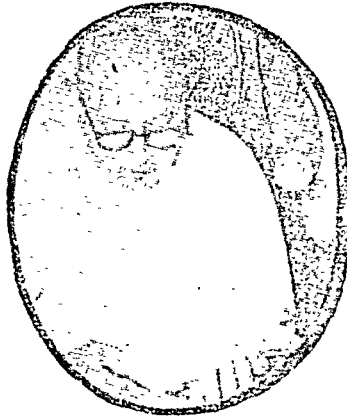
शुभकामनाओं सहित

सुरेन्द्र कुमार जैन

परम उपकारक
पूज्य गुरुदेव
श्री कानजी स्वामी
को
विनम्र विनयाञ्जंलि

शकुन प्रकाशन
३६२५, नेताजी सुभाष मार्ग,
दिल्ली-११०००६
दूरभाष : २७१८१८

भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष में प्रकाशित

नैतिक विचार मासिक
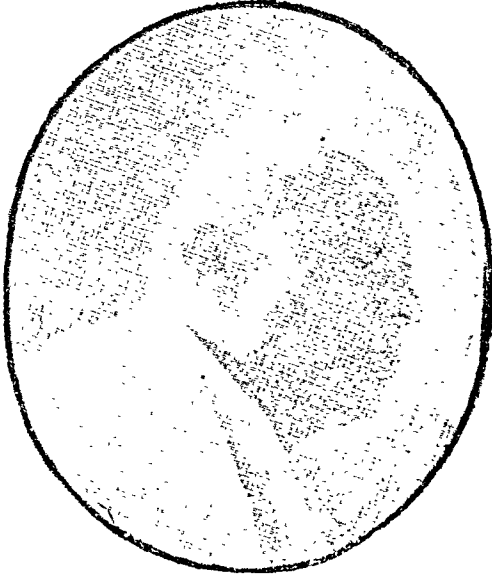
परामर्शक
श्री भगत राम जैन

●

सम्पादक
विनोद कुमार जैन

●

कलापक्ष
सुधीर

वर्ष : २ अंक : ६
मई १९७६

वार्षिक शुल्क : १० रुपये
एक प्रति : १ रुपया
प्रस्तुत अंक : ३ रुपये

समर्पण !
वीतराग पथ
के
वीर पथिकों
को ! ! !

अनुक्रम

विशिष्ट लेख

आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व भगवान् महावीर के गौतम गणधर के बाद तृतीय स्थान प्राप्त अनेक जैन शास्त्रों के रचनाकार आचार्य कुन्द कुन्द देव हुए। आपने समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, रयणसार आदि अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थों की रचना की एवं विश्व के समक्ष भगवान् महावीर की वाणी को बेजोड़ साहित्य के रूप में प्रस्तुत किया। शास्त्रारम्भ से पूर्व मंगलाचरण में गणधर देव की तरह आपको स्मरण किया जाता है जबकि कुन्द कुन्द न महावीर ही थे और न गणधर ही। ऐसा इसलिए कि जो कार्य गणधरों ने किया, वही कुन्दकुन्दाचार्य ने किया। अतः उन्हें कलिकाल सर्वज्ञ तक कहा जाता है।

वर्तमान युग में पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी ने वही क्रान्ति उत्पन्न की है जो कुन्दकुन्दाचार्य ने की थी।

गुरुदेव के विषय में मैं यहाँ कुछ भी कहना उचित नहीं समझता क्योंकि समस्त जैन आपसे परिचित ही हैं।

चिर प्रतीक्षित विशेषांक आपके कर-कमलों में है। इस विशेषांक के मुख्य भाग का सम्पादन प्रसिद्ध तत्ववेत्ता डा० हुकम चन्द जी 'भारिल्ल', जयपुर ने किया है। मैं आपका अत्यन्त आभारी हूं कि आपने अपने बहुमूल्य समय में से थोड़ा समय इस विशेषांक के लिए मुझे प्रदान किया।

विशेषांक आपको कैसा लगा? इस विषय पर आपके मत-अभिमत, आलोचना-समालोचनाओं का सादर आमन्त्रण है। इस विशेषांक में जो भी त्रुटि रही हैं, वह केवल मेरी अपनी है, अन्य किसी की नहीं। कृपया ध्यान रखें।

मैं यहाँ अपने ममेरे भ्राता श्री अनिल कुमार जैन, रिसर्च स्कालर का आभार माने हुए नहीं रह सकता। सम्भवतः उसके सहयोग के बिना मैं समय पर प्रकाशित न कर पाता।

—विनोद कुमार जैन

श्रद्धा सुमन

★

शुभ संदेश

★

ऐसा दुर्लभ अवसर पाकर के भी हे जीव ! यदि तूने तेरे स्वज्ञेय को न जाना और स्वाश्रय से मोक्षमार्ग को न साधा तो तेरा जीवन व्यर्थ है। यह अवसर चला जायेगा तब तू पछतायेगा। इसीलिये जाग !...और स्वहित में तत्पर बन !

—गुरुदेव के बोल
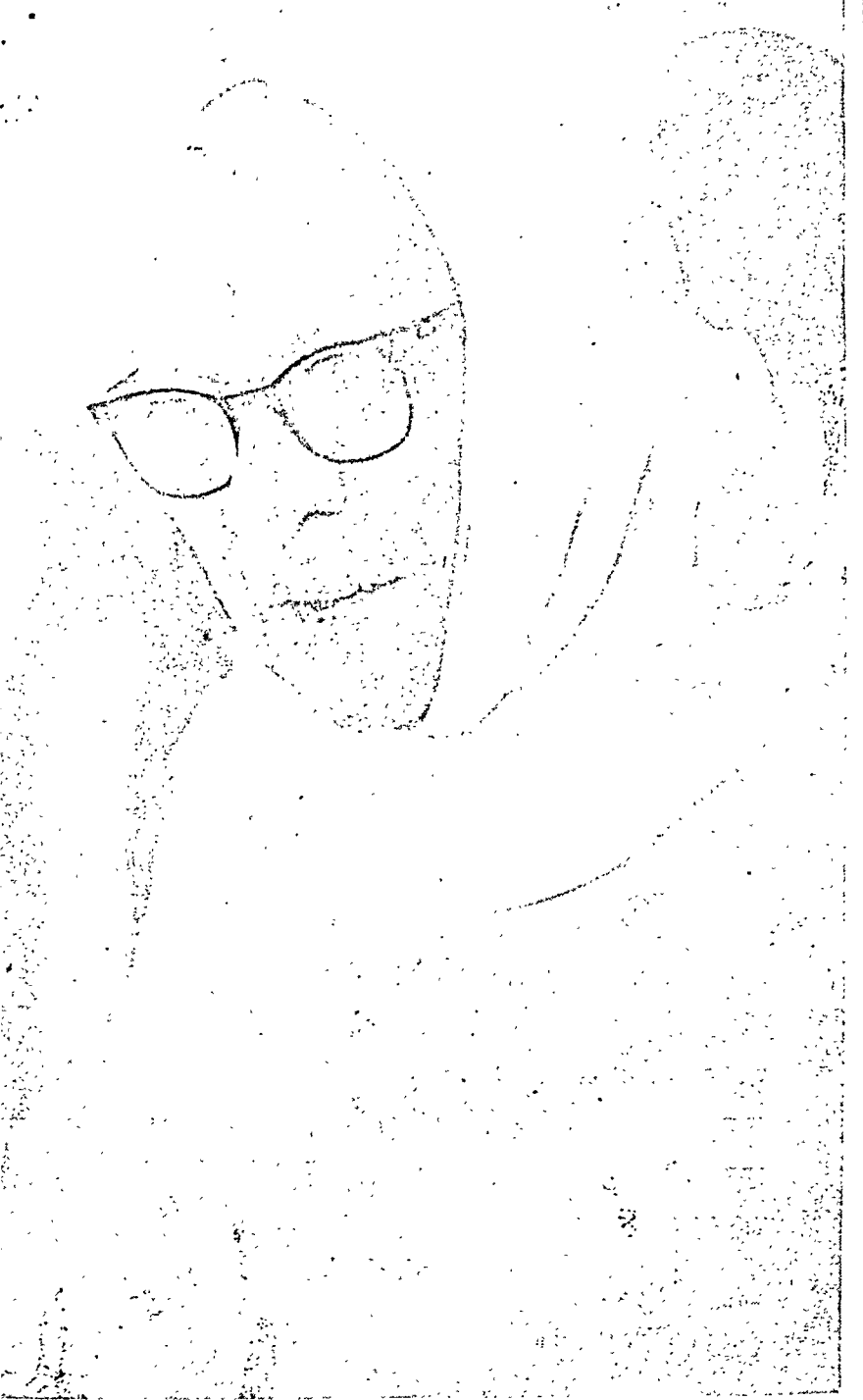
मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आगमपथ भगवान महावीर की 25 वीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में परम पूज्य, गुरुदेव श्री कानजी स्वामी जी के जीवन पर एक विशेषांक प्रकाशित कर रहा है।

स्वामी जी ने वीतराग धर्म का प्रचार-प्रसार करके जैन धर्म व समाज का बहुत बड़ा उपकार किया है। वास्तव में सम्यक्दर्शन, ज्ञान व चारित्र धर्म की पुर्नस्थापना में उनका बहुमूल्य स्थान रहा है जिसका जैन समाज सदैव ऋणी रहेगा।

पूज्य गुरुदेव चिरायु हों व युगों-युगों तक हमें अपने वचनामृत से उपकृत करते रहें, यही मेरी उनके पावन चरणों में विनम्र श्रद्धांजलि है।

विशेषांक की सफलता की कामना करता हूँ।

—साहू शान्ति प्रसाद जैन

आगमपथ के विशेषांक—आध्यात्मिक संत कानजी स्वामी—का जो उपक्रम आपने प्रस्तुत किया है इसके लिए आपको धन्यवाद। सन्त श्री कानजी स्वामी जी ने जैन समाज में नई जागृति और नव चैतन्य का निर्माण किया है। समाज में फैली हुई अनुचित रूढ़ियां और अन्य प्रकार विशेषतः मिथ्या तत्वज्ञान के बारे में आपका प्रचार बहुत ही प्रभावित हो रहा है। स्वामी जी जो समाज को मार्गदर्शन कर रहे हैं उसके उसके लिए उनका अभिनन्दन। आशा है समाज को बहुत दिनों तक उनका नेतृत्व मिलेगा।
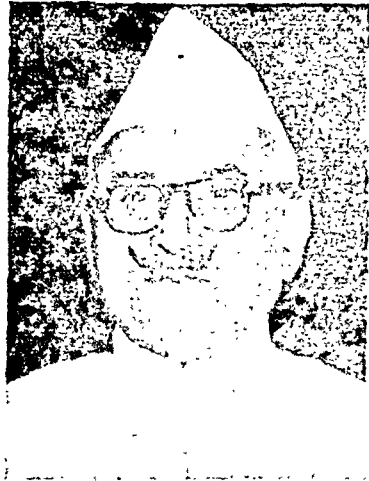
— सेठ लालचन्द हीराचन्द

आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने जिस मोक्ष मार्ग का उपदेश दिया व मुक्ति मार्ग का मर्म समझाया उस मार्ग को वर्तमान युग में स्वधर्मी भूले हुए थे व अन्धकार में भटक रहे थे। अब दो हजार वर्ष पश्चात् पूज्य स्वामी जी ने उसी मोक्ष मार्ग का अनुसरण कर हमें मुक्ति का मार्ग दर्शाया है जिसके लिए समस्त दिगम्बर जैन समाज ऐसे महान् सन्त का सदैव ऋणी रहेगा।

पहले जहां सौराष्ट्र में दिगम्बर जैन मंदिर तो दूर दिगम्बर जैन धर्म पालक भी दृष्टिगोचर नहीं होता था अब वहां लाखों दिगम्बर जैन बसते हैं तथा सैकड़ों मन्दिरों व जिन बिम्बों का निर्माण आपकी प्रेरणा से हुआ है। जो शास्त्र आज से 50-60 वर्ष पूर्व तक विद्वानों व पंडितों के पठन व वाचन के योग्य समझे जाते थे उन शास्त्रों को आज लाखों गृहस्थी अत्यंत श्रद्धा से पढ़ते हैं। यह सब स्वामी जी की प्रेरणा व उपदेशों का फल है।

पूज्य स्वामी जी चिरायु हों व युगों तक उनके उपदेशों से लाभान्वित होते रहें यही कामना है।

—साहू श्रेयास प्रसाद जैन

गत त्रिदशी में स्वकुल क्रमागत परम्परा को छोड़कर वीतराग दिगम्बर धर्म में समागत श्री कानजी स्वामी जी की सम्यग्दर्शन प्रधान प्रवचन प्रणाली वर्तमान भोग प्रधान भौतिक युग में संतप्त प्राणियों के लिए आकर्षण का केन्द्र बनी है, यह प्रशंसनीय विषय है।

आप स्वामी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर आगमपथ का विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं। विशेषांक की सफलता के लिये मेरी शुभ कामनायें हैं।

—सर सेठ भागचन्द सोनी
अजमेर

यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि सौराष्ट्र में दिगम्बर जैन मन्दिर आदि के निर्माण और सहस्रों की संख्या में दिगम्बर जैन धर्मानुयायियों की वृद्धि तथा

सौराष्ट्र के बाहर देश में जगह-जगह आधुनिक वातावरण में भी आध्यात्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय के प्रति विशेष रुचि की वृद्धि का श्रेय श्री कानजी स्वामी जी और उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व को है।

सं० 2001, 2002 और 2003 में मेरे पूज्य पिताजी सर सेठ हुकमचन्द जी विद्वतमंडली एवं कुटुम्ब सहित सोनगढ़ गये थे और वहां के वातावरण से प्रभावित होकर 7101 रुपए जैन स्वाध्याय मन्दिर एवं श्री कुन्दकुन्द प्रवचन मंडप के निर्माण में अर्पित किये थे। उन दिनों इस ओर की समाज का परिचय व आवागमन नहीं हुआ था अब तो सौराष्ट्र का सम्बन्ध सब ओर हो चुका है और ग्रन्थ प्रकाशन, शिक्षण प्रशिक्षण शिविर, परीक्षालय इत्यादि से वहां के साहित्य का प्रचार प्रसार हो रहा है। स्वामी जी भी यात्रा, प्रतिष्ठा व प्रवचन के उद्देश्य से अन्य प्रान्तों में भ्रमण कर चुके हैं। इस ८6 वर्ष की वृद्धावस्था में भी सोत्साह आपका भ्रमण और प्रवचन हो रहे हैं।

आगम पथ मासिक पत्र द्वारा भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव वर्ष के पुनीत अवसर पर स्वामी जी के जीवन दर्शन सम्बन्धी प्रस्तुत विशेषांक योजना की सराहना करते हुए मेरी हार्दिक भावना है कि समाज में मनोमालिन्य और पृथक्त्व की भावना दूर होकर परस्पर वात्सल्य और सौहार्द की वृद्धि हो ताकि समाज में ऐक्य कायम रहे और जैन शासन एवं वीतरागवाणी की उत्तरोत्तर प्रभावना हो।

—सेठ राजकुमार सिंह कासलीवाल
इन्दौर

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाण महोत्सव के सदर्भ में आपने तीर्थंकर महावीर एवं वीतराग वाणी के समर्थ उद्घोषक व प्रबल प्रसारक आध्यात्मिक संत श्री कानजी स्वामी जी के जीवन दर्शन पर आगमपथ का विशेषांक प्रकाशित करने का विचार किया है।

श्री पूज्य कानजी स्वामी जी वर्तमान

जगत के समर्थ आध्यात्मिक प्रवक्ता हैं। उनकी वाणी में ओज है! प्रवचनों में जैन तत्वों की निश्चयात्मक दृष्टि से विशेषतायें अंतर्निहित होती है। यह उन्हीं की देन है कि महर्षि कुन्द कुन्द के आध्यात्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय समाज में बहुतायत से होने लगा है एवं लोगों में आध्यात्मिक जागृति एवं रुचि उत्पन्न हुई है।

मैं विशेषांक की हार्दिक सफलता चाहता हूं।

—रायबहादुर हरक चंद पांड्या,
रांची

भगवान् श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव ने समयसार जी की पांचवीं गाथा में अपने निज वैभव के द्वारा एकत्व-विभक्त आत्मा को दिखलाया है, उस निज वैभव की प्राप्ति के साधनों में एक साधन जिनागम का सेवन भी कहा जाता है। प्रवचनसार की गाथा 42 में प्रतिपादन किया है कि बहिर्मोहदृष्टि आगम कौशल्य और आत्म-ज्ञान के द्वारा नष्ट हो जाती है। पंचास्तिकाय की गाथा 172 में लिखा है कि शास्त्र तात्पर्य वीतरागता है। आगम का ऐसा माहात्म्य जिनेन्द्र कथित शास्त्रों में अनेक जगह बतलाया है।

आगम पथ आध्यात्मिक संत पूज्य श्री कानजी स्वामी का विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं, जानकर अत्यन्त प्रसन्नता होती है। वह आगमपथ जीवों को एकत्व-विभक्त आत्मा का दर्शन करावें, बहिर्मोहदृष्टि नष्ट करने का उपाय ज्ञात करावें तथा शास्त्र तात्पर्यरूप वीतरागता प्राप्त कराने लिए पथ पदर्शन करें तभी उसके प्रकाशन की सफलता यथार्थ मानी जायेगी।

आगमपथ पूज्य स्वामी जी का भवतापशात्मक उपदेशामृत का प्रचार और प्रसार सतत करें और जो जगपंथ है उससे जीवों को विमुख कर मोक्षपथ पर चलने की प्रबल प्रेरणा देते रहें, ऐसी हमारी शुभ कामना है।

—नवनीत लाल सी० जवेरी,
प्रमुख, श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़
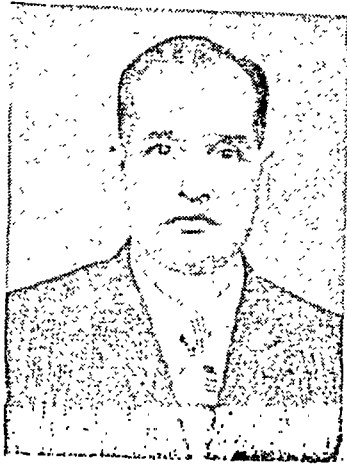
यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि आगम पथ कानजी स्वामी विशेषांक प्रकाशित कर रहा है। मुझे विश्वास है कि उसमें पूज्य स्वामी जी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर सर्वांगीण विवेचन होगा। इस पावन कार्य में मेरी शुभ कामनायें आपके साथ हैं।

— सेठ पूरनचन्द गोदीका

अध्यक्ष, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हुई है कि नैतिक मासिक आगमपथ सौराष्ट्र के सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक संत पूज्य श्री कानजी स्वामी जी के जीवन पर एक वृहद विशेषांक प्रकाशित करने जा रहा है।

पूज्य श्री कानजी स्वामी ने वीतरागता प्राप्त करने का दिगम्बर जैन समाज को जो मार्ग दिया वह सैकड़ों वर्षों से ओझल हो रहा था। क्रियाकाण्ड में ही वीतरागता प्राप्ति को मुख्य रूप से धर्म का मार्ग माना जाने लगा था ऐसे समय में इस सन्त ने धर्म का सच्चा मार्ग दिखाकर एक अद्‌भुत क्रान्ति पैदा कर दी। सौराष्ट्र में आपकी प्रेरणा से सैकड़ों दिगम्बर मंदिरों व जिन बिम्बों का निर्माण हुआ है व लाखों दिगम्बर जैन बसते हैं।

जो शास्त्र आज से 50-60 वर्ष पूर्व तक विद्वानों व पण्डितों के पठन व वाचन के योग्य समझे जाते थे उन शास्त्रों को आज लाखों लोग अत्यंत सरसता व श्रद्धा से पढ़ते हैं यह सब पूज्य स्वामी जी की प्रेरणा व उपदेशों का फल है।

पूज्य स्वामी जी चिरायु हों व युगों तक उनके उपदेशों से लाभान्वित होते रहें यही कामना है।

—श्रीमती लेखवती जैन

उपाध्यक्ष, हरियाणा विधान सभा, चण्डीगढ़

मुझे यह जानकर प्रसन्नतता हुई कि आगम पथ का 'संत कानजी स्वामी' पर विशेशांक प्रकाशित कर रहे हैं। ऐसे आध्यात्मिक संतों के जीवन पर विशेपांक प्रकाशित करना वास्तव में समाज की बड़ी भारी सेवा है। आशा है उनके त्यागमय जीवन की समाज को भरपूर जानकारी मिलेगी। गुरुदेव ने वीतराग धर्म का शुद्ध स्वरूप बता कर समाज का बड़ा उपकार किया है। समाज उनका सदैव ऋणी रहेगा।

आपके प्रयत्न की पूर्ण सफलता की कामना करता हूं।

—अक्षय कुमार जैन

सम्पादक, नवभारत टाइम्स, दिल्ली।

यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि आप 'आगम पथ' का एक "सद्‌गुरुदेव कानजी स्वामी" विशेपांक निकाल रहे हैं। कलियुग में परमागम के रहस्यौद्‌घाटक एवं परम भक्त कानजी स्वामी के जीवन और सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने वाला विशेपांक निकाल कर 'आगम पथ' अपने नाम को सार्थक सिद्ध कर रहा है। आगम का रहस्य जाने बिना उसके पथ पर कैसे चला जा सकता है? आगम पथ पर चलने के पूर्व उसका रहस्य जानना आवश्यक है। पूज्य गुरुदेव पर परमागम का परम उपकार है जिसका रहस्य पाकर उन्मार्ग छोड़ वे सन्मार्ग पर आये हैं और स्वामी जी का हम सब पर परम उपकार है क्योंकि आगम पथ का रहस्य खोल कर हमें सन्मार्ग दिखाया है।

आपके इस महान् कार्य की मैं हृदय से अनुमोदना करता हूं और चाहता हूं कि आगम पथ इस विशेपांक में ही नहीं सदा-सदा आगम का मर्म उद्‌घाटित करता रहे।

—नेमीचन्द पाटनी

मंत्री, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि नैतिक मासिक आगम पथ सौराष्ट्र के सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक संत पूज्य श्री कानजी स्वामी जी के जीवन पर एक वृहद विशेपांक प्रकाशित कर रहा है।

आध्यात्मिक सन्त श्री कानजी स्वामी ने वीतरागता प्राप्त करने के हेतु दिगम्बर जैन समाज को जो मार्ग दिया वह स्तुत्य है। इस सन्त ने दिगम्बर समाज में एक अद्भुत क्रान्ति पैदा कर दी है। जिस वीतराग मार्ग को लोग भूले हुए थे उन्हें सच्चा मार्ग बता कर एक नयी दिशा प्रदान की है।

सैकड़ों जिन मंदिरों का निर्माण व सौराष्ट्र में जहां दिगम्बर जैन पालक देखने को भी नहीं मिलते थे अब वहां लाखों दिगम्बर जैन रहते हैं यह सब भी आपकी प्रेरणा व प्रभाव का फल है। अब लगभग प्रत्येक साधारण घर में भी वे दिगम्बर जैन शास्त्र आपको मिल जायेंगे, जो पहले पंडित लोग ही पढ़ते थे। क्या यह समाज में क्रान्ति नहीं है ?

पूज्य स्वामी जी चिरायु हों व आपका प्रयास सफल हो यही कामना है।

—सेठ देवकुमार सिंह

कार्याध्यक्ष, भगवान महावीर दिगम्बर निर्वाण

महोत्सव सोसायटी, मध्य प्रदेश

मुझे यह जान कर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि ऐसा महत्वपूर्ण कार्य करने का निर्णय आगम पथ ने लिया है।

वर्तमान समय में जब आध्यात्मिकता की ज्योति लोप हो गयी थी और क्रिया-काण्ड, बाहरी दिखावा एवं लौकिक व्यवहार में ही धर्म माना जाने लगा था। शास्त्रों को गूढ़ समझ साधारण जन अध्ययन नहीं करते थे और वे केवल विद्वानों तक ही सीमित थे ऐसे समय में पूज्य गुरुदेव ने सच्चे वीतराग धर्म का प्रचार कर हमारा ध्यान वास्तविक धर्म की ओर आकर्षित किया और बताया कि— जिन धर्म तो यह है। जब तक पालन न करोगे मुक्ति न मिलेगी।' हमने पाया कि वास्तविक अमृत तो यही है अभी तक केवल अंधेरे में ही भटक रहे थे।

पूज्य स्वामी जी भगवान् कुन्द कुन्दाचार्य की वाणी को फिर से उजागर किया है। सुप्त जैन समाज नयी चेतना का आह्वान किया है। समाज उनका सदैव ऋणी रहेगा।

में उनके दीर्घायु जीवन की कामना करता हूं व आशा करता हूँ कि आगम पथ उनके विचारों के अनुरूप ही विशेषांक प्रकाशित करेगा।

—महावीर प्रसाद जैन, एडवोकेट
अध्यक्ष, अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद्, हिसार

पूज्य श्री कानजी स्वामी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आप एक विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं जानकर मन हर्षित हुआ।

मैंने पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों को कई बार सुना है और उनके अनेकों प्रवचनों पर मनन भी किया है। मैंने पाया कि मूल जैन धर्म तो वही है जिसका वाचन गुरुदेव अपने प्रवचनों में करते हैं, चाहे हम उसे बाहरी क्रिया-कलापों अथवा स्थूल त्याग में ढूंढें अथवा मूढ़ आस्था में। मैं उनकी शान्त प्रवृति, अद्भुत प्रवचन शैली एवं निज आनन्दमयी मुद्रा से अत्यंत प्रभावित हुआ हूं।

मैं कामना करता हूं कि गुरुदेव चिरायु हों व युगों युगों तक वीतराग मार्ग को बताते रहें यही मेरी विनम्र श्रद्धांजलि है।

—सुकुमार चन्द्र जैन
महामंत्री—आ० इ० दिगम्बर भगवान महावीर
निर्वाण महोत्सव समिति (केन्द्रीय)
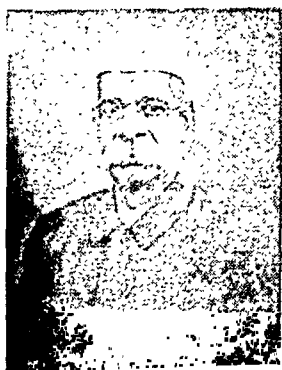
देवं गुरु श्रुतं वन्दे, धर्मं शुद्धं च-विन्दते।
ति अर्थ अर्थ लोकंच-स्नानं च शुद्धं जलं॥

"आतम ही है देव निरंजन,
आतम ही सद्गुरु भाई।
आतम शास्त्र धर्म आतम ही,
तीर्थं आतम ही सुखदाई॥
आतम मनन ही है रत्नत्रय,
पुरित अवगाहन सुखधाम।
ऐसे देव, शास्त्र, सद्गुरुवर,
धर्म तीर्थ सतत प्रणाम॥"

तीर्थंकर महावीर के 2500 वें निर्वाण महोत्सव वर्ष के अंतर्गत 'आगमपथ' द्वारा तीर्थंकर महावीर एवं वीतराग वाणी के समर्थ उद्घोषक, महान् धर्म प्रचारक आध्यात्म वेत्ता, तत्व चिन्तक, मंगल ज्ञानमूर्ति, संत प्रवर, परम पूज्य सद्गुरुदेव श्रद्धेय श्री कानजी स्वामी जी के जीवन एवं दर्शन पर विशेषांक का प्रकाशन समाज के लिये महान गौरव की बात है।

"संतों का समग्र जीवन ही उनका दर्शन हुआ करता है और उनके कार्य जनहितकारी हुआ करते हैं।" ऐसे आत्म तत्वदर्शी स्व और पर के कल्याणकर्ता **तारणतरण** को हमारा शत् शत् अभिनन्दन......इन अमर आशाओं के साथ वह चिरायु हों और युग युग तक अविरल ज्ञान की धारा प्रवाहित करते रहें।

—सेठ भगवान दास शोभालाल जैन
सागर (म० प्र०)

तीर्थंकर महावीर के 2500 वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर आत्मार्थी पूज्य श्री कानजी स्वामी जी के जीवन दर्शन पर आगमपथ विशेषांक प्रकाशित कर रहा है यह अत्यन्त प्रसन्नता एवं गौरव का विषय है।
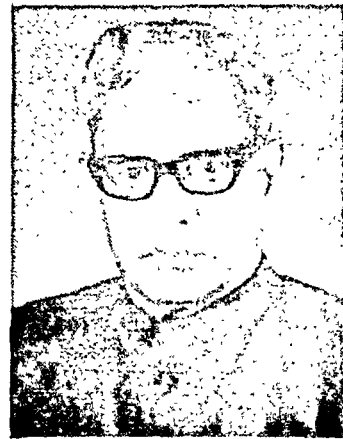
पूज्य श्री कानजी स्वामी जी ने दिगम्बर जैन धर्म को नवजीवन प्रदान किया और अपनी मृदु प्रेरणा से धर्म के समस्त संस्कारों को निहित करने में समाज को एक नयी दिशा प्रदान की।

मैं भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी की ओर से विशेषांक की सफलता एवं शुभ कामनायें चाहता हूं।

—जयंती लाल लल्लूभाई परिख
महामंत्री—भा० दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, बम्बई

आध्यात्मिक सन्त श्री कानजी स्वामी जी के द्वारा वीतरागता प्राप्त करने हेतु दिगम्बर जैन समाज को वर्तमान समय में जो मार्ग दर्शन मिला वह सैकड़ों वर्षों से ओझल हो रहा था। केवल क्रिया काण्ड मे ही वीतरागता प्राप्ति को मुख्य रूप में धर्म का मार्ग माना जाने लगा। ऐसे समय इस सन्त ने एक अद्भुत क्रान्ति को जन्म दिया और समाज की आंखों से भ्रम का पर्दा हटाया।

आज लाखों लोग अत्यन्त श्रद्धा से उन शास्त्रों का अध्ययन करते हैं जो किसी समय में विद्वानों के योग्य ही समझे जाते थे। सौराष्ट्र में सैकड़ों दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ एवं हजारों दिगम्बर जैन धर्म में अंगीकृत हुए यह सब स्वामी जी की प्रेरणा व उपदेशों का फल है।

पूज्य स्वामी जी चिरायु हों व युगों तक हम वीतराग वाणी से लाभान्वित होते रहें यही कामना है।

—पं० पद्म श्री सुमति बाई शाह

अध्यक्ष, महिला विद्यापीठ, सोलापुर

पूज्य गुरुदेव कानजी स्वामी जी ने जैन धर्मावलम्बियों में स्वाध्याय की रुचि जागृत की यह उनका इतना बड़ा उपकार है जिसे शताब्दियों तक नहीं भुलाया जा सकता। पूज्य कानजी स्वामी जी के सोनगढ़ ट्रस्ट द्वारा अनेकों ग्रन्थों का प्रकाशन तथा सस्ते मूल्य में उनका वितरण, प्रत्येक कार्य में समय की मर्यादा, उच्च अध्ययन, स्व एवं पर का विवेक, व्यवहार एवं निश्चय नय का अभ्यास, शुद्ध, शुभ एवं अशुभ भावों की सूक्षम चर्चा द्वारा समाज में ज्ञान पिपासा को जागृत कर जिन वाणी को शास्त्र भडारों से निकाल कर जन जन तक पहुंचाने का सफल प्रयास किया है।

मैं स्वामी जी के मंगलमय जीवन की अभिवृद्धि हेतु अपनी समस्त शुभ कामनायें प्रस्तुत करता हूं।

—बाबूलाल पाटौदी

भू० पू० सदस्य—मध्य प्रदेश विधान सभा, इन्दौर

आगमपथ पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी जी का विशेषांक प्रकाशित कर रहा है, यह महान स्तुत्य प्रयास है। ऐसे महापुरुष के पावन चरित्र का प्रकाशन आपके पत्र का गौरव ही नहीं बढ़ायेगा वरन् लोक-मांगल्य की प्रतिष्ठा भी करेगा।

चरित्र रचना आज के लोक जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता है। आज उपदेशकों की आवश्यकता नहीं, आदर्शों की जरूरत है। आपका विशेषांक एक महामानव के चरित्र का आदर्श जन-जीवन को प्रदान कर निश्चित ही राष्ट्र के चरित्र का उन्नयन करेगा। इस अर्थ में आप राष्ट्र की भी एक बहुत बड़ी सेवा कर रहे हैं।

श्री कानजी स्वामी इस युग में एक शुद्ध आध्यात्मिक क्रान्ति के जन्मदाता महापुरुष हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र में ऐसी क्रान्ति पहले शताब्दियों में नहीं हुई। वे वीतराग श्रमणों के जिस आध्यात्म का प्रतिपादन कर रहे हैं वह आज के विह्वल लोक-जीवन के लिए स्थायी शांति का एक मात्र समाधान है।

गत वर्ष भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाणोत्सव के पावन उपलक्ष में कोटा की औद्योगिक नगरी में दि० 24 मई से 8 जून तक जो 16 दिवसीय विशाल जैन दर्शन – शिक्षण — प्रशिक्षण शिविर समारोह सम्पन्न हुआ उस अवसर पर जैन दर्शन तल स्पर्शी विद्वानों के साथ हमारे किसी महाभाग्य से पूज्य श्री कानजी स्वामी जी ने भी 1 जून से 8 जून तक कोटा में मंगल प्रवास करने का अनुग्रह किया। कोटा का वायु मण्डल अध्यात्म की ध्वनियों से मुखरित हो उठा। आठ दिवस तक बहुत नजदीक से मुझे पूज्य गुरुदेव की सेवा का स्वर्ण अवसर उपलब्ध हुआ। मैं धन्य हुआ और मैंने पाया कि गुरुदेव जैसे अन्दर से उज्ज्वल हैं, भीतर से भी वैसे ही पवित्र हैं। अंतर्बहिव जीवन की यह एकरूपता आज लक्ष-कोटि लोगों को दिशा-बोध दे रही है। पूज्य गुरुदेव का वह अष्ट दिवसीय समागम मेरे जीवन का चिर-स्मरणीय प्रसंग बन गया है।

मैं अपनी शत-सहस्र श्रद्धांजलियां उन महामानव के चरणों में समर्पित करता हूं।

—जम्बू कुमार बज, कोटा (राज०)

पूज्य श्री कानजी स्वामी जी के जीवन एवं दर्शन पर एक विशेषांक प्रकाशित करने का निर्णय लेने के लिए कृपया मेरी शुभ कामनायें स्वीकारें।

एक लम्बे अरसे से यह आवश्यकता महसूस की जा रही थी और यह जरूरी भी था कि जो मार्गदर्शन एवं कार्य पूज्य श्री स्वामी जी द्वारा किया गया उसे

समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया जाये। समस्त समाज को जैन दर्शन एवं उसकी उपयोगिता का ज्ञान हो। पूज्य स्वामी जी को भगवान कुन्द कुन्दाचार्य के उपदेशों का प्रचार एवं प्रसार करने का सब से अधिक श्रेय जाता है।

भगवान कुन्द कुन्दाचार्य द्वारा रचित शास्त्रों का जन जन में प्रचारित करने का प्रमुखतम श्रेय स्वामी जी को ही है। यह जैन समाज का कर्तव्य है कि जो महान कार्य स्वामी जी द्वारा हो रहा है उसको अपने जीवन में उतारें। मैं आपको ऐसे महान् कार्य की सफलता की शुभ कामनायें भेजता हूं।

—जयचन्द डी. लोहाड़े, हैदराबाद

हमने बाल्यकाल से पुराणों की कथायें सुन एवं मन्दिर जी में अथवा स्थानीय विद्वानों से ग्रहण कर रटी हुई पूजा करके धर्म करने के समस्त उत्तरदायित्व को पूरा समझ, अपने को बहुत भाग्यशाली मान स्वर्ग प्राप्ति की अभिलाषा लिये अनेकों कार्य किये एवं समाज में भी सभी को अधिकतर ऐसा ही करते देखा तथा दशलक्षण पर्व के समय शास्त्र प्रवचनों में एवं अन्य गतिविधियों द्वारा भी इन्हीं क्रियाओं का प्रचार होते देखा। कभी भी जीव, पुद्गल के सम्बन्धों की जानकारी समझायी नहीं जाती थी। उस विषय को या तो छोड़ दिया जाता था या केवल पढ़ दिया जाता था। आचार्य कुन्द कुन्द भगवान आदि के ग्रन्थ गृहस्थों के पढ़ने के लिए नहीं हैं, यहां तक भी कहते हुए सुना गया।

पिछले 35 वर्षों से दिगम्बर जैन समाज में धर्म के नाम के समझने की चेतना जागृत हुई देखने में आ रही है तथा क्रिया काण्ड में ही धर्म है ऐसी घोर मिथ्यात्व की भावना में अन्तर आया है, वह गुजरात के प्रख्यात सन्त पूज्य श्री कानजी स्वामी जी की अद्भुत देन है। आपने दिगम्बर जैन धर्म का जो उपकार किया है उससे जैन समाज कभी भी उऋण नहीं हो सकता।

आपके श्री चरणों में मेरे श्रद्धा सुमन सादर अर्पित हैं। —भगतराम जैन

मंत्री, आल इन्डिया दिगम्बर भगवान महावीर

2500 वां निर्वाण महोत्सव सोसायटी, नई दिल्ली

विगत 50 वर्षों में कानजी स्वामी जी ने दिगम्बर जैन धर्म में जो आध्यात्मिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव किया है और और भगवान कुन्दकुन्द द्वारा वर्णित वीतराग विज्ञान की अपूर्व ज्योति द्वारा भव्य जीवों के हृदयों को आलोकित किया है, उससे जैन समाज में एक नई चेतना एवं वीतरागता की लहर आई है। जन मानस के हृदयों में स्वाध्याय द्वारा ज्ञान पिपासा तृप्त करने की भावना जागृत हुई है

आपके सद्प्रयासों द्वारा अनेकों वीतराग दिगम्बर मन्दिरों का निर्माण, प्रभावना युक्त पंच कल्याणक प्रतिष्ठायों का होना एवं लाखों व्यक्तियों द्वारा वीतराग वाणी ग्रहण कर सच्चा दिगम्बर मार्ग अपनाना, आपका ही आलोकिक प्रताप है।

सौराष्ट्र प्रदेश में जहां दिगम्बर मार्गी दृष्टिगोचर भी नहीं होता था, वहां गगनचुम्बी जैन मन्दिर व अद्भुत शान्ति प्रदायक वीतराग जिन विम्ब नजर आते हैं और उस मार्गपर लाखों जीव चल कर आत्मिक शान्ति का सुखास्वादन कर रहे हैं। आप श्री मोक्ष मार्ग के साधक वीतराग धर्म के प्रवक्ता हैं। आधुनिक युग में जहां चारों ओर पापाचार, अनाचार का बोलवाला है, अर्थयुग की प्रमुखता है वहां आपके सान्निध्य में शान्ति प्रिय सन्तोषी जैन भाई स्वाध्यायशील नजर आ रहे हैं, यह सब आप द्वारा प्रदत्त ज्ञान ज्योति का चमत्कार है।

मैं श्रद्धेय स्वामी जी के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं और प्रार्थना करता हूं कि उनके द्वारा भगवान अरहंत प्रणीत सच्चे वीतराग मार्ग का जन मानस हितार्थ प्रचार एवं प्रसार निरन्तर होता रहे।

आगम पथ का यह प्रयास सराहनीय है।

—ला० प्रेमचन्द जैन,
कोषाध्यक्ष, अ० भा० दिगम्बर भ० महावीर निर्वाण महोत्सव सोसायटी

करुणा सागर, ज्ञानघन, साक्षात् चैतन्य चमत्कार स्वरूप स्वामी जी की आगम वाणी दसों दिशाओं में गुन्जायमान हो रही है जिस ध्वनि तरंग में डूब कर असंख्य लोग आत्म रस का रसास्वादन कर रहे हैं ऐसे महान सन्त को मेरा शतः शतः नमन। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यह विशेषांक आगम के अमूल्य ग्रन्थों में अपना विशेष स्थान प्राप्त कर स्वामी जी द्वारा प्रज्वलित ज्ञान ज्योति का एक अपूर्व आदर्श होगा।

—कैलाश चन्द चौधरी
महामंत्री, मध्य प्रदेशीय दिगम्बर महावीर निर्वाण महोत्सव सोसायटी

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य श्री कानजी स्वामी का जैन समाज पर महान् उपकार है। स्वामी जी ने जिनवाणी के सतत् अध्ययन की जो महान् प्रेरणा सर्व-साधारण को दी है, उससे भ्रांतियों का निवारण व ज्ञानार्जन तो होता ही है, साथ ही वह इस भौतिक युग में अध्ययनशील व्यक्तियों को सुख और शान्ति का मार्ग भी प्रशस्त करती है।

जीव की दुखित अवस्था का कारण एकमात्र इसी का अज्ञानभाव है। अपने द्रव्य गुण पर्याय से अनभिज्ञ यह जीव पर पदार्थों को निमित्त बनाकर स्वयं अपने में सुख दुख को उत्पन्न करता है। वह चाहे तो स्वयं ही अपने स्वानुभव के आश्रय से अज्ञानजनित विभाव भावों का विनाश कर अक्षय अविनाशी सुख को प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार हमारे आत्मविश्वास को जागृत करने वाले एवं स्वानुभूतिजन्य ज्ञानकिरणों से शाश्वत सुख के पथ को आलोकित करने वाले इस महान् सत्पुरुष के पावन चरणों में, मैं अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए कामना करता हूं कि पूज्य श्री युग-युग तक इस भारत भूमि पर विद्यमान रहें एवं मुमुक्षुओं के हितार्थ मोक्षपथ को सदा आलोकित करते रहें।

—चम्पालाल म० गांधी

सैक्रेट्री, ध्रांगध्रा केमिकल वर्क्स लि०, बम्बई

पूज्य कानजी स्वामी जी ने वीतरागता सिद्धि के सोपान दिगम्बर जैन आचार्य पूज्य कुन्द कुन्द—पूज्य आचार्य पूज्यपाद स्वामी तथा पूज्य अमृतचन्द्राचार्य आदि के ग्रन्थों का न केवल सूक्ष्म अध्ययन तथा मनन किया है वरन् उनको समाजोपयोगी प्रचार प्रसार का अभूतपूर्व संस्थान स्थापित कर तत्त्व चिन्तन के सही रूप का पथ सरल किया है। क्रिया काण्ड द्वारा ही वीतरागता प्राप्ति के भ्रम को दूर करने में इन्होंने समाज में अभूतपूर्व क्रान्ति पैदा कर दी है और जाति भेद से परे मनुष्यमात्र को आत्मोत्थान का पथ प्रशस्त किया है।

पूज्य स्वामी जी दीर्घायु हों और आपके श्री मुख से वीतराग शासन की प्रभावना निरन्तर बढ़ती रहे यही कामना है।

—नेमीचन्द जैन

सचिव, साहू जैन ट्रस्ट, नई दिल्ली

जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आप आगमपथ का, विशेषांक आध्यात्मिक सन्त पूज्य श्री कानजी स्वामी पर प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है आपका प्रयत्न सार्थक होगा।

— लक्ष्मीचन्द्र जैन
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

आगम पथ का 'आध्यात्मिक संत पूज्य श्री कानजी स्वामी' विशेषांक प्रकाशित हो रहा है। यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई।

पूज्य श्री कानजी स्वामी जी की आध्यात्मिक प्रेरणा एवं विचारधारायें बहुत महत्वपूर्ण हैं एवं जैन धर्म के सिद्धान्तों को प्रगतिशील बनाने में पूर्ण सक्षम हैं तथा भविष्य में भी बराबर आपकी प्रेरणा मार्ग दिग्दर्शित करती रहेगी। ऐसे पूज्य संत के प्रति मैं श्रद्धा व्यक्त करते हुए आपके दीर्घायु जीवन की कामना करता हूं।

—नथमल सेठी
उपसभापति, केन्द्रीय दिगम्बर महावीर निर्वाण सोसायटी

पिछले 50 वर्षों में स्वामी जी द्वारा एक आध्यात्मिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव हुआ है, जिसके समस्त दिगम्बर जैन समाज में एक नई चेतना की लहर आयी है, उनके प्रभाववश दिगम्बर मन्दिरों का निर्माण हुआ, लाखों व्यक्तियों ने जैन धर्म अंगीकार किया, जहां सौराष्ट्र में दिगम्बर जैन नाम मात्र थे। अब लाखों दिगम्बर जैन वहां रहते हैं।

पूज्य कानजी स्वामी जी मोक्षमार्ग के साधक हैं। वीतराग धर्म के प्रवक्ता हैं। ऐसे युग में जब कि हम अपने परम्परागत मूल्यों को भुला बैठे थे उन्होंने आध्यात्मिकता का गहन प्रकाश किया। महावीर भगवान के 2500 वें निर्वाण महोत्सव को अति शुद्ध व धार्मिक रूप में मनाने का आपका बड़ा योगदान रहा है।

मैं स्वामी जी के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

— रमेशचन्द जैन
जनरल मैनेजर, टाइम्स आफ इन्डिया, नई दिल्ली
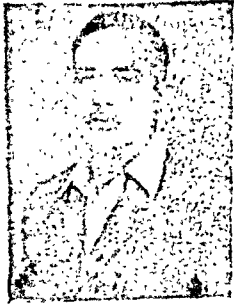
मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आगम-पथ जैन जगत के महान् आध्यात्मिक सन्त परम पूज्य कानजी स्वामी जी के जीवन दर्शन पर एक विशेषांक प्रकाशित करने जा रहा है। वीतराग भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाण महोत्सव वर्ष में जिनवाणी एवं उनके सिद्धान्तों के प्रचार व प्रसार के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम है।

यह विशेषांक स्वामी जी के विचारानुरूप जैनागम की व्याख्या प्रस्तुत करके जन जीवन का पथ प्रदर्शन करेगा, ऐसा विश्वास है।

विशेषांक की सफलता के लिये मेरी हार्दिक शुभ कामनायें।

—धन्नामल जैन
कार्याध्यक्ष, भ० महावीर 2500 वां निर्वाण महोत्सव समिति
हरियाणा प्रदेश

मुझे प्रसन्नता हुई कि आप परम पूज्य कानजी स्वामी जी के जीवन दर्शन पर एक वृहद विशेषांक प्रकाशित करने जा रहे हैं।

स्वामी जी ने दिगम्बर जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में जो योगदान दिया है वह वीतराग धर्मपालकों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आपका सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यक्चारित्र पर विवेचन एवं समयसार का गहनतम अध्ययन सभी जीवों के लिए हितकारी है।

विशेषांक की सफलता के लिये मंगल कामनायें।

दयाचन्द जैन
अध्यक्ष, आ० इ० दिगम्बर भ० महावीर
2500 वां निर्वाण महोत्सव सोसायटी, पंजाब

श्री कानजी स्वामी जी ने दिगम्बर समाज में तत्वज्ञान की दिशा में निश्चय ही जागरण किया है। जैन धर्म मूलत: आध्यात्म प्रधान धर्म है और आध्यात्म का विवेचन दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द महाराज ने समयसार में किया है। समयसार एक ऐसा ग्रन्थरत्न है, जिसकी ओर आत्मगवेषी मुमुक्षु का ध्यान जाना स्वाभाविक है।

स्वामी जी इस समयसार से प्रभावित होकर दिगम्बर परम्परा में आये और उन्होंने समयसार के अध्ययन, मनन, चिन्तन और सतत् स्वाध्याय पर बल दिया। ऐसे तत्त्व जिज्ञासु और मुमुक्षु श्री स्वामी जी के सम्बन्ध में आगमपथ का विशेषांक इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। हम उसका स्वागत करते हैं।

—डा० दरबारी लाल कोठिया

अध्यक्ष, अ० भा० दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्

श्री कानजी स्वामी सोनगढ़ (सौराष्ट्र) के एक आध्यात्म रसिक 'दिगम्बर जैन विद्वान' हैं। करीब 30 वर्ष से वे दिगम्बर जैन धर्म के आध्यात्म पक्ष से प्रभावित हुए हैं। लाखों व्यक्तियों को सधर्म का दर्शन कराया व श्रद्धानी बनाया है। सौराष्ट्र में जहां एक भी दिगम्बर जैन मन्दिर न था, बीसों मन्दिर बनवाये, पचासों प्रतिष्ठायें कराईं—तीर्थ वन्दना संघ निकाले और सर्वत्र विहार कर धर्म की प्रभावना में श्री वृद्धि की है। मैं उनके इन समस्त कार्यों श्रद्धावनत हूँ और उनके दीर्घ जीवन की भावना करता हूं।

—पं० जगमोहन लाल शास्त्री, कटनी

आध्यात्मिकता के प्रेरणा स्रोत !

आज भौतिकवाद का बोलबाला है तब विशुद्ध आत्मतत्त्व के चेतन ग्रन्थ समयसार का चिन्तवन, मनन, अनुशीलन एवं स्वाध्याय का वातावरण पैदा करके आध्यात्मिकता का जो अमृत पान पूज्य कानजी स्वामी जी ने करवाया है वह इस युग में अनुपम है और यही उनकी अनुपम देन है।

—शान्तीलाल वनमाली सेठ

भू० पू० सम्पादक—जैनप्रकाश, नई दिल्ली

आप श्री कानजी स्वामी जी के नाम पर आगमपथ का विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं, यह बहुत ही समयोचित सत्कार्य है। श्री कानजी स्वामी जी ने भूले भटकने वालों के लिये उस सम्यग्दर्शन की दिव्य ज्योति की ओर संकेत किया है, जिसके विना निखिल विश्व के सर्वजीव आज तक भव-भ्रमण कर रहे है और उसके पाये विना पता नहीं कव तक परिभ्रमण करते रहेंगे। उन्होंने आज के भौतिक युग में निमग्न लोगों को आध्यात्मिक सन्देश देकर सन्मार्ग की ओर आकृष्ट किया है, इसके लिये वे प्रत्येक धर्म-प्रेमी सन्मार्गी व्यक्ति के द्वारा प्रशंसनीय एवं समादरणीय है।

मैं आपके प्रयास की सफलता के लिये मंगल कामना करता हूं और भावना करता हूं कि वे शतायुष्क होने तक वरावर सन्मार्ग प्रचार एवं प्रसार में अग्रसर वने रहें।

—पं० हीरालाल शास्त्री, ब्यावर

मैंने अन्य अनुयोग ग्रन्थों के साथ-साथ श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य के समयसार आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों का अनेक वार मनोयोग पूर्वक अध्ययन किया, किन्तु मुझे तो श्री कानजी स्वामी जी के प्रवचनों में रंचमात्र भी अन्तर नहीं दिखा। उन्होंने कुन्दकुन्दाचार्य एवं टीकाकारों के हृदयों को खोला है जोकि जैन सिद्धान्त का मर्म है। अन्य अनुयोगों में व्यवहार नय की मुख्यता है किन्तु मोक्षमार्ग निश्चय नय के आश्रय है। समयसार गाथा 272 फलितार्थ यह हुआ कि व्यवहार नय के आश्रय वन्ध मार्ग है। निचली भूमिका में (सविकल्प अवस्था में) व्यवहार नय आता अवश्य है किन्तु आश्रयणीय अर्थात् लक्ष्य वनाने योग्य नहीं—निश्चय नय का वाच्य परम पारणामिक शुद्ध जीवत्व (कारण परमात्मा) भाव ही के लक्ष्य से धर्म रत्नत्रय की उत्पत्ति वृद्धि एवं शुद्धि और पूर्णता होकर मोक्ष की प्राप्ति होती है। अनादि काल से अज्ञानी जीव को व्यवहार का एकान्त से पक्ष हो गया, त्रिकाली निरावरण ध्रुव स्वभाव को न जाना, न माना और न अनुभव किया इसीलिये संसार वनता चला आ रहा है—यह जानने के लिए दोनों नय का स्वरूप प्रयोजनीय है अन्यथा एकान्ती वन

जायेगा। इसलिये श्रद्धा में मुमुक्षु के सदा ही ध्रुव परम ज्ञायक भाव की ही मुख्यता रहती है। कथन करने में कभी निश्चय को मुख्य किया जाता है कभी व्यवहार को। स्वामी जी ने जैन सिद्धान्त का निखरा हुआ मर्म जो कि मूलभूत है प्रदर्शित किया है मैं उनका अत्यन्त आभारी हूं।

—ब्र० **छोटेलाल, उदासीन आश्रम, इन्दौर**

सन्त श्री कानजी स्वामी जी का स्वाध्याय के क्षेत्र में बहुमूल्य प्रदेय है। उन्होंने लाखों-लाख लोगों को जो जैन दर्शन का "क,ख,ग" भी नहीं जानते थे पंडित बनाया है। उन्होंने सिर्फ किताबी ही नहीं वरन् जीवन्त मोक्षमार्गी बनाने में उनका बहुत बड़ा योग है। जहां तक मैं समझ पाया हूं उनका ध्यान निर्मल चिन्तन पर है। कई श्वेताम्बर बन्धुओं को भी उनकी प्रशंसा करते हुए मैंने सुना है। मेरे हृदय में उनके ज्ञान के प्रति अपरम्पार श्रद्धा है। एक ज्ञानमूर्त्ति की तरह वे अत्यन्त पूज्य हैं। ऐसे समय जब लोग ज्ञान, आस्था और चारित्र्य सभी से विचलित और स्खलित हैं, सन्त श्री कानजी स्वामी जी के प्रेरक—पवित्र जीवन पर विशेषांक प्रकाशित कर एक उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं।

मेरी राशि-राशि शुभाकांक्षायें स्वीकार कीजिये।

—**डा० नेमीचन्द जैन**
सम्पादक—तीर्थंकर

कई-कई बार किसी धर्म के विषय में ऐसी परिस्थितियों का सृजन हो जाता है जब ऐसा महसूस होने लगता है कि योग्य-धर्म प्रणाली व विचार सरणि के ज्ञाताओं के अभाव में कहीं वह समाप्त तो नहीं हो जायेगी...? जैन धर्म में दिगम्बर आम्नाय के लोगों की संख्या अल्प है, उसमें भी योग्य ज्ञाताओं, विचारकों, दार्शनिकों एवं समर्थकों की दिन-ब-दिन कमी होते जाने के कारण उस संख्या में भी ह्रास होने की सम्भावना उत्पन्न हो गयी थी। गुजरात में वैसे देखा जाये तो जैन बहुत अधिक तादाद में बसे हुए हैं किन्तु उनमें दिगम्बरों की संख्या बहुत ही कम है। जैन धर्म के दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दो प्रमुख सम्प्रदाय हैं। दोनों के ही मूल तत्वों का ज्ञान एक है किन्तु पूज्य श्री कानजी स्वामी ने समयसार एवं उसके समकक्ष अन्य आगमों का दिगम्बर आम्नायातीत तत्वों की विशुद्धता को परख कर

प्रचार, वांचन, निर्वाचन एवं विवेचन करना प्रारम्भ किया। उनका कथन लोगों को भी जंच गया इसीलिये वे हजारों की संख्या में उनका स्वाध्याय, प्रवचन एवं मनन करने लगे हैं। कानजी स्वामी जी ने उन लोगों में मात्र स्वाध्याय की रुचि ही उत्पन्न नहीं की वल्कि हजारों की संख्या में प्रचारकों का निर्माण किया। दिगम्बर आम्नाय सदैव उनकी ऋणी रहेगी। उन्हें शतशः प्रणाम...।

— कुसुम बहन शाह, बम्बई
(सुप्रसिद्ध समाज नेत्री)

अनवद्यः स्याद्वादः

सन् 1940 में श्री कानजी स्वामी जी के साथ गिरनार की तलहटी में, तब प्रथम साक्षात्कार हुआ था, जब स्वामी जी ने अन्तरात्मा के संकेत पर "जिनेश्वर न तो मतं पटकवस्त्र पात्र गुहों, विमृश्य सुख कारणं स्वमशक्तकैः कल्पितः" की सद्दृष्टि पाकर 'स्थाविर कल्प' की सुखशील चर्या को सत्पथ मानना छोड़ दिया था। और जिनकल्प की नग्नता को ही मोक्ष मार्ग समझ कर जिनधर्म (दिगम्बर) के साहित्य का पर्यालोड़न अपना लिया था। एक व्यक्ति की सद्-दृष्टि कैसे सहस्रों व्यक्तियों की सम्यक् दृष्टि को खोलने में निमित्त होती है; स्वामी जी की जीवनी इसका ज्वलन्त निदर्शन है। निग्रन्थ धर्म की चर्चा मात्र करके मानव कितनी शान्ति, ख्याति और पूजा का लाभ पाता है यही जिनकल्प की यथार्थता और क्षमता को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। जन्मना-प्राप्त मान्यता और संस्कारों से निर्भ्रान्त होकर अधिगमज मान्यता और सस्कारों के मार्ग पर अग्रसर होते समय कुछ हट-ग्राह स्वाभाविक है। क्योंकि ऐसी एक परकचर्चा और चर्या बनाये बिना, फिर चिरन्तन संस्कारों में लुड़क जाने की आशंका रहती है। निश्चित ही स्वामी जी और उनके निमित्त से बने जिनकल्पी साधर्मी हमारे द्वारा अभिनन्दनीय हैं, क्योंकि उनका 'निज घर आना' इस शती की अद्भुत एवं महत्वपूर्ण घटना है। वह दिन दूर नहीं जब स्वामी जी और उनके अनुयायी 'तन विन वसन, असन विन वन में नासा दृष्टि धरी' - को चरितार्थ करेंगे। नमोऽस्तु समयसाराय।

— प्रो० खुशालचन्द्र गोरावाला
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

वर्तमान आध्यात्मिक सन्तों में श्री कानजी स्वामी का अपना एक विशिष्ट स्थान है। सोनगढ़ के इस सन्त ने जैन धर्म की प्रभावना में अमूल्य योगदान दिया है। गुजरात में दिगम्बर जैन धर्म की आज जो स्थिति है वह आपके ही उपदेशों का फल है।

तप, त्याग और आराधना के तेज से प्रखर क्रांतिकारी श्री कानजी स्वामी का सम्पूर्ण जीवन ही धर्मानुराग की एक गौरवमय गाथा है। मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि आगमपथ इस महान सन्त के जीवन पर एक विशेषांक प्रकाशित करने जा रहा है। विशेषांक की सफलता की कामना करता हूं।

—पारसदास जैन,

सह सम्पादक—नवभारत टाइम्स

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आप पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी जी के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर एक विशेषांक प्रकाशित करने जा रहे हैं।

गत 50 वर्षों में दिगम्बर जैन धर्म में जो आध्यात्मिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव हुआ है उसका श्रेय पूज्य श्री कानजी स्वामी को जाता है। आपने वीतराग धर्म की पुर्नस्थापना की जिससे समाज में एक नई चेतना की लहर प्रवाहित हुई। अनेकों दिगम्बर जैन स्वधर्मियों को निज धर्म पर दृढ़ श्रद्धान हुआ।

पूज्य स्वामी जी का जैन धर्म पर अत्यन्त उपकार है। उन्होंने समाज को एक नयी रोशनी दी हैं। समयसार ग्रन्थ को प्रकाश में लाकर आपने हजारों लोगों के जीवन की दृष्टि ही बदल दी है।

मैं स्वामी जी के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

—श्रीचन्द जैन, नई दिल्ली
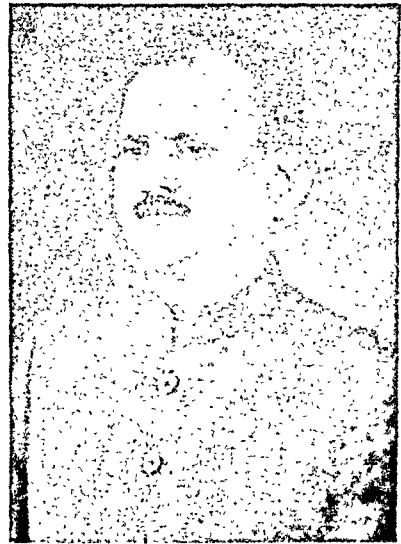
पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी जी के व्यक्तित्व पर विशेषांक प्रकाशित करने का विचार अत्यन्त सराहनीय है।

श्री कानजी स्वामी जी के प्रभाव से गुजरात व अन्य राज्यों में वीतराग दिगम्बर धर्म का महान प्रचार हुआ। आपने मूल जैन धर्म की व्याख्या की एवं दिगम्बराचार्य भगवान् कुन्दकुन्द उपदेशित मार्ग के मर्म को समझाया। फलस्वरूप एक आध्यात्मिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव हुआ एवं सारे देश में लाखों बन्धुओं के जीवन मूल्य बदल गये। जो व्यवहार को धर्म ही समझते रहे, उन्हें एक नयी राह मिली। सारा समाज आपके इस उपकार के लिए सदैव ऋणी रहेगा।

गुरुदेव मोक्षमार्ग के साधक है, आध्यात्मिकता के पुंज हैं। लाखों व्यक्तियों ने आपके प्रभाव से दिगम्बर धर्म स्वीकार किया है।

गुरुदेव दीर्घायु हों। मंगल कामनायें।

—रंगूलाल जैन
दिल्ली

तीर्थंकर महावीर की २५ वीं निर्वाण शताब्दी पर आप श्री कानजी स्वामी पर एक विशेषांक प्रकाशित करने जा रहे हैं. यह अत्यन्त समयोचित एवं सराहनीय कार्य है।

पूज्य स्वामीजी गत ५० वर्षों से सारे भारत में दिगम्बर वीतराग धर्म की ज्योति प्रज्जवलित कर रहे हैं। आपके सदोपदेश से लाखों बन्धु मुमुक्षु बने हैं। उनके जीवन को नये आयाम प्राप्त हुये हैं।

श्री कानजी स्वामी युगों युगों तक जियें एवं समाज को उनके उपदेशों का लाभ मिलता रहे, यही शुभकामना है।

— सुभाषचन्द्र जैन
शकुन प्रकाशन, दिल्ली

आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी जी वीतराग वाणी का जो व्यापक सन्देश दे रहे हैं; वह ही मूल सिद्धान्त हैं, जिससे प्रत्येक आत्मा सम्यकदर्शन प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। स्वामी जी ने अनेकों विशाल दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण करा कर व लाखों की संख्या में अनेकों ग्रन्थों का प्रकाशन करा कर जन जन तक वीतराग वाणी का प्रचार किया है, इसके लिए समस्त दिगम्बर समाज आपका ऋणी रहेगा।

विशेषांक की सफलता की कामना करता हूं।

—रमेश जैन, प्रचार सचिव,
अ० भा० दिगम्बर भगवान महावीर निर्वाण महोत्सव सोसायटी

महान् विभूति !

सन्त कानजी स्वामी हमारे देश की महान विभूतियों में से हैं। उन्होंने जैन धर्म, जैन संस्कृति और जैन दर्शन की जो सेवा की है वह सर्वविदित है। कानजी स्वामी की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने समाज के सुख-दुख के साथ तादाम्य स्थापित किया है और वे अपनी वाणी और लेखनी के द्वारा समाज को ऊंचा उठाने के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं।

कानजी स्वामी जी का हृदय अत्यन्त निर्मल स्पन्दनशील है। अतः उनकी अहर्निश कामना रहती है कि हमारा समाज सुखी हो, उसका मंगल हो, कल्याण हो। इसी कामना को लेकर उन्होंने समाज को सुखी बनाने के लिए बहुत कुछ किया है।

मेरी आंतरिक कामना है कि श्रद्धेय कानजी स्वामी शतजीवी हों, स्वस्थ रहें और उनका मार्ग दर्शन समाज को चिरकाल तक प्राप्त होता रहे। —यशपाल जैन
सम्पादक—जीवन साहित्य

सत्पुरुष कानजी स्वामी वर्तमान युग के आध्यात्मिक जगत में एक क्रांतिकारी महापुरुष हैं। उनके द्वारा दिगम्बर जैन समाज का बहुत बड़ा उपकार हुआ है और आध्यात्मिक साहित्य के पठन-पाठन का प्रचार और प्रसार हुआ है—आप उनके नाम पर व जीवन दर्शन पर आगम पथ का विशेषांक निकाल कर साहित्य जगत को नई भेंट दे रहे हैं इसके लिए आपका व आपके पत्र का सादर अभिनन्दन है। —सत्यंधर कुमार सेठी, उज्जैन
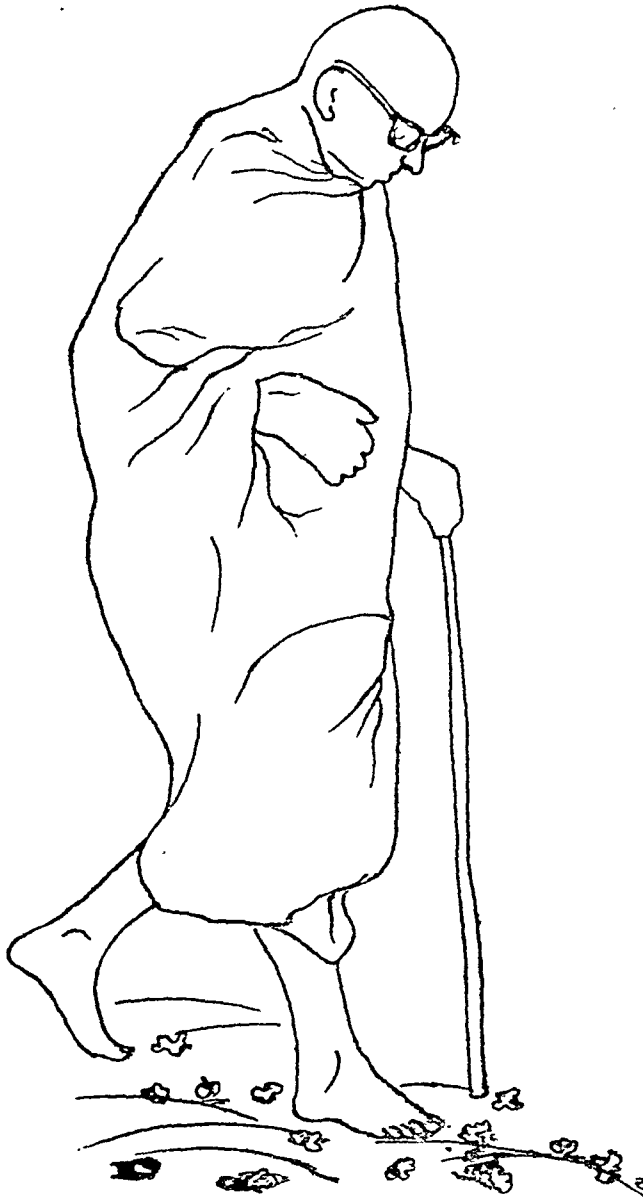
लो रोको......तूफान चला रे !

अभियान.........

लो रोको तूफान चला रे,
पाखंडों के महल ढहाता
लो रोको तूफान चला रे

सह न सका जो मिथ्या-तम की
सीमा का जीवन में बंधन
रह न सका अवरुद्ध वहां जो
बढ़ने लगा हृदय का स्पंदन,
एक दिवस अन्तर रवि जागा
पुण्य जागरण वेला आई,
जिसकी ज्ञान-चेतना ने रे
चिरनिद्रा से ली अंगड़ाई,
जिसकी करवट से संशय का
चिर-सिंहासन डोल चला रे
पाखंडों के०

निखिल विश्व पथ पाये—
हिय में करुणा का संसार समेटे
अपनी एक श्वास में रे जो
संशय-तम का मरण लपेटे
जिसकी प्रज्ञा के प्रताप से
कर्त्तवाद को थी हैरानी
अरे! मृतक को मिली चेतना
सुन जिसकी कल्याणी वाणी

अरे ! मुक्ति के सुन्दर पथ को
करता जो जय-घोष चला रे
पाखंडों के०

बोली दुनिया "अरे अरे रे !
मात पिता का धर्म न छोड़ो
जिसमें तुमने जन्म लिया है
उस पथसे अब मुंह मत मोड़ो
हरी भरी सी कीर्ति-लता है
दिग् दिगंत में व्याप्त तुम्हारी
यह लो यह लो सिंहासन लो
लेकिन रक्खो लाज हमारी
अरे तुम्हारे इस निश्चय से
भूतल पर भूचाल मचा रे
पाखंडों के०

उत्तर मिला, "धर्म-शिशु जननी
के अंचल में नहिं पलता है
और पिता की परम्परा से
बंध कर धर्म नहीं चलता है
अरे लोक की सीमाओं को
छोड़ धर्म का स्पंदन चलता
ज्ञान-चेतना के अंचल में
प्यारा धर्म निरंतर पलता
सिंहासन क्या, धर्म देह की
ममता तक तो छोड़ चला रे"
पाखंडों के०

प्राणों का भीषण संकट भी
उसका पथ नहिं मोड़ सका रे
कोटि-कोटि आंसू का वर्षण
उसका व्रत नहिं तोड़ सका रे

रे उत्तुंग हिमाचल—सा
बेरोक बढ़ा वह अपने पथ पर
जिसने उसके पथ को रोका-
झुका उसी का मस्तक भू पर
पर्वत ने भी उसे राह दी
खंड-खंड हो वज्र गिरा रे
पाखंडों के०

जिसको राह मिली, उसको
अब चाह रही क्या शेष बताओ
जिसको थाह मिली उसको
पर्वाह रही क्या शेष बताओ
उसने युग की धारा पलटी,
वह अध्यात्म—क्रांति का सृष्टा
एक दिव्य संदेश विश्व का
चेतन केवल ज्ञाता - दृष्टा
रे अणु-अणु की आजादी का
शंख नाद वह फूंक चला रे
पाखंडों के०

अरे वीर के जन्म दिवस पर
भूतल का अभिशाप मिट गया
अरे वीर के जन्म दिवस से
एक नया इतिहास जुड़ गया
अंधकार में युग सोता था
घुटती थी जीवन की श्वासें
पानी में भी पड़े हुए थे
अरे मीन युग—युग के प्यासे
तेरा पावन पुनर्जन्म यह
बसुधा का वरदान बना रे
पाखंडों के०

●

आत्मार्थी श्री कानजी स्वामी

संक्षिप्त जीवन-परिचय

परम पूज्य आध्यात्मिक सन्त श्री कानजी स्वामी जी का जन्म रविवार, वैशाख सुदी दूज, संवत् 1946 को कांठियावाड़ के उमराला ग्राम में श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में हुआ। आपकी माता का नाम अजमदे और पिता श्री मोतीचन्द शाह थे।

एक समय था जब गुजरात में दिगम्बर धर्म का नाम भी कोई नहीं जानता था। सारे प्रान्त में श्वेताम्बर सम्प्रदाय की ही प्रसिद्धि थी, और दिगम्बर जैन अनुयायी दृष्टिगोचर ही नहीं होता था।

मात्र 24 वर्ष की वय में आपने श्वेताम्बर जैन साधु की दीक्षा ले ली। आपका मन वैराग्य में ही रमता था और विवाहादि सांसारिक कार्यों के विचार आप से बहुत दूर रहते थे। आपने श्वेताम्बर सम्प्रदाय में रह कर गहन अध्ययन व मनन किया। 'श्वेताम्बर धर्म' का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भगवती सूत्र' तो आपने 17 बार पढ़ा। आपकी विलक्षण बुद्धि व स्मरण शक्ति से बड़े बड़े आचार्य आश्चर्य में डूब डूब गये। इससे आपको प्रसिद्धि एवं प्रतिष्ठाजनक स्थान प्राप्त हुआ।

फिर भी मन में कहीं न कहीं कसक थी, पीड़ा थी...जिस वस्तु की प्राप्ति के लिए आपकी आत्मा तड़प रही थी, वह आपको न मिल पायी। आपने भी पुरुषार्थ का दामन न छोड़ा...सिंह पुरुषों की भांति अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अन्तर्मंथन करते ही रहे।

आखिर वह शुभ घड़ी आ पहुंची। सं० 1978 में किसी धन्य पल में दिगम्बराचार्य कुन्द कुन्द देव का समयसार परमागम आपके हाथों में आया। उसका सूक्ष्म अभ्यास और मनन करते ही आपके आत्मिक संस्कार एकदम झनझना उठे और इन्हें प्रतीत हुआ कि जिसकी खोज बचपन से थी, वह निधि आज मिल गयी। जितनी सूक्ष्मता से वे समयसार का अध्ययन करते गये, उतना ही वे आत्मा के रहस्य को समझते गये। अब आपका रोम रोम पुलकित हो उठा। आपको जैसे नयी रोशनी मिल गयी।

पंथ मोह छूटा

यद्यपि स्थानकवासी सम्प्रदाय में आप सर्वोत्कृष्ट प्रवचन-प्रवक्ता माने जाते थे एवं आपका स्थान बहुत ऊंचा था तथापि आपको भगवान कुन्द कुन्दाचार्य एवं सीमंधर भगवान प्रणीत दिगम्बर वीतराग धर्म भा गया था। आपके चित्त में एक केवल समयसार की वाणी उद्घाटित हो रही थी। आपके मन में विचारों का तूफान सा मचा हुआ था। जन्मना श्वेताम्बर लेकिन मन में दिगम्बर आखिर किधर जायें।

आखिर एक दिन सोनगढ़ में सम्वत् 1991 की चैत्र शुक्ला त्रयोदशी, महावीर जयन्ती के शुभ दिन दिगम्बर परम्परा को अंगीकार कर लिया।

आपके इस परिवर्तन से सौराष्ट्र की श्वेताम्बर समाज में हाहाकार मच गया। विरोधियों ने हर प्रकार से अपना विरोध किया लेकिन आप अडिग एवं अचल रहे। आपने विरोध की ओर ध्यान भी न दिया और शांत भाव से अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते रहे। और अन्त में विजय सत्य की ही हुई। दिगम्बर धर्म प्रसिद्ध करके सोनगढ़ को धर्म प्रचार का मुख्य केन्द्र बनाया। अब तो सोनगढ़ सारे भारत क्या सभी आध्यात्मिक प्रेमियों के लिए तीर्थ धाम बन गया है।

गहन अध्ययन

आप भगवान कुन्द कुन्दाचार्य रचित समयसार का अध्ययन करते ही गये। जितनी बार पढ़ते उतना ही आत्मिक आनन्द प्राप्त होता। जंगलों एवं गुफाओं में जाकर इस महान ग्रन्थराज के प्रत्येक भाव को अपने मन में उतारा।

वीतराग धर्म की प्रभावना

कानजी स्वामी जी के चित्त में सीमंधर भगवान एवं कुन्द कुन्दाचार्य का दिगम्बर जैन धर्म बस गया। आपने वास्तविक धर्म का पक्ष उजागर किया। जिसके फलस्वरूप आप श्री के उपदेशों का रहस्य समझ हजारों जिज्ञासु आपके भक्त बने एवं दिगम्बर जैन धर्म में दीक्षित हुए।

आपके प्रभाव से सौराष्ट्र में जगह जगह पर दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ। जिन विम्बों की स्थापना हुई एवं पंच कल्याणक महोत्सव सम्पन्न हुए। समस्त भारत में स्वाध्याय मंडलों एवं दिगम्बर जैन संघों की स्थापना हुई। जहां सौराष्ट्र में पहले एक भी दिगम्बर जैन मन्दिर नहीं था अब वहां 50 से भी अधिक मनोहारी दिगम्बर जैन मन्दिर विद्यमान हैं एवं लाखों दिगम्बर जैन बसते हैं।

तीर्थधाम सोनागढ़

पूज्य स्वामी जी मुख्यतः सोनगढ़ में ही रहते हैं। भक्तजनों ने सोनगढ़ में 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट' की स्थापना की है। इसके अन्तर्गत 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर' की स्थापना हुई एवं सोनगढ़ की समस्त व्यवस्था इस संस्था द्वारा ही होती है। आपका प्रवचन इसी मन्दिर में होता है। बाद में 'श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, श्री समवशरण मन्दिर, श्री कुन्द कुन्द प्रवचन मंडप आदि और अभी 20 लाख रुपये की लागत से विशाल परमागम मन्दिर की स्थापना हुई है। जो कि विश्व में अपने ही प्रकार का एक है।

तीर्थों की यात्रा

कानजी महाराज ने धर्म प्रचार की दृष्टि से भारत के सभी प्रमुख शहरों का भ्रमण एवं तीर्थों का वन्दन किया। आपने श्री सम्मेद शिखर, श्री गिरनार जी बाहुवली जी की यात्रा की। मद्रास का प्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्र पोन्नूर हिल भी आपके प्रयास से प्रकाश में आया।

साहित्य प्रकाशन

सोनगढ़ से पूज्य स्वामी जी के प्रवचनों आदि पर पुस्तकाकार रूप में पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। सं० 2000 से 'आत्मधर्म' मासिक पत्र नियमित रूप से प्रकाशित हो रहा है। लाखों की संख्या में समयसार, मोक्षमार्ग प्रकाशक, प्रवचन-सार, आत्मसार आदि दिगम्बर जैन सिद्धान्त ग्रन्थों का प्रकाशन हो रहा है। बच्चों में धार्मिक रुचि जागृत हो इसके लिये एक विशेष पाठ्यक्रम बनाया गया है। जगह-जगह रात्रि पाठशालाएं चालू की गई हैं। सोनगढ़ में प्रतिवर्ष गर्मियों में एक माह का शिक्षण-शिविर चलता है। इसमें सैंकड़ों विद्यार्थी प्रतिवर्ष भाग लेते हैं।

उपकारी सन्त !

दिगम्बर जैन समाज स्वामी जी का अत्यन्त ऋणी है। वर्तमान युग में व्यवहार को ही धर्म की संज्ञा दी जाने लगी थी। केवल व्रतादि कार्यो में ही धर्म का स्वरूप संकुचित हो गया था। ऐसे समय में स्वामी जी ने निश्चय नय से धर्म व्याख्या की और कहा कि धर्म तो यह है, व्यवहार आदि तो गौण हैं। अब आपके प्रभाव से सारे दिगम्बर समाज में चेतना जागृत हुई है एवं लोगों की दृष्टि बदली है।

•

आत्मा ज्ञान स्वरूप है, ज्ञान बाहर से नहीं आता, आत्मा से ही होता हैं। आत्मा ज्ञान ही करता है, ज्ञान से अतिरिक्त किसी का कुछ भी नही कर सकता हैं। जो आत्मा को परद्रव्य का कर्ता मानता है, यह मूढ़ जीवों का महान् अज्ञान है।

—अमृतचन्द्राचार्य

श्रद्धा सुमन

•

लेखांजलि

•

संस्मरण

कानजी स्वामी : एक युग सन्त

□ पं० वावू भाई चुन्नीलाल महेता,
फतेपुर मोटा (गुज०)

जैन धर्म एक वीतराग रूप है। वह निज धर्म है—आत्मधर्म है। प्राणी मात्र भी सत्समागम से सच्ची समझ द्वारा उसे धारण कर संसार दुःखों का अभाव कर सच्चा सुख प्राप्त कर सकता है अतः विश्व धर्म है। शाश्वत धर्म है—अनादि निधन है। इस मार्ग को भगवान आदिनाथ ने भी नहीं बनाया था लेकिन बताया था। उसी प्रकार महावीर की आत्मा ने भी यही मार्ग ग्रहण किया और वे भगवान महावीर बने। आज से २५३१ वर्ष पूर्व राजगृही नगर—विपुलाचल पर्वत के ऊपर समवशरण में श्रावण कृष्णा १ को प्रथम दिव्य ध्वनि-दिव्य देशना द्वारा उन्होंने महावीर-धर्म-चक्र प्रवर्तन किया और ३० वर्ष तक लगातार चला। और आज भी यही वीतराग मार्ग रूप धर्म चक्र चला आ रहा है। पिछले करीब ४० वर्ष से भगवान महावीर के मार्ग को अपना कर अपना आत्महित साधन साधने आध्यात्म युग प्रवर्तक वीतराग मार्गोपदेष्टा संत पूज्य श्री कानजी स्वामी ने सारे भारतवर्ष में निरन्तर सतत चेतन धर्म चक्र का प्रवर्तन किया विश्व में महावीर वाणी को गुंजाया, लहराया उनका जीवन दर्शन और तत्त्वज्ञान सभी भेद ज्ञान मूलक धर्मोपदेश से प्रभावित होकर सारे देश में तूफान आया और आध्यात्मिक क्रान्ति होकर लाखों जीवों ने साम्प्रदायिकता छोड़कर भगवान महावीर के सच्चे अनुयायी भाव दिगम्बर बने और वीतरागी प्रशस्त मार्ग पर चलने लगे। आज भी कई लोग मार्ग में लग रहे हैं और उनका महावीर धर्म चक्र प्रवर्तन उनके द्वारा चालू रहने से —होने से आगे भी लगेगें। महावीर तत्त्वज्ञान वीतराग विज्ञान स्वरूप तत्त्वज्ञान होने से उनका धर्मो-पदेश के माध्यम से अनेक भव्य जीवों ने तो अतींद्रिय अनुभव रस पिया अनेक यह रस पीने के लिए लालायित हैं। विशेषतः अनेक जगह अनेक नूतन दिगम्बर जिन मन्दिरों का नव-निर्माण स्वाध्याय मन्दिरों पाठशालाओं का नव-निर्माण हुआ। शिक्षण-वर्ग-प्रशिक्षण-वर्ग लगने लगे और स्वाध्याय पठन, पाठन, मनन-विचार अध्ययन और निज शुद्धात्मानुभव का युग चालू हुआ और पोपडम एवं पाखंड मिटने लगा। शिथिलाचारियों का मूल्य गिरने लगा। सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि

कम मूल्य और जन भाषा में आकर्षक शैली से कई लाखों की संख्या में ग्रन्थों का, मूल ग्रन्थों का प्रवचनों, अनुवादों, सतसाहित्यों का प्रकाशन हुआ और जनता के घर-घर में यह साहित्य बसा। बालकों का धार्मिक साहित्य नीति और सदाचरण पूर्वक साहित्य निकलने से यह बालकों के हृदय का स्थान बना एवं इस वर्तमान युग में विक्रय बहुत हुआ।

उनके धर्मोपदेश का मुख्य केन्द्र बिन्दु **भगवान आत्मा** है। मोक्षार्थ जीव का एक मात्र आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता ही प्रथम कर्त्तव्य है। निज शुद्ध आत्मा के आश्रय से भव का अन्त आता है। भव का अन्त हो यही पुरुषार्थ है। उनकी वाणी में भव के अन्त की बात आती है। **जो भाव से भव हो—बंध हो—वह धर्म है ही नहीं।** प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है स्वयं सिद्ध है। अनादि निधन है गुण पर्याय वत है। जड़ और चेतन पदार्थ का परिणमन स्वभाव के या विभाव रूप हो वह अपने में अपने से स्वत: स्वकाल में ही स्वयं परिणमन होता है पर से नहीं क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपना स्वद्रव्य क्षेत्रकाल भावरूप स्वभानुरूप से अस्ति है सत है और पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव से नास्ति रूप है, असत है। ऐसा ही अस्ति नास्ति अनेकांत स्वभाव है। प्रत्येक द्रव्य के कार्य में उचित निमित्त की बहिरग सन्धि होती है लेकिन सब निमित्तगते: धर्मास्तिकायपन्: समझना।

सर्वज्ञता धर्म का मूल है। सर्वज्ञता की प्रतीत करने पर सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा की प्रतीत होती है और आत्मा की प्रतीत होने पर स्वात्मानुभूति होती है।

जैन धर्म एक वीतराग भावमय है। मोह, राग, द्वेष, पुण्य, पाप यह धर्म नहीं है और रागादिक से धर्म होगा भी नहीं। धर्म तो सम्यकदर्शन, ज्ञान, चारित्र ही है। यदि धर्म अथवा सुख प्राप्त करना हो तो सच्चे देव, गुरु, धर्म की पहचान कर उनके बताये मार्ग पर चलें, निज शुद्धात्मा को ध्येय बनाकर धुन लगाएँ।

भगवान आत्मा शाश्वत जीवन्त चेतन चक्र है और उसके ही आश्रय से आश्रव-बंध पुण्य-पाप रूप कषाय चक्र, संसार चक्र मिटता है अथवा दुख कर्म चक्र का अभाव हो कर संवर निर्जरा मोक्ष दशा रूप पर्याय में वीतराग भाव रूप धर्म चक्र प्रगटता है।

प्रत्येक आत्मा भगवान स्वरूप है, भगवान बनने की शक्ति और समझ करें तो पर्याय में भी भगवान बन सकता है।

वर्तमान समय में इस युग की महान विभूति, वीतराग मार्ग रहस्योद्घाटक भगवान महावीर के लघुनन्दन, आचार्य कुन्द-कुन्द के केद्रायन महावीर कुन्द-कुन्द

वाणी के प्रबल प्रसारक प्रचारक प्रभावक पूज्य श्री कानजी स्वामी विशेषांक आप श्री इस भ० महावीर २५०० वे निर्वाण महोत्सव वर्ष में प्रकाशित कर रहे हैं यह आगमपथ ने अच्छा साहसपूर्ण और कर्त्तव्यतापूर्वक काम किया है, मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। क्योंकि जो भगवान् महावीर ने धर्म-चक्र-प्रवर्तन किया है—जो कुन्द-कुन्दादि अनेक आचार्य और बनारसीदास से लेकर आचार्यकल्प पं० टोडरमल जी, जयचन्द जी, दौलतराम जी ने प्रवर्तन किया। वही प्रशस्त मार्ग को वे प्रवर्त्तन कर रहे हैं, समर्थन कर रहे हैं अतः वे श्रद्धेय हैं—अभिनन्दनीय हैं।

यह विशेषांक हजारों जीवों को महावीर का प्रशस्त मार्ग समझने में कार्यकारी हो और प्रत्येक प्राणी शुद्धात्मा का अनुभवशीली हो, यह मंगल कामना।

●

रे जीव ! तीन लोक में सबसे उत्तम महिमावंत अपना आत्मा है, उसको तू उपादेय जान। वही महासुन्दर व सुख रूप है। जगत में सर्वोत्कृष्ट ऐसे आत्मा को तू स्वानुभवगम्य कर। तेरा आत्मा ही तुझे आनन्दरूप है, अन्य कोई वस्तु तुझे आनन्द रूप नहीं है। आत्मा के आनन्द का अनुभव जिसने किया है ऐसे धर्मात्मा का चित्त अन्य कहीं भी नहीं लगता, बार-बार आत्मा की ओर ही झुकता है। आत्मा का अस्तित्व जिसमें नहीं, आत्मा का जीवन जिसमें नहीं ऐसे पर द्रव्यों में धर्मी का चित्त कैसे लगे ? आनन्द का समुद्र जहां देखा है वहाँ ही उनका चित्त लगा है।

●

अहो ! आत्मा आनन्द-स्वभाव से भरा हुआ है। ऐसे आत्मा के समक्ष देखें तो दुःख है ही कहां ? आत्मा के आश्रय में धर्मात्मा निःशंक सुखी हैं। देह का भले ही चाहे जो हो, अथवा सारे ब्रह्मांड में खलबली मच जावे, तो भी उससे मुझे दुःख नहीं, मेरी शान्ति—मेरा आनन्द मेरे आत्मा के ही आश्रय से है, जहां मैं अपने आनन्द-समुद्र में डुबकी लगा कर लीन हुआ, वहाँ मेरी शान्ति में विघ्न करने वाला जगत में कोई नहीं। इस प्रकार धर्मात्मा आत्मा के आश्रय से सुखी है।

(समयसार शास्त्र के सुखशक्ति के प्रवचन में से)

श्री कानजी स्वामी : एक विभूति

☐ पं० जगमोहनलाल शास्त्री

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) स्थित श्री कानजी स्वामी इस युग में चर्चा का विषय हो चुके हैं। उनके पक्ष तथा प्रतिपक्ष में दिगम्बर जैन समाज का बहुभाग विभक्त है।

विक्रम संवत् २००५ में अखिल भा० दि० जैन विद्वत्परिषद् का वहाँ अधिवेशन था। मुझे और संभवतः सभी विद्वानों को (२-३ छोड़कर) उनका प्रथम साक्षात्कार उसी समय हुआ। उनकी कीर्त्तिगाथा कुछ समय पूर्व से सुन रखी थी—यही आकर्षण था विद्वत्परिषद् को सोनगढ़ अधिवेशन करने का।

वहाँ जाकर देखा तो आश्चर्य चकित हो जाना पड़ा जिन मंदिर—भव्य दो-दो स्वाध्यायभवन—यात्रियों के ठहरने व भोजन का प्रबंध—सब कुछ सहजभाव से था। अब तो मानस्तंभ समवशरण मंदिर परमागम मंदिर तथा बीसों कोठियाँ बन चुकी हैं। एक खासा आध्यात्मिक नगर बस गया है।

अध्यात्म का विषय तद्विषयक रसिकों के लिए सरस हो सकता है। पर सर्व साधारण के लिए वह अत्यन्त सूक्ष्म विषय है। हम लोगों को शास्त्र प्रवचन हेतु तथा अनेक उत्सवों में धार्मिक भाषणों के हेतु समाज में यत्र-तत्र- सर्वत्र जाना पड़ता है। पर व्याख्यान में रोचकता लाने हेतु अनेक कल्पित कथा कहानियों का दृष्टान्त का आश्रय करना पड़ता है। यदि शास्त्रीय विषयों में से करणानुयोग और द्रव्यानुयोग का आश्रय लेकर भाषण करना प्रारम्भ करें तो श्रोता या तो ऊंघने लगते हैं—या सभा छोड़कर उठ जाते हैं।

सोनगढ़ की यह विशेषता है कि वहाँ अध्यात्म जैसे सूक्ष्म विषय की ही केवल चर्चा रहती है—प्रवचन और भाषण केवल उस एक विषय पर ही होते हैं पर श्रोता मंत्रमुग्ध हो उसे सुनते है। समय से १० मिनट पूर्व सभा भवन में होड़ सी लगाकर आते हैं और पूरे समय तक मनोयोग पूर्वक सुनते हैं। स्वामी जी की प्रवचन शैली उनकी निमग्नता उसे सरस बना देती है।

स्वामीजी प्रभावक हैं—दैदीप्यमान हैं—उनकी वाणी ओजपूर्ण है—चरित्र उज्ज्वल है इन सब बातों का भी जनता पर प्रभाव अंकित होता है।

आध्यात्म ग्रंथ समय सार उनका मुख्य आराध्य ग्रंथ है, जिसका ये वार २ पारायण करते हैं। वे अमृतचंद्राचार्य की भाषा में ही बोलते हैं। निश्चयनय परक कथनी उनकी जिह्वा पर सदानृत्य करनी है। निश्चयतः आत्म शुद्धि का मार्ग है श्रेष्ठमार्ग है। स्वामीजी का प्रतिपादन उक्त आधार पर होता है, यद्यपि निश्चय का एकान्त वे स्वीकार नहीं करते, अनेकान्तवादी हैं—पर प्रमुखता निश्चयनय की ही सदा रखते हैं—व्यवहार गौण है सदा कथनी में रहता है।

निश्चय तो व्यवहार का प्रतिषेधक है ऐसा पञ्चाध्यायी कार भी लिखते हैं। तथापि सर्व साधारण की पहुंच निश्चय के आश्रम लेने योग्य नहीं बन पाती अतः उन्हें निश्चय मार्ग पर आरूढ़ कराने के लिए व्यवहार धर्म का प्रतिपादन भी आचार्यों ने किया है।

स्वामीजी—जिन मंदिर निर्माण—जिन पूजा—तीर्थ यात्रा—पञ्चकल्याणक—जिन बिम्ब प्रतिष्ठा आदि सभी व्यवहार धर्मो (पुण्य रूप धर्मो) का प्रतिपादन करते हैं—उपदेश करते हैं—प्रेरणा भी देते हैं आचार्य इसे मोक्षमार्ग नहीं मानते। यह मोक्षमार्ग है भी नहीं; इसे पुण्यबंध का मार्ग ही जैनाचार्यों ने लिखा है। पुण्य भी पाप की भूमिका से उठाने के लिए करणीय है अतः आचार्यों ने उसे उपदेशित किया है तथा उसे परम्परा से मोक्ष का कारण भी बनाया है।

परम्परा का अर्थ ही यह होता है कि साक्षात् मोक्ष का कारण वह नहीं—कोई और ही है। जो साक्षात् मोक्ष कारण है वह है निश्चय सम्यक्दर्शन—निश्चय सम्यक्ज्ञान और निश्चय सम्यक्चारित्र अतः व्यवहार सम्यग्दर्शन, ज्ञान—चारित्र पुण्यबंध के कारण होते हुए भी निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान—चारित्र की प्राप्ति के साधन बन सकते हैं अतः उपादेय हैं जैन आचार्यों ने ग्रन्थाकारों ने व्यवहार की प्रधानता से उपदेश दिया है पर निश्चय पथ पर पहुंचाने का ध्यान रखा है उससे विरत नहीं हुए।

मतभेद के कारणों पर विचार

(१) जैनाचार्य व्यवहार धर्म को पुण्यबंध का कारण तथा परम्परा मोक्ष का भी कारण लिखते है। स्वामीजी उसे (पुण्यबंध का कारण अवश्य प्रतिपादन करते हैं पर उसे परम्परा से भी मोक्ष कारणत्व कथन करने में उदासीन हैं। यह एक हेतु है जो परस्पर मतभेद का कारण बन रहा है।

(२) दूसरा पक्ष व्यवहार पक्ष की मुख्यता से ही उपदेश करता हैं निश्चय पक्ष को मानते हुए भी उसे अत्यन्त गौण और उपेक्षणीय कर देता है।

यद्यपि दोनों पक्ष स्याद्वादी अनेकान्ती हैं, अनेकान्त रूप तत्त्व के जानकार हैं—तथापि अपने २ नय से कथन को उपयोगी और अन्य नय के कथन को अनुपयोगी सा मानकर पक्ष खैंचते हैं यह खींचातानी ही विषमता के विषय बन रही है।

(३) आगम में यत्र-तत्र प्रतिपादित निश्चय प्रधान कथन को तथा व्यवहार प्रधान कथन को निवाकृत न करते हुए भी दोनों पक्ष एक दूसरे को मिथ्यादृष्टि मानते है और अपने को सम्यग्दृष्टि मानते हैं ऐसी मान्यता भी मतभेद का ही नहीं पारस्परिक विपमता का कारण वनी हैं।

(४) समाज में जहाँ २ उक्त दोनों पक्षों के कट्टर अनुयायी हैं वे अपने गुरुजनों से चार कदम आगे हैं और उनकी परस्पर कपायाविष्ट चर्चाएँ मंदिरों व संस्थाओं के तथा पंचायती संगठन के विभाजन का कारण वन रही है।

(५) एक पक्ष द्वारा अपर पक्ष की कटुता पूर्ण आलोचना भी इसमें घृताहुति का काम करती है।

आज अनेक दिगम्बर जैन साधु तथा प्रतिमाधारी श्रावकों में पाई जाने वाली आगम विरुद्ध चारित्रिक शिथिलता निश्चय पक्ष वालों को कटु आलोचना का अवसर प्रदान करती है। दूसरी ओर व्रत दान पूजा आदि पुण्य कार्यो को निश्चय धर्म स्वरूप न होकर शुभराग रूप होने व पुण्यवंध के कारण (संसार कारण होने से) "अधर्म" शव्द द्वारा व्यवहृत करना तथा स्वयं व्रत स्वीकार न कर अव्रती जीवन विताना व्यवहार पक्ष वालों को कटु आलोचना का अवसर प्रदान करती है।

उक्त कारणों से व्यवहार पक्ष वाले इन निश्चय पक्ष वालों को "दिगम्वर" भी नहीं मानना चाहते, जवकि सोनगढ़ पक्ष वाले अपनी कट्टर दिगम्वरता का उद्घोप चौड़े मैदान करते हैं और जन्मजात दिगम्वरों का दिगम्वर जैनत्व पर एकाधिकार वानने को विलकुल तैयार नही हैं।

इस उत्पन्न परिस्थिति का सम्यक्प्रकारेण पर्यालोचन अत्यन्त आवश्यक हैं उसे मैं अपनी समझ के अनुसार करता हूं।

यह परम प्रसन्नता की वात हैं। सोनगढ़ पक्ष ने अपनी पूर्व अवस्था में प्राप्त श्रद्धा का परित्याग कर दिगम्वर जैन आगमानुमोदित (१) देव के स्वरूप (२) शास्त्र के स्वरूप तथा (३) दिगम्वर जैन साधु के स्वरूप पर अपनी अडिग श्रद्धा स्थापित की है—अतः दोनों पक्षों के देव एक हैं एक स्वरूपात्मक हैं; ग्रन्थ भी एक हैं—जिनकी प्रामाणिकता में कोई मतभेद नहीं है; तथा दिगम्वर जैन गुरु के स्वरूप में भी कोई मतभेद नहीं हैं।

यदि धर्म के आधार भूत देव गुरु शास्त्र में मान्यता भेद होता तो दोनों पक्षों का सामञ्जस्य असंभव होता। पर ऐसा नहीं है यही शुभ चिन्ह है जिससे उज्ज्वल भविष्य की मैं आशा करता हूं। मतभेद के ५ कारण ऊपर दरशाएँ हैं उन पर क्रमशः नीचे विचार किया जाता है।

(१) व्यवहार का अर्थ पर सापेक्ष कथन है। अतएव सच्चे देव, गुरु, शास्त्र

की श्रद्धा व्यवहार सम्यग्दर्शन है।" आत्मश्रद्धान्नम सम्यग्दर्शन अर्थात् अपनी शुद्धात्माकता श्रद्धान भेदविज्ञान पूर्वक स्वसंवेदन स्वानुभूति रूप निश्चय सम्यग्दर्शन है। मिथ्यादृष्टि जीव की दृष्टि यदि मिथ्यादेव गुरु शास्त्र से हटकर सच्चेदेव गुरु शास्त्र पर टिकती है तो ऐसे जीवकों आत्मश्रद्धान की भूमिका प्राप्त हो सकती है। इसी से व्यवहार को निश्चय का साधन ग्रन्थकारों ने कहा है। इसी प्रकार व्यवहार क्रियाए दान-पूजा-व्रतादि ग्रहण—जिनको पाप से विरत कराकर वीतरागता के मार्ग को प्रशस्त बनाते है अतः इनको पुण्यबंध का कारण होते हुए भी वीतरामार्गका साधकपना पाया जाता है अतः परम्परा मोक्ष का कारण मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि जिसे व्यवहार सम्यग्दर्शन व व्यवहार चारित्र हो उसे निश्चय सम्यग्दर्शन चारित्र की प्राप्ति हो ही जावे पर हो जाती है इस कारण उसे साधन कहने में कुछ बाधा नहीं है।

पाप से मुक्ति दिलाने वाले व्रतदान पूजादि को व्यवहारतः 'धर्म' कहा गया है "अधर्म नहीं" अतः इसे अधर्मशब्द द्वारा व्यवहृत करना अपर पक्ष को हार्दिक पीड़ा पहुँचाता है।

यद्यपि निश्चय रत्नत्रय ही यथार्थ धर्म है और व्यवहार रत्नत्रय यथार्थ धर्म नहीं है। अतः जो धर्म नहीं उसे 'अधर्म' शब्द द्वारा कहा जा सकता है परन्तु सर्व साधारणजन पापक्रियाओं को अधर्म मानता है पुण्य क्रियाओं को नहीं अतः ऐसी भाषा के प्रयोग का औचित्य नहीं है।

पाप पुण्य दोनों बंध के कारण है एक कुगतिका कारण—तो दूसरा सुगति का कारण है। संसार चतुर्गति स्वरूप है अतः संसार का कारण पुण्य "धर्म नहीं है" यह शास्त्रोक्त कथन है तथापि उसे 'अधर्म' शब्द द्वारा व्यवहृत न कर जैनाचार्यों ने व्यवहारतः धर्म संज्ञा दी है परमार्थ धर्म तो उसे ही माना है जो—

संसार दुखतः सत्वान् को धरायुत्तमसुखे। — **समन्त भद्राचार्य**

अर्थात् प्राणियों को संसार के दुखों से छुड़ाकर यथार्थ उत्तम सुख में धरे वह धर्म है। अतः पुण्य कार्य यथार्थ धर्म नहीं है तथा अधर्म जो पाप उसकी भूमिका से जीव को उठाते हैं तथा आगामी अभिवृद्धि की योग्यता सम्पादन में किन्हीं जीवों को कारण बनते हैं अतः उन्हें 'अधर्म' शब्द द्वारा न कहकर व्यवहार धर्म द्वारा प्रतिपादन विषमता को दूर करने का कारण बन सकता है।

(२) व्यवहार पक्षवादी—विद्वज्जन है यदि वे अपनी प्रतिपादन शैली में निश्चय धर्म की उपादेयता तथा उसकी श्रेष्ठता के प्रतिपादन को भी अपनावे और फिर उसे प्राप्त करने का साधन होने से व्यवहार धर्म को धर्म रूप कहें तो उत्तम होगा। निश्चय से जिसकी संज्ञा है उसे उपेक्षणीय करना हितकर नहीं है।

दोनों पक्ष यदि एक दूसरे के मन को आदर दे तो विपमता दूर होने में देर न लगेगी।

(३) जिनेन्द्र द्वारा कथित तत्त्व का श्रद्धानी व्यक्ति सम्यग्दृष्टि है। मिथ्या दृष्टि नहीं। निश्चय सम्यग्दर्शन का कोई व्यवहारिक रूप नहीं है। यदि कोई है तो तो वह ही तत्त्वार्थश्रद्धान या देवगुरु शास्त्र का श्रद्धान रूप व्यवहार वर्तन। अत: किसे निश्चय सम्यग्दर्शन है, किसे नहीं है इसका निर्णय हम आप नही कर सकते। जिसका निर्णय नहीं कर सकते उसका अहंकार भी वृथा है। द्रव्यलिंगी साधु मिथ्यादृष्टि ११ अंग भवपूर्व का अध्येता घोरोपसर्ग परिपय विजयी अपने भीतर कपायोदय की अत्यन्त मन्दता धारण करते हुए भी अपने आन्तरिक निश्चय सम्यगदर्शन व मिथ्या-दर्शन का स्वयं निर्णय नही कर पाता, साधारण अन्य जन भी निर्णय नहीं कर पाते अब उस पक्ष को अपनाध्येय बनाते हुए तत्त्व श्रद्धानी को सम्यग्दृष्टि मानकर वात्सा-ल्लय अंग का पालन करना चाहिये। ऐसा करने से ही सौहार्द्र बढ़ेगा। धर्म की यथार्थ प्रभावना होगी।

(४) समाज में उभयपक्ष भी उक्त १-२-३ सुझावों का अनुसरण करें। मेरा पक्ष ही सत्य है—धर्मानुकूल है, पर पक्ष असत्य है धर्मानुकूल नहीं है। ऐसा कदाग्रह छोड़दे तो सामाजिक विघटन दूर होकर संगठन बढ़ेगा। धर्म की अभिवृद्धि होगी।

(५) परस्पर की कटुता पूर्ण आलोचना एक धर्मियों में नहीं होनी चाहिए। वात्सल्य सम्यग्दर्शन का अभंग अंग है उसके अभाव से दोनों का सम्यग्दर्शन दूपित है अत: कटुता का भाव दूर करे।

यह सत्य है कि आज दिगम्बर जैन साधुओं में अनेक साधु अपने साधु धर्म परिपालन में परिपूर्ण नहीं है।

(१) कुछ सहन हीनता के कारण उसका निर्दोप पालन नहीं कर पाते।

(२) कुछ देश काल की परिस्थिति वश निर्दोप पालन नहीं करपाते।

(३) कुछ समाज के साधारण भक्तिमान् जनों की अत्यन्त अवांछनीय भक्ति के कारण निर्दोप पालन नहीं करते।

(४) कुछ सब कुछ जानते हुए भी प्रमादवश निर्दोप पालन नहीं करते।

(५) कुछ मुनिपद की महत्ता तथा उसके प्रभाव को देखकर ख्याति-लाभ-पूजा के अभिलापी होने से निर्दोप पालन नहीं करते।

ये सब बातें सत्य और यथार्थ है इनसे आँख मूंदना अपने को धोखा देना है। इनमें से न० १ और २ के कारणों से दोप लग जाने वाले साधु तो प्रायश्चित्तादि के पात्र हैं और वे अपने व्रतों को निर्दोप बनाने का भी प्रयत्न करते हैं उन्हें साधुपद के योग्य प्रतिष्ठा मिलनी चाहिये।

न० ३, ४, ५, के कारणों से शिथिल साधुओं को सर्वप्रथम अपने दोष स्वयं दूर कर निर्दोष पद अंगीकार करना चाहिये अन्यथा जिनगम का अपवाद-तथा समाज की निश्रृंखलता के सम्पूर्ण दोप के स्थान वे होंगे। ऐसे शिथिलाचारी साधुओं व व्रती श्रावकों को उनके समान समझना भी उन्हें प्रोत्साहित करना है।

दूसरी ओर इनकी शिथिलता के कारण व्रतारोहण करना भी अभिष्ट मानना भूल भरा है। व्रत और व्रत के प्रति वात्सल्यभाव ही सम्मयक्त का अंग है उसके तथा उनके धारियों के प्रति तिरस्कार का भाव आत्मवञ्चना है।

इस प्रकार मतभेद पड़ने के कारणभूत इन छोटी २ बातों को दूर कर समस्त दिगम्बर जैन संघ यदि पारस्परिक स्नेह पूर्ण व्यवहार करें तो जैन धर्म की सच्ची प्रभावना अपने में व लोक में हो सकती है निश्चय प्रभावना व्यवहार प्रभावना में इसी प्रकार हेतुहेतुमद्भाव है।

स्वामी जी ने अपने ने जीवन वह कार्य किया है जो आज सहस्रों वर्षों से जैन साधकों द्वारा सम्पन्न नही हो सका। दिगम्बर-श्वेताम्बर एक धर्म के अनुयायी भाई-भाई हैं, तथापि भाई यदि भाई को न माने—अलग हो जाय—विरोध रखे—तो भाई से भाई की दुश्मनी अन्य दुश्मनों से अधिक हो जाती है।

यही कारण है कि शताब्दियों से तीर्थों पर पारस्परिक झगड़े व मुकदमाबाजी चल रही है। स्वामी जी ने १ लाख के करीब अपने भूले भाइयों को सधर्म के मार्ग पर लगाया है।

दिगम्बर जैन समाज के कथित नेता जो उनका विरोध करने तथा उन्हें 'दिगम्बर जैन' न मानने की घोषणा करते हैं वे तब उन्हें मान्यता देते थे जब वे भाई दि० जैनी नहीं बने थे। दि० जैन बन जाने पर ठुकराते हैं, तिरस्कार व अपवाद करते हैं इससे बड़ी भूल कोई हो नहीं सकती। कहा जाता है ये "अपना नया पंथ" बनाते हैं पर यह बात सही नहीं है। जिस पंथ से ये आए उस पंथ से स्वत: अलग हो गए, जिस पंथ में आए वे अपने में शामिल नहीं करना चाहते—फलत: यह नया पंथ बनेगा पर बनेगा दि० जैन समाज की भूल से—हम उनका नया पंथ बनाने के कारण हैं, वे नहीं। वे अपने को कट्टर दिगम्बर जैन घोषित करते हैं।

सौराष्ट्र में २० दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण—उनकी पञ्चकल्याण प्रतिष्ठाएँ—समस्त दिगम्बर जैन तीर्थों की सहस्रों व्यक्तियों के संघ सहित वन्दना—लाखों रुपया दि० तीर्थरक्षा में चन्दा देना तथा उसकी पूर्ति का संकल्प—ये सब उनकी कट्टर दिगम्बरता के दृढ़तम प्रमाण हैं।

स्वामी जी अत्यन्त सरल, निष्कपट, सहजस्नेही हंसमुख, ओजस्वी व्यक्ति हैं। अध्यात्म के उच्चतम विद्वान् है। अध्यात्म का जीवनचर्या पर प्रभाव लक्षित होता है। प्रकारान्त उनका कार्य एक मिशन का कार्य है।

उनके अनुयायी अधिकांश व्यक्ति—रात्रि भोजन नहीं करते, कन्दमूल भक्षण नहीं करते। द्विदल नहीं खाते, व्रतरूप प्रतिज्ञावद्ध न होते हुए इन श्रावणीय नियमों का पालन करते हैं, जवकि पुराने दिगम्वरों में यह परम्परा टूटती जा रही हैं।

मेरी स्वयं की दृष्टि में यह निर्णय है कि स्वामी जी का तत्वज्ञान यथार्थ है प्रतिपादन शैली का भेद अवश्य है तथापि नवदीक्षित दि० जैनों के लिए उनकी प्रतिपादन शैली ही सही वैठती हैं।

उनके व्यवहार धर्म का उपदेश दिया जाय तो उन्हें अपनी स्थिति से कुछ विशेपता परिलक्षित नहीं होती—व्यवहार धर्म भेद दर्शन-पूजा-प्रभावना-दान आदि तो ये उस अवस्था में भी करते हैं। दिगम्वर धर्म की विशेपता उसके अध्यात्म पक्ष के कारण हैं न कि व्यवहार पक्ष के कारण। अत: कोई भी अन्य धर्मानुयोगी उसके अध्यात्मपक्ष से ही दि० जैन धर्म की महत्ता आँकेगा।

कहा जा सकता है कि सच्चे देव शास्त्र गुरू के स्वरूप का उपदेश प्रथम देना चाहिए तदनन्तर शुद्धात्मतत्त्व की वात करना चाहिए। कथन सत्य है तथापि वर्तमान समय के अनुसार किसी को सच्चे देव हमारे हैं उनका यह स्वरूप है, तुम्हारे देव झूठे हैं उनका यह स्वरूप है। ऐसा कथन विपरीत फलदायी वनता है अपने को सच्चा अन्य को मिथ्या कहने झगड़े को आमंत्रण देना है।

स्वामी जी शुद्धात्म का स्वरूप पहिले दिखाते हैं आत्मा सभी के भीतर है अत: अपना स्वरूप जानने की रुचि जागृत हो जाती है। जव मेरा आत्मा रागादि क्रोधादि भावों से रहित-शरीरादि नो कर्म से रहित—तथा विपय सामग्री के साधनों से भिन्न 'केवल ज्ञानानन्दमय" है ऐसा अपनी आत्मा का महात्म्य आता है तव जो शुद्धात्मा वन चुके परमात्म पद पर स्थिति है वे कैसे होना चाहिए यह सहज वोध हो जाता है तव सच्चे देव का स्वरूप और कुदेवका स्वरूप उन्हें स्वयं भासित होने लगता है, किसी को समझाने की जरूरत नहीं होती। प्रक्रिया भेद हैं। व्यवहार से यथार्थपक्ष समझाइए अथवा निश्चय वस्तु स्वरूप समझा कर व्यवहार की पवित्रता समझाइए दोनों में प्रक्रिया भेद होकर भी यथार्थ भेद कुछ नहीं अत: जो लाभदायक प्रयोग है स्वामी जी उसे ही अपना रहे हैं।

अत: उनकी शैली उनके अनुयाइयों को दिगम्वर जैन धर्म की अंगीकारता के लिए उपयुक्त है। पुराने दिगम्वरों में सभी लोग व्यवहार पक्ष का सम्यक्पालन करते हैं। यदि कुछ कमी है या विपरीतता है तो उन्हें भी उनके तात्विक उपदेश को ग्रहण कर दि० जैन धर्म की यथार्थता का अनुराग कर अपना व्यवहार संशोधित कर लेना चाहिए।

स्वामी जी इस युग की एक महान् विभूति हैं वे समस्त समाज के लिए आदरणीय हैं। मेरी उनके सभी सत्कार्यों पर श्रद्धा है और मेरी भावना है कि वे लौकिक कामनाओं से तथा युक्तियों से व कल्पित भावनाओं से दूर—जिनागम के यथार्थ रहस्य को प्रकाशित कर स्व पर कल्याण समर्थ हों। भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाणा महोत्सव की यह सबसे बड़ी उपलब्धि होगी यदि दि० जैन समाज के उभयपक्ष इस प्रभावना के यथार्थ मार्ग को अपनालें।

केन्द्रीय महासमिति की एकता (एक मंत्र) की भावना भी इसके बिना साकार नहीं बन सकती ऐसा मेरा ख्याल है। अतः यदि सभी भाई इसमें एक जुट होकर प्रयत्न करें तो यह कार्य बहुत सरल है।

विनम्र श्रद्धांजलि !

मैंने स्कूल के साथ पाठशाला में कुछ धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन करके परीक्षायें दी थी, पर धर्म क्या वस्तु है, यह मैंने अपने जीवन में न जाना था। संयोग से वकालत के कार्य में धार्मिक रुचि तथा समय का अभाव भी धर्म के प्रति उपेक्षा का कारण बना रहा। परन्तु संयोग से स्वामी जी के प्रवचनों की पुस्तकों के पढ़ने का प्रसंग आने पर तीव्र इच्छा हुई कि प्रत्यक्ष में स्वामी जी की वाणी का लाभ उठाया जावे। इसी दृष्टि से सोनगढ़ जाने का निर्णय लेकर प्रथम वर्ष ही क्लास में बैठने व स्वामी जी के प्रवचन सुनने पर अतरंग में ऐसी रुचि जागृत हुई कि प्रति वर्ष सोनगढ़ जाये बिना चित्त को शान्ति नहीं मिलती।

धर्म के विषय में जो कुछ जानकारी हुई है, वह पूज्य स्वामी जी की ही देन है।

यदि स्वामी जी के प्रवचन मनन करने का अवसर नहीं मिलता तो पुण्य को धर्म समझना रहता। परिणाम स्वरूप तत्त्व के प्रति अज्ञानता बनी रहती।

यह स्वामी जी का ही महान् उपकार है। मैं अपने जीवन में उनका अत्यन्त ऋणी हूँ। इस अवसर पर हृदय से श्रद्धांजलि प्रस्तुत करते हुये उनके प्रति आभार प्रगट करता हूँ और गुरुदेव के शतायु की कामना करता हूँ।

—नन्द किशोर जैन, एडवोकेट
विदिशा (म० प्र०)

मोक्ष मार्ग दर्शक है, कानजी स्वामी का संदेश

कल्याण कुमार जैन 'शशि'

जन्म-मरण की गतियों की व्यवहार यद्यपि भटकाएँ
आत्मा यदि निश्चय के द्वारा, मोक्ष परम पद पाये
उसका शत स्वागत है जो अन्तिम पद तक पहुँचाये;
वह सीधा पथ हितकारी है जिसमें मुक्ति प्रवेश
मोक्ष मार्ग दर्शक है कानजी स्वामी का सन्देश।

राग द्वेष के बन्धन में जीवन भटका फिरता है
शीघ्र नहीं टिकने देती, व्यवहारिक अस्थिरता है
इसके चक्रव्यूह में प्राणी इस प्रकार घिरता है;
जिसके कारण छूट न पाते राग द्वेष संक्लेश
मोक्ष मार्ग दर्शक है कानजी स्वामी का संदेश।

महावीर ने क्रिया काण्ड का, किया न रंच समर्थन
सम्यक, दर्शन, ज्ञान, चरित्र का किया प्रखर प्रतिपादन
समवशरण में प्राणि मात्र को दिया यही पथ दर्शन;
तप के द्वारा मोक्ष प्राप्ति का दिया दिव्य सन्देश
मोक्ष मार्ग दर्शक है, कानजी स्वामी का सन्देश।

धर्म परिग्रह कर्माडम्बर, इनमें उलझ न जाये
भ्रमण बढ़ाने वाले पथ पर, आत्मा को न भ्रमाये
सत्वर लक्ष्य निकट लाये, वह पगडंडी अपनाये;
बहुचर्चित शास्त्रों में प्रतिपादित इनके निर्देश
मोक्ष मार्ग दर्शक है कानजी स्वामी का सन्देश।

अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व के धनी : कानजी स्वामी

□ डा० हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर

"आत्मा ········आत्मा······आत्मा भगवान आत्मा सदा ही अति निर्मल है, पर से अत्यन्त भिन्न परम पावन है। यह त्रिकाली ध्रुव तत्व आनन्द का कन्द और ज्ञान का घनपिण्ड है। रंग, राग और भेद से भी भिन्न अतीन्द्रिय परम पदार्थ निजात्मा ही एकमात्र आश्रय करने योग्य है। उसका ही आश्रय करो, उसमें जम जावो, उसमें ही रम जावो।" यह प्रेरणा देते देते लाखों की सभा में भी क्षण भर को ही सही अपने में रम जाने वाले, अपने में ही जम जाने वाले युगान्तरकारी आध्यात्मिक सत्पुरुष कानजी स्वामी को लाखों आँखों ने लाखों बार अपने को मग्न होते देखा होगा। उन्होंने क्या कहा ? उसका क्या भाव है ? कानों से सुनकर चाहे बहुत कम लोगों ने समझ पाया हो, पर आँखों से देखने वालों ने यह अनुभव अवश्य किया होगा कि स्वामी जी जो कुछ बोल रहे हैं, वह अन्तर की गहराई से आ रहा है। वह मात्र व्याख्यान के लिए व्याख्यान नहीं है।

गंगा गये गंगादास और जमना गये जमनादास वाली बात वहाँ नहीं है। चाहे ५० व्यक्तियों की सभा हो, चाहे पचास हजार की। चाहे अपने हों, चाहे पराये। वहाँ तो एक ही बात है—पर और पर्याय से भिन्न आत्मा की। गिरगिट का सा रंग बदलने वाले तथाकथित आध्यात्मिक प्रवक्ताओं के समान अन्दर कुछ और बाहर कुछ वाली बात उनमें आप कभी नहीं पायेंगे।

उनकी वाणी में किसी का विरोध नहीं आता, मात्र अपना अविरोध झरता है। वे अपनी बात, अनुभव की बात, आगम की बात सबके सामने रखते हैं। कौन क्या गलत कह रहा है, गलत कर रहा है; यह जानने के लिए, सुनने के लिए, कहने के लिए उनके पास समय नहीं है, सत्य का अनुभव करने और निरूपण करने से अवकाश मिले तब तो यह सब किया जाय। यह तो उनका काम है, जिन्हें सत्य से कोई सरोकार नहीं है, धर्म जिनका धन्धा है। धर्म को जीवन मानने वाले स्वामी जी इन सब बातों से बहुत दूर हैं।

यदि आत्मज्ञान का नाम ही अध्यात्म है तो स्वामी जी सच्चे अर्थों में आध्यात्मिक हैं क्योंकि उनका चिन्तन, मनन, कथन, अनुभवन सब कुछ आत्मामय है।

आगम पथ, मई १९७६

अधि=जानना, आत्म=आत्मा को इस प्रकार अपने आत्मा को जानना ही अध्यात्म हुआ।

पुण्य और पवित्रता का सहज संयोग कालिकाल में सहज संभव नहीं है। जिनके जीवन में पवित्रता पाई जाती हैं, उनकी कोई वात नही सुनता और जिनके समक्ष लाखों मानव भुकते हैं, जिनको सर्व सुविधाएँ सहज उपलब्ध हैं, वे पवित्रता से बहुत दूर दिखाई देते हैं, जैसे उनका पावनता से कोई सम्बन्ध ही न हो। उन्हें पवित्रता से कोई सरोकार नहीं। स्वामी जी एक ऐसे युग-पुरुष हैं जिनमें पुण्य और पवित्रता का सहज संयोग है। उनमें सोना सुगंधित हो उड़ा है।

वे अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व के धनी महापुरुष हैं। एक ओर जहाँ स्वच्छ शुभ्र श्वेत परिधान से सर्वांग ढ़की एक दम गोरी भूरी विराटकाया, उस पर उगते हुए सूर्य-सा प्रभा सम्पन्न उन्नत भाल तथा कभी अन्तर्मग्न गुरुगंभीर एवं कभी अन्तर की उठी आनन्द हिलोर से खिलखिलाता गुलाव के विकसित पुष्प सदृश ब्रह्मतेज से दैदीप्यान मुखमण्डल, व्याख्यान में उनकी वाणी से कुछ भी न समझ पाने वाले हजारों श्रोताओं को मंत्रमुग्ध किए रहता है। वहीं दूसरी ओर स्वभाव से सरल, संसार से उदास, धुन के धनी, निरन्तर आत्मानुभव एवं स्वाध्याय में मग्न, सवके प्रतिसमताभाव एवं करुणाभाव रखने वाले विनम्र पर सिद्धान्तों की कीमत पर कभी न भुकने वाले अत्यन्त निस्पृही एवं दृढ़ मनस्वी, गणधर जैसे विवेक के धनी वज्र से भी कठोर पुष्प से भी कोमल उनका आन्तरिक व्यक्तित्व वड़े-बड़े मनीषियों के आकर्षण का केन्द्र वना रहता है।

लेखक

काठियावाड़ (आधुनिक गुजरात) की मिट्टी में ही न मालूम ऐसी क्या विशेषता है जिसने एक ही शताब्दी में ऐसे दो महापुरुषों को जन्म दिया है जिन्होंने लौकिक और पारलौकिक दोनों क्षितिजों के छोर पा लिए हैं। पहिले थे महात्मा-गाँधी और दूसरे हैं कानजीस्वामी। एक ने हमें लौकिक स्वतंत्रता का मार्ग ही नहीं दिखाया, अपितु स्वतंत्रता भी प्रदान की है दूसरा हमें पारलौकिक अलौकिक आध्यात्मिक स्वतंत्रता का पथ प्रदर्शन कर रहा है, स्वयं उस पर चल रहा है, दूसरों को

चलने का प्रेरणा स्रोत बन रहा है। एक साबरमती का संत कहा जाता था तो दूसरा सोनगढ़ का संत कहा जाता है। एक बार इन दोनों महात्माओं का मिलन भी हुआ था, जब गाँधीजी राजकोट में स्वामी जी के प्रवचन में पधारे थे।

सोनगढ़ आज तीर्थधाम बन गया है। जहाँ-जहाँ सन्तों के पग पड़ते हैं, वे स्थान तीर्थधाम बन जाते हैं। सोनगढ़ क्यों न तीर्थधाम बने वहाँ तो आध्यात्मिक सत्पुरुष चालीस वर्ष से आत्म-साधना कर रहे हैं, आत्मसाधना और आत्म-आराधना का पथ-प्रशस्त कर रहे हैं।

आज ऐसा कौन जैन हैं जो गिरनार और शत्रुंजय (पालीताना) गया हो और सोनगढ़ न गया हो और वहाँ पर पहुँच कर विशाल जिनमदिर समवशरण मंदिर, परमागम मंदिर के दर्शन कर कृतार्थ न हुआ हो। शहरी कोहलाहल से दूर शान्त और निर्जन इस प्रान्त में आत्मा के नांद की गूंज न सुनी हो, एवं-राग और भेद से भिन्न आत्मा की बात कान में न पड़ी हो।

आज सोनगढ़, समयसार और कानजी स्वामी पर्यायवाची हो गये हैं। सोनगढ़ में कुन्दकुन्दाचार्य के पंच परमागमों को परमागम मंदिर में संगमरमर के पाटियों पर उत्कीर्ण करा दिया है। सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य का इससे बड़ा स्मारक और क्या होगा। पर कानजी स्वामी कुन्दकुन्द और उनके समयसार के जीवन्तस्मारक है। क्यों न हो समयसार ने उनके जीवन को जो बदल डाला है। समयसार पाकर उन्होंने क्या नहीं पाया, क्या नहीं छोड़ा। सर्वस्व पाया और सर्वस्व छोड़ा। श्रीमद् रायचन्द ने समयसार लाने वाले वाले को खोवा भर मुद्रायें दे दी थीं, पर कानजी स्वामी ने तो परम्परागत धार्मिक सम्प्रदाय ही नहीं, उसका गुरुत्व, गौरव पूर्ण जीवन, यश यहाँ तक कि प्राणों तक का मोह छोड़ा।

वे प्राणों की बाजी लगाकर प्राणों की कीमत पर दिगम्बर (जैन) हुए हैं। दिगम्बरों ने उन्हें क्या दिया ? यदि दिगम्बरों ने उन्हें समयसार दिया, मोक्ष मार्ग प्रकाशक तो दिया उन्होंने दिगम्बरों को समयसार का, मोक्षमार्ग प्रकाशक का मर्म दिया। यदि उन्हें दिगम्बरों से एक समयसार मिला, एक मोक्षमार्ग प्रकाशक मिला तो उन्होंने समयसार और मोक्षकार्ग प्रकाशक दिगम्बरों के घर-घर तक पहुँचा दिया।

कौन जानता था कि काठियावाड़ के छोटे से ग्राम उमराला में आजसे ८७ वर्ष पूर्व वि० सं १९४६ की वैसाख सुदी २ रविवार के दिन जन्मा बालक कहान इतना महान् होगा। श्वेताम्बर स्थानकवासी सम्प्रदाय में जन्मा बालक कहान बचपन से ही धार्मिक प्रवृत्ति का शान्त बालक था। माता उजमबाई और पिता मोतीचंद जी श्री माल को एक ज्योतिषी ने बालक कहान को महापुरुष होने का स्पष्ट संकेत किया था। अतः उनका पुत्रप्रेम सहज द्विगुणित हो गया था। साधारण शिक्षा के उपरान्त

उनके जन्म स्थान के ही निकटस्थ कस्बा पालेज में उनके बड़े भाई खुशालचन्द जी के साथ उन्हें भी दुकान पर बिठा दिया गया पर उनका मन उसमें नही रमा। वे उदासवृत्ति, पर कुशलता पूर्वक ईमानदारी और पूरी प्रामाणिकता के साथ कार्य करने लगे। सोलह वर्ष की वयमें एकवार उन्हें बड़ौदा की कोर्ट जाना पड़ा, वहां उन्होंने समस्त सत्य को बड़े धैर्य और गंभीरता के साथ रखा। न्यायाधीश पर उनकी सरलता, सहजता, स्पष्ट वक्ता का ऐसा असर हुआ कि बिना गवाह के ही उनकी बात को प्रमाण मानकर निर्णय दे दिया।

उठते यौवन में उन्होंने "भक्त ध्रुव" आदि नाटक भी देखे। सामान्य युवकों का मन नाटकों के शृंगारिक प्रसंगों में अधिक रमा करता है उनका मन वैराग्य पोषक प्रकरणों में ही अधिक रमा करता था। जिसकी चर्चा आज भी वे बड़े ही भाव-विभोर हो, कभी-कभी अपने प्रवचनों में किया करते हैं।

अन्तर्व्यापार के अभिलाषी कहान का मन बाह्य व्यापार में न रमा। जब उनसे शादी का प्रस्ताव किया तो उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि मुझे तो दीक्षा लेने का भाव है, मैं शादी नहीं करूँगा। अरे......अरे......। उन्होंने दीक्षा लेने की बात मात्र नहीं कही, २२ वर्षीय उठते यौवन में ही उन्होंने स्थानकवासी साधु हीराचन्द जी के पास वि० सं० १९७० अगहन सुदी ९ रविवार के दिन बड़े ही ठाठ-बाट से दीक्षा ले ली। पर दीक्षा जुलूस में हाथी पर सवार होते समय दीक्षा वस्त्र फट गया। उस समय तो किसी की समझ में कुछ न आया, पर अब कभी-कभी स्वामी जी स्वयं कहते हैं कि मुझे तभी शंका हो गई थी कि सच्चा साधुपना यह नहीं है।

यद्यपि गृहस्थावस्था में भी आपने श्वेताम्बर शास्त्रों का अध्ययन—मनन किया था तथापि दीक्षित होने पर बाद में उनका बहुत गम्भीर अध्ययन किया; पर उनके हाथ कुछ भी न लगा। उन्हें ऐसा लगा जो मेरा प्राप्तव्य है, वह इनमें नही है। वे उन पर व्याख्यान करते, प्रवचन करते, हजारों लोग मंत्रमुग्ध हो जाते। स्थानकवासी सम्प्रदाय में उनकी महान विद्वान, लोकप्रिय प्रवचनकार और कठोर-साधक साधु के रूप में प्रतिष्ठा थी। उनके भक्तगण मुग्ध थे, पर वे नहीं; वे कुछ और खोज रहे थे। अचानक वि० सं० १९७८ में समयसार उनके हाथ लगा। मानो निधि मिल गई। जिसकी खोज थी, वह पा लिया। वे उसे ले एकान्त जंगल में चले गये। उसके पढ़ने में मग्न हो गये, जाता समय ध्यान ही न रहा।

उनका अन्तर पुकार उठा कि 'सत्य पंथ निर्ग्रन्थ दिगम्बर है', पर......। वि० सं० १९८२ में मोक्षमार्ग प्रकाशक हाथ लगा। यह ग्रन्थ भी स्वामीजी को अपूर्व लगा,

यह ग्रन्थराज अपूर्व है भी। यह इतना मन भाया कि इसका सातवाँ अध्याय तो आपने हाथ से लिख लिया, जो आज भी सुरक्षित है।

यह अन्तर्बाह्य का संघर्ष वि० सं० १९९१ तक चलता रहा। आखिरकार को इस नरसिंह ने उसी वर्ष चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को साधारण गाँव सोनगढ़ में बाड़ा तोड़ ही डाला मुंह पट्टी उतार फेंकी और अपने को दिगम्बर श्रावक घोषित कर दिया। क्या ही विचित्र संयोग है कि यह शुभकार्य महावीर जयन्ती के दिन ही संपन्न हुआ। संप्रदाय में खलबली मच गई। चारों ओर से भय और प्रलोभनों के पासे फेंके गये पर सब बेकार साबित हुए। धर्मान्धों ने क्या नहीं कहा और क्या नहीं किया पर "मनस्वी कार्यार्थी—न गणयति दुःख सुखं।"

कुछ दिनों तक वे एक अनन्य अनुयायी के सोनगढ़ के समीप टेकड़ी पर स्थित टूटे-फूटे मकान में रहे, जो आज भी उसी हालत में विद्यमान है और जिसे गुरुदेव स्वयं कभी कभी अपने अनुयायियों को बड़े प्रेम से उँगली के इशारे से दिखाया करते हैं।

साम्प्रदायिकता का मोह में हो गये विरोधियों की कषाय जब शान्त होने लगी तो वे पुण्य और पवित्रता के धनी गुरुदेव के दर्शनार्थ झुंड के झुंड आने लगे। कुछ यह देखने भी आते कि अब कैसा क्या चल रहा है, पर उनके समक्ष आकर उनके आचरण व्यवहार को देख एवं अभूतपूर्व प्रवचनों को सुन नत मस्तक हुए बिना नहीं रहते।

कुछ समय बाद जन्मजात दिगम्बर जैन भी पहुंचने लगे। कुछ प्रेम से कुछ भक्ति से, कुछ कुतूहल से पर जो भी उनके पास पहुंचता, उनका हुए बिना नहीं रहता; उनके अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। इनकी वाणी में तो कुन्द-कुन्द के अमृत का जादू है तो पर उनका बाह्य व्यक्तित्व भी कम आकर्षक नहीं है।

उनके इस आध्यात्मिक आकर्षण से विरोधी खेमों में खलबली मच गई। जो आज देखी जा सकती है। 'जो वहाँ जाएगा उनका हो जायगा।' इस भय से आशंकित और अंकित होकर वहाँ न जाने की लोगों को प्रतिज्ञाएँ दिलाई जाने लगी पर तूफान को कौन रोक सकता है। अमर गायक कवि युगल की "लो रोको तूफान चलारे; पाखण्डों के महल ढहाता, लो रोको तूफान चलारे।" यह पंक्तियाँ आज चुनौती दे रही हैं।

आध्यात्मिक क्रान्ति का यह सूत्रधार आज जहाँ भी जाता है, विरोधी भी उसका स्वागत करते हैं, सम्मान करते हैं, अभिनंदन करते हैं। चार-चार बार संपूर्ण भारत कीससंघ यात्राएँ की हैं इस महापुरुष ने। पचास से अधिक विशाल जिन

मन्दिरों का निर्माण हुआ है, इनकी पावन प्रेरणा से। बीस लाख से ऊपर साहित्य भी प्रकाशित हुआ है। गाँव-गाँव में तत्व चर्चा के केन्द्र स्थापित हो गये हैं। छोटे-छोटे से गाँवों में आप सामान्य व्यापारियों को निश्चय व्यवहार, निमित्त उपादान की चर्चा करते पायेगें। यह सब इस महामानव का प्रभाव है कि आज के इस भौतिकता वादी युग में आध्यात्मिक वातावरण बना दिया है।

वह अद्वितीय महापुरुष हैं। ऐसा कोई दूसरा महापुरुष बताएँ जिसने इनके समान अनंत प्रशंसाओं और निन्दाओं का उत्तर तक न दिया हो। जो जगत की प्रशंसा और निन्दा से इनके समान अप्रसवित रह अपनी गति से ही चलता रहा हो। जिसने समय (शुद्धात्मा) और समय (टाइम) ऐसा साधना की है कि जिसमें समय-सार प्रतिबिम्बित हो उठा हो और लोग जिसकी दिनचर्या से अपनी घड़ियाँ मिला लेते हैं।

उस अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व के धनी महापुरुष को शत-शत प्रणाम।

आध्यात्मिकता के हस्ताक्षर

●

हे त्याग तपस्या के प्रतीक, हे क्रांतिदूत, हे शांतिदूत !
भारत-गौरव, निर्ग्रन्थ सन्त, गुजरात भूमि के प्रिय सपूत !
भौतिकता के पृष्ठों पर लिख आध्यात्मिकता के स्वर्णाक्षर,
तुम बढ़े जा रहे अनथक, सत्, शिवम, सुन्दर के पावन पथ पर !!
वाणी से झरता अमृत स्रोत, तन-मन का कलुष धोता है
नयनों में ज्ञान-दीप ज्योतित, अज्ञान-तिमिर को खोता है
गुजरात क्षेत्र में दिगम्बरत्त्व की जय गाथा के मुखरित स्वर,
यश गाथा कहते हैं तेरी, मंदिर के ध्वज, उत्तुंग, 'शिखर' !!
हे युग-सारथि, संचालित होकर धर्मचक्र मय युग का रथ
है यही कामना, तव प्रताप से हो प्रशस्त जिन आगम-पथ !!!

—शेखर जैन
मंत्री—हरियाणा प्रदेश महावीर निर्वाण महोत्सव समिति

यशस्वी आध्यात्मिक सन्त

पं० परमेष्ठी दास जैन, न्यायतीर्थ, ललितपुर

प्रधान सम्पादक 'वीर'

सौराष्ट्र के छोटे से ग्राम में जन्मे, बाल्यावस्था से ही विरक्त और भरी युवावस्था में दीक्षाग्रहण करके श्वे० सम्प्रदाय में महामुनिराज का उच्चतम पद प्राप्त करके महनीय पूज्यता को प्राप्त आध्यात्मिक सन्त श्री कानजी स्वामी ने जब श्री कुन्दकुन्दाचार्य के समयसार का अध्ययन किया तो उनकी दृष्टि बदल गई। और उन्होंने अपने स्थानकवासी सम्प्रदाय में प्राप्त अवर्णनीय ख्याति, पूजा और सर्वोच्च मान्यता का मोह छोड़कर बड़े ही साहसपूर्वक मुहपत्ती (स्थानकवासी जैन साधु का परिवेष) त्याग कर अपने अनेक अनुयाइयों सहित दिगम्बर जैनधर्म, श्रीकुन्दकुन्दाचार्यादि गुरुओं और समयसार आदि शास्त्रों के परम भक्त हो गए।

सम्वत् १९७८ में स्थानकवासी सम्प्रदाय के महामुनिराज श्री कानजी स्वामी के मन में आकस्मिक विरक्ति व्याप्त हुई, और उन्होंने अपने गुरु श्री हीराचन्द जी महाराज से स्पष्ट कह दिया कि—यह मुहपत्ती, वस्त्र और पात्रादि का परिग्रह मुनित्व के साथ अनुरूप नहीं लगता। उत्तर में गुरुजी ने कहा कि—यदि यह सब ठीक नहीं लगता तो बिना वस्त्र-पात्र वाला गुरु ढूंढ़ लो!

यद्यपि यह चर्चा सहज ही चल पड़ी, किन्तु किसे ज्ञात था कि श्री कानजी स्वामी को कुन्दकुन्दाचार्य और उनकी परम्परा के यथार्थ दिगम्बर गुरुओं के प्रति भक्ति हो जायेगी और वे अपने परम्परागत धर्म और प्रतिष्ठा का मोह त्याग कर दिगम्बर जैनधर्मी हो जायेंगे!

श्री कानजी स्वामी ने पूर्व दीक्षा का त्याग करके सौराष्ट्र के एक छोटे से ग्राम—सोनगढ़ को पसन्द किया उन्हीं के साथ शताधिक पूर्वभक्त भी स्थानकवासी सम्प्रदाय का त्याग कर दिगम्बर जैन धर्मी हो गए। धीरे-धीरे सोनगढ़ का विकास होने लगा, वहाँ विशाल दिगम्बर जैन मन्दिर का निर्माण हुआ, स्वध्याय भवन बना और आश्रम की स्थापना हो गई। स्वामी जी ने श्री कुन्दकुन्दाचार्य और उनके रचित आध्यात्मिक ग्रन्थ समयसार आदि को आत्मकल्याणकारी मानकर खूब प्रचार किया। उनके समयसार-प्रवचन और अपूर्व व्याख्या को सुनकर लोग आश्चर्यचकित रह गए। दूर-दूर से श्रोतागण वहाँ पहुंचने लगे। वहीं निवास करने

लगे, और धीरे-धीरे सोनगढ़ ने जैन शासन की आध्यात्मिक राजधानी का रूप धारण कर लिया।

दिगम्बर जैन समाज में विद्यमान जैन सिद्धान्त शास्त्रियों में अधिकांश के विद्यागुरु स्याद्वादवारिधि पं० वंशीधर जी न्यायालंकार ने एक बार मधुवन में हजारों श्रोताओं की उपस्थिति में कहा था—

"हमारे तीर्थंकरों और आचार्यों ने सच्चे दिगम्बर जैन धर्म को अर्थात् मोक्ष-मार्ग को प्रकाशित करने वाला जो उपदेश दिया था वही इन कानजी स्वामी की वाणी में हम सबको सुनने को मिल रहा है।······श्री कुन्दकुन्दाचार्य और श्री अमृत-चन्द्राचार्य के बाद समयसार के यथार्थ रहस्य को जानने और समझाने वाले श्री कानजी स्वामी ही हैं।"

जहाँ समूचे सौराष्ट्र में २-४ ही दिगम्बर जैन मन्दिर थे और सर्वत्र श्वेताम्बर-धर्म का प्रभाव था वहाँ श्री कानजी स्वामी के प्रभाव, प्रेरणा और प्रयास से सौराष्ट्र में अनेकानेक भव्य दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण हो चुका है। केवल सौराष्ट्र में ही नहीं, अपितु समूचे भारत में शताधिक आकर्षक विशाल दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण हो चुका है, जहाँ विराट् समारोहों के साथ सुन्दरतम भव्य दिगम्बर जैन मूर्तियों की दिगम्बर मान्यतानुसार प्रतिष्ठा की गई है।

समयसार, मोक्षमार्ग प्रकाशक, छहढाला, द्रव्यसंग्रह आदि बड़े-छोटे अनेक ग्रन्थों का इतनी प्रचुर मात्रा में प्रचार-प्रसार हुआ है जितना विगत कई शताब्दियों में कभी नहीं हुआ था। यह सब श्री कानजी स्वामी के यथार्थज्ञान प्रचार की भावना का ही फल है।

स्वामी जी के प्रमुख धाम सोनगढ़ में सैंकड़ों भक्तजनों और शताधिक आजीवन ब्रह्मचारी बहिनों का स्थायी रूप में निवास है। उनके खानपान की शुद्धि, व्रत, नियम, आचार-विचार और जिनभक्ति आदि देखकर आश्चर्य चकित रह जाना होता है। पाठकों को यह भी ज्ञात हो कि उनमें अधिकांश श्वेताम्बर या स्थानक वासी जैन थे, जो अब कट्टर शुद्ध दिगम्बर जैन धर्मानुयायी हो गए हैं।

श्री कानजी स्वामी का ही यह प्रभाव है कि एक सुगठित सुव्यवस्थित, अनु-शासनबद्ध यात्रा संघ के रूप में सहस्राधिक नर-नारी भारत वर्ष के प्रायः सभी दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्रों की यात्रा कर चुके हैं।

प्रतिवर्ष यत्र-तत्र शिक्षण और प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन करके ज्ञान प्रचार किया जाता है। श्री कानजी स्वामी के निमित्त से सोनगढ़ प्रकारान्तर में अध्या-त्मिक तीर्थधाम बन गया है। पूज्य कुन्दकुन्दाचार्य जैसे महा महनीय व्यक्तियों को ही नहीं अपितु पंडित प्रवर टोडर मल जी, पं० बनारसीदास जी तथा पं० दौलतराम जी आदि विद्वद्वरों के व्यक्तित्व और कृतित्व को भी उजागर करने में जितना कानजी स्वामी को श्रेय है उतना आज तक किसी को प्राप्त नहीं हुआ इससे उनके उच्च व्यक्तित्व, महनीय कृतित्व और प्रशस्त आचार-विचार में विगत ३५ वर्ष से अति निकट का परिचय है। दिगम्बर जैन समाज उनके उपकारों का चिरऋणी रहेगा।

ज्ञान-यज्ञ के यशस्वी प्रणेता

डा० भागचन्द्र जैन, भास्कर,
अध्यक्ष, पालि-प्राकृत विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय,

अध्यात्म चेतना के प्रेरक

श्री पूज्य कानजी स्वामी इस बीसवीं शताब्दी में अध्यात्म चेतना को जागृत करने वाले एक ऐसे प्रेरक अग्रदूत हैं जिन्होंने समाज को 'या विद्या सा विमुक्तये' का पाठ पढ़ाया है। समाज जब आत्मचिन्तन को भूलता सा जा रहा था, आत्मा-परमात्मा की बात उसके गले नही उतरती थी, तब उन्होंने चिदानन्द चैतन्यरस की ऐसी संजीविनी दी जिसका पानकर हर मुमुक्षु अपने को धन्य समझने लगा। अध्यात्म चेतना का यह नवनीत समाज को एक नया पथदर्शन दे रहा है। यहाँ विचारों की कोई नवीनता भले ही न हो पर प्रस्तुतीकरण की नवीनता आकर्षक है। विचारों की कोई नवीनता इसलिए नहीं कि स्वामीजी के विचार जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों से पृथक् नहीं। उनके विचारधारा तो वस्तुत: जैन धर्म का मूलरूप है। और इसी को वे जागृत कर रहे हैं।

स्वाध्यायशाला के प्रवर्तक

जैन धर्म में स्वाध्याय को दैनिक कार्यों के अन्तर्गत रखा गया है। समाज इसे कालवशात् भूलता चला जा रहा था। स्वामीजी के प्रभाव से यह भूल सुधरती चली जा रही है। आज गाँव-गाँव में नियमित स्वाध्याय प्रारम्भ हो गया है। प्राय: प्रत्येक मन्दिर के साथ स्वाध्यायशाला का निर्माण हो रहा है और उसमें प्रात: सायंकाल प्रवचन की व्यवस्था कर दी गई है। मुमुक्षुगण इससे बहुत लाभान्वित हुआ है। जिन शास्त्रों को लोग जानते नहीं थे उनका वे स्वयं प्रवचन करने लगे हैं। यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

वीतरागता के प्रचारक

स्वामीजी मूलत: दिगम्बर नहीं थे। जैसे ही कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रन्थ उनके अध्ययन के विषय बने, उनकी दृष्टि में परिवर्तन आया और वे दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुयायी हो गये। मात्र अनुयायी ही नहीं बल्कि वीतरागता के सच्चे उपासक और प्रचारक बन गये। जैन साहित्य के प्रकाशन का भी कार्य उहोंने बड़ी तत्परता और

उदारता पूर्वक प्रारम्भ किया। कम से कम कीमत में उसे मुमुक्षु के हाथों में पहुं-चाने का सफल प्रयत्न हुआ अभी तक लगभग पचास पुस्तकें प्रकाशित हो चुकीं हैं। आत्मधर्म मासिक पत्रिका भी इसी उद्देश्य को लिये हुए है। इतना अच्छा और सस्ता साहित्य साधारणत: अन्यत्र दुर्लभ है।

वाह्य क्रियाकाण्ड के निषेधक

जैनधर्म निवृत्ति प्रधान धर्म है और निवृत्ति की सच्ची साधना निश्चयनय के विना सम्भव नहीं। व्यवहारनय को अन्त में छोड़ना ही पड़ता है। स्वामी जी व्यवहार रूप वाह्य क्रियाकाण्ड को छोड़ देने का आग्रह करते हैं और आत्मा के मूल धर्म की ओर दृष्टि देने का निवेदन करते हैं। इसका तात्पर्य यह भी नही कि चरित्र का वहाँ कोई स्थान नहीं अथवा शुभोपयोग का कोई महत्त्व नहीं। शुभोपयोग की प्राप्ति के लिए शुभोपयोग की निश्चित ही उपयोगिता हैं। उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। परन्तु उसी में आसक्त हो जाना उचित नहीं। इस दृष्टिकोण के प्रचार से वाह्यक्रियाकाण्ड धीरे-धीरे समाप्त होते चले जा रहे हैं और आत्ममुख होकर रत्न-त्रय की पवित्र त्रिवेणी वहने लगी है।

इस प्रकार पू० स्वामीजी ज्ञानयज्ञ के यशस्वी प्रणेता हैं जो मिथ्यात्व में फँसे हुए जीवों को वड़ी सरलता से वाहर निकलने के दुस्साध्य व्रत में लगे हुए हैं। युवक वर्ग भी इस आन्दोलन की ओर वहुत अर्कापित हुआ है। स्वामीजी की तपोसाधना उनका सरल और मधुर व्यक्तित्व प्रवचन की अनूठी शैली ज्ञान की अगाधता, चिन्तन की तलस्पर्शिता, व्यवस्था की प्रगाढ़ता, विचारों की स्थिरता तथा सहानुभूति और सहिष्णुता ऐसे गुण हैं जिन्होंने उन्हें आज विश्व सन्त की श्रेणी में आसीन कर दिया है। उनके इस महामहिम व्यक्तित्व को हमारा शतश: सहस्रस: विनम्र प्रणाम। स्वामीजी स्वस्थ और चिरंजीवी रहें, यही हमारी मनोभावना है। ●

पूज्य श्री कानजी स्वामी वर्तमान युग के महान आध्यात्मिक क्रांतिकारी सन्त हैं। आपने दिगम्बर आम्नाय अंगीकार करके भगवान सीमंधर स्वामी एवं भगवान कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत वीतराग धर्म का प्रचार प्रसार किया। समस्त दिगम्बर जैन समाज आपके इस उपकार के लिए सदैव ऋणी रहेगी।

स्वामी जी ने मूल जैन धर्म क्या है? निश्चय अथवा व्यवहार में किसका आश्रय किया जाय। मोक्ष प्राप्ति के लिए सद् पथ क्या है? इन गूढ़ विषयों पर ४० वर्षो तक गहन अध्ययन किया है। हर्ष का विषय है कि सारे भारत को स्वामीजी के प्रवचनों का लाभ प्राप्त हो रहा है।

मैं आपके इस शुभ कार्य की हृदय से अनुमोदना करता हूं एवं विशेषांक की सरलता की कामना करता हूँ।

—गुलशन राय जैन
मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश)

आध्यात्मिक सन्त विवेक वंत, दृढ़ श्रद्धानी सादर प्रणाम

अनूपचन्द्र न्यायतीर्थ, जयपुर

ओ कुन्द कुन्द के अनुयायी!
ओ! समयसार के भाष्यकार
अध्यात्मवाद के ग्रन्थों का
मंथन कर खींचा पुनः सार ॥१॥

उद्घाटित करके नये तथ्य
आडम्बर सारे किये चूर,
निज स्वाध्याय के बल पर ही
शंकाएँ सब की हुई दूर ॥२॥

हे वीतरागता के पोषक
मिथ्यात्व भाव का हुआ अंत,
आत्मानुभूति से निज पर को
पहिचान रहे हो ज्ञानवन्त ॥३॥

तुम शुद्ध आम्नायी अखंड
आकर्षण तुम में यही एक,
विपरीत मान्यता छोड़ छोड़
आकर मिलते हैं अनेक ॥४॥

आचार्य कल्प टोडरमल के
हे सद्गुरु हो तुम पूर्ण भक्त
जिनकी साहित्यिक कृतियों से
हो सका मोक्ष का मार्ग व्यक्त ॥५॥

शिक्षण शिविरों के माध्यम से
फैलाते जग में सद् विचार,
साहित्य प्रकाशित कर सुन्दर
जिनवाणी का करते प्रचार ॥६॥

आगम ग्रन्थों का शुचि लेखन
परमागम मन्दिर में, विशाल
युग युग तक गौरव गाथाएँ
गायेगा 'अनुपम' विशद भाल ॥७॥

मन्दिर निर्माण प्रतिष्ठा से
कर दिया संस्कृति में सुधार
जिन पूजा भक्ति भजन प्रवचन
द्वारा समझाते धर्म-सार ॥८॥

सदियों तक जीओ परमहंस
हे सरस्वती सुत ! बुद्धि धाम,
आध्यात्मिक संत विवेकवंत
दृढ़ श्रद्धानी सादर प्रणाम ॥९॥

शांति-पथ-प्रदर्शक

ज्ञानी ज्ञान भाव में मग्न रहता है। उससे कोई लाभ ले रहा है या नहीं, उसे इससे कोई प्रयोजन नही। वह व्यर्थ के विवाद में अपना अमूल्य समय नष्ट न कर अपने सर्वांगीण विकास में सदैव तत्पर रहता है। जैसे सुमन खिलकर अपनी सुगंध बिखेरता है। चाहे वह दिर्जन वन में हो या नगर के कोलाहल के मध्य मानव निर्मित क्यारी में। कौन उसकी महक ले रहा है, कौन नही; इससे उसे क्या प्रयोजन? खिलना, महकना उसका स्वभाव है।

कानजी स्वामी की शांत सौम्य मुद्रा, उनकी जीवन चर्या देखकर अथवा उनके प्रवचन श्रवण कर किसी कवि की पंक्तियां जो मैंने बचपन में पढ़ी थीं' बरबस याद आ जाती है—

कर्मवीर बकवाद नही करता है छल से।
शांति सहित निज कार्य किया करता है बल से ॥
यद्यपि ओछा उसे बुरी बातें कहता है।
तो भी वह निज कर्म मार्ग पर दृढ़ रहता है ॥
जो श्वान भूंकते हैं खड़े, हाथी जाता है चला।
क्या मशकों की हुंकार से खगपति डरता है भला ॥

अन्त में स्वामी जी के प्रति मैं भावभीनी श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए उनके दीर्घायु होने की मंगल कामना करती हूँ।

रूपवती 'किरण'
जबलपुर

महान् क्रान्तिकारी सन्त

☐ प्रकाश हितैषी शास्त्री
सम्पादक-सन्मति संदेश, दिल्ली

धर्म का प्रयोजन शाश्वत शांति की प्राप्ति है। वह सुख शांति आत्मा का स्वभाव है। अतः सुख शांति प्राप्त करने के लिये आत्मस्वभाव को समझना अत्यन्त आवश्यक है। उस आत्म ज्ञान के साधनों को ही अध्यात्मवाद कहा जाता है। यह अध्यात्मवाद ही धर्म का प्राण है। इस अध्यात्म की साधना के द्वारा ही साधक जीव अपने साध्य मुक्ति (पूर्णज्ञान, अनंत सुखादि) की प्राप्ति करते हैं।

प्रत्येक युग में इस अध्यात्मवाद का प्रचार प्रसार होता रहा है। अनेक आचार्यों साधु संत और विद्वानों ने अपने-अपने समय में इस अध्यात्मवाद का बिगुल बजाया है। आज भी आत्मार्थी संत श्री कानजी स्वामी ने निर्भीक एवं निर्भ्रान्त होकर भारत में इसी अध्यात्म का तुमुल नाद किया है। जैन समाज जो मात्र क्रिया काण्ड को धर्म मानकर आँख बन्द कर चल रही थी, उसको आज स्वामी जी ने झकझोर दिया है। जिस अध्यात्म को नीरस और उपेक्षित मान रहे थे, वही अध्यात्म आज सबसे अधिक रुचिकर एवं संजीवनी बूटी की तरह उपादेय बन गया है।

आज से कुछ समय पूर्व प्रथमानुयोग और अधिक से अधिक चरणानुयोग ही शास्त्र सभाओं में चर्चित विषय होता था, वहीं आज अध्यात्म की सूक्ष्म से सूक्ष्म चर्चा चलने लगी है। क्रियाकाण्ड प्रधानी जीव भी आज अध्यात्म का विरोध करने के लिये ही सही समयसारादि ग्रन्थों का स्वाध्याय करने लगे हैं। यह श्रेय भी आदरणीय स्वामी जी को है। इनका विरोध तो अध्यात्म को वरदान बन गया है। क्योंकि ज्यों२ विरोध बढ़ा है, त्यों २ ही भारत के कोने-कोने में इसका प्रचार बढ़ता गया है। और यह अध्यात्म का रंग ऐसा है जिस पर दूसरा रंग चढ़ता ही नहीं है। लोग सोचते हैं विरोध करने से इसका प्रसार रुक जायगा किन्तु वह तो दिन दूना बढ़ता ही जा रहा है।

इसका एकमात्र यही कारण है कि जब विरोध उठता है तो लोगों की जिज्ञासा जगती है कि इतना विरोध होने पर भी यह प्रचार रुकता क्यों नहीं है इसी जिज्ञासा को लेकर वे लोग अध्यात्म के सम्पर्क में आते हैं और वे अपने हित की बात सुन समझकर उसके कट्टर अनुयायी बन जाते हैं। जो भी सच्चे हृदय से अध्यात्म के संपर्क में आयेगा नियम से वह उसका अनुयायी बन ही जायगा। क्योंकि वह उसकी अपनी वस्तु है। धर्म की मूल रकम है अध्यात्म के ज्ञान के बिना अन्य अनुयोग के भाव को सही भी तो नहीं समझ सकते हैं। अतः अध्यात्म का तलस्पर्शी ज्ञान होना एक धर्म प्रेमी को अत्यावश्यक है।

आज अध्यात्म का गंम्भीर मनन चिंतन चलाने लगा है। प्रत्येक नगर ग्राम में शास्त्र सभायें चलने लगी हैं, जिनकी प्रथा करीब उठती सी जा रही थी। जो भाई बहनें कभी मंदिर में भी नहीं आते थे, वे अब पूजा भक्ति करते देखे जाते हैं। जो जैन धर्म की अ ई भी नहीं जानते थे, वे आज तत्त्व की गंभीर चर्चा करने लगे हैं। जो विवेक शून्य क्रियायें करते थे, वे अब प्रत्येक धर्म क्रिया से विवेक पूर्वक करने लगे हैं। जो कभी शास्त्र सभाओं के नाम से हिचकते थे वे ही आज आकर्षक प्रवक्ता बने हुए हैं। इन सब परिवर्तन के मूल कारण को जब हम खोजते हैं तो इसमें सोनगढ़ के संत का प्रमुख हाथ है। आज जो भी धर्म की ज्योति प्रज्वलित होती हुई दिख रही है। इन सबके लिये स्वामी जी प्रकाश स्तम्भ का कार्य कर रहे हैं।

कुछ समय पूर्व किसी प्रकाशन संस्था द्वारा कोई जैन ग्रंथ प्रकाशित किये जाते थे तो वे बीस वर्ष में भी नहीं बिक पाते थे जबकि आज मोक्ष मार्ग प्रकाशक सात वर्ष की अवधि में पच्चीस हजार प्रकाशित होकर समाप्त हो चुके हैं। समयसारादि कई महान् ग्रंथ अल्पावधि में ही कई हजार छपकर समाप्त हो चुके हैं। सोनगढ़ से प्रकाशित होने वाले ग्रंथ प्रकाशित पीछे होते हैं किन्तु वे पहले ही बिक चुके होते हैं।

इससे भी स्वर्णक्षरों में अंकित करने योग्य महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना हुई है तो वह है कि करीब ३०-४० हजार स्थानकवासी श्वेताम्बर समाज के परिवार मूर्ति पूजक दिगंबर धर्म में दीक्षित होकर सन्मार्ग पर लग गये हैं। ऐसी ऐतिहासिक घटना इतिहास में भी देखने को नहीं मिलेगी। यह सब सोनगढ़ के संत का ही प्रभाव है।

वे जो कुछ कहते हैं सब शास्त्राधार से कहते हैं, एक शब्द भी अपनी ओर से नहीं मिलाते हैं। शास्त्रों की टीकाएँ भी सभी २०० वर्ष पुरानी पं० जयचन्द जी छावड़ा आदि की हैं। उन्होंने न कोई टीका स्वयं लिखी है और न किसी आज के विद्वान् से लिखवाई है। एक-एक शब्द प्राचीन टीकाकारों के हैं। वे अपने कुलधर्म को तिलांजलि देकर दिगम्बर धर्म में आत्म कल्याण की दृष्टि से ही दीक्षित हुये हैं किसी लोकेषणा को लेकर नहीं।

उनके विषय में अधिकांश भाई यह कहते सुने गये हैं कि जब वे अध्यात्म की इतनी गहरी चर्चा करते हैं तो वे व्रती क्यों नहीं बन जाते हैं। इसके उत्तर में मैं उनका जो भाव समझ सका हूँ। वह यह है कि व्रत धारण नहीं किये जाते किन्तु किन्तु जब अप्रत्याख्यानावरणादि कषाय नष्ट हो जाती है तब अंतरंग की शुद्धि के साथ ये व्रत प्रतिफलित होते हैं। जैसे वन में नाचने वाली मयूर को बलात् रंगमंच पर नचाया नहीं जा सकता, वह तो हर्षित होकर वन में स्वयं नाचती है। भले ही उसके नृत्य को देखने वाला कोई न हो।

यह जैन समाज के सौभाग्य की बात है कि उसे ऐसा महान् क्रान्तिकारी महापुरुष का सुयोग मिला है। इससे तो जैन समाज को हर्षित होकर इस संत का सादर स्वागत करना चाहिये और अपनी पूर्व मान्यताओं से मध्यस्थ होकर महान् आचार्यों के मूलतत्त्व को ध्यान से सुनना चाहिये।

समय सार युग प्रणेता :
पूज्य श्री कानजी स्वामी

—उत्तम चन्द जैन, एम. ए., बी. एड., सिवनी (म० प्र०)

"समयसार को जानकर, पाया भव का अन्त ।
कहना आगम उन्हीं को, सच्चा सन्त महन्त ।"

ऐसे ही समयसार मर्मज्ञ, आध्यात्मिक संत, पूज्य श्री कानजी स्वामी के अद्वितीय व्यक्तित्व को, उनके प्रति वर्तमान आस्था को यों तो लेखनी पूर्णत: व्यक्त करने में असमर्थ है, फिर भी यहाँ व्यत्किन्चित्, संभव प्रयास किया जा रहा है। जिनको अनुभव होता है, उन्हें शब्दों की विशेष महत्ता नहीं होती, किन्तु जिन्होंने अनुभव तो दूर रहा, अनुभव की बात को भी कभी सुना नहीं, अनुभवी संतों का कभी परिचय किया नहीं, आदर, सम्मान एवं कृतज्ञता की स्वीकृति के बदले जो कृतघ्नता के नर्तन में लीन हैं, उन्हें कृतघ्नता रूप महापाप से बचने में निमित्तभूत अनुभवी एवं अनुभव की बातों का परिचय कराना ही एकमात्र साधन है, तदर्थ लेखनी का महत्त्व भी है अत: यहाँ पर समयसार युगप्रणेता, महावीर की वीतराग वाणी के रहस्योद्घाटक, युगक्रांता, युगपुरुष संत पूज्य श्री कानजी स्वामी का संक्षिप्त यथार्थ निजअनुभूति अनुसार परिचय कराते हैं।

मेरा प्रथम परिचय—सन् १९६२-६३ में पूज्य स्वामी जी का मंगल-पदार्पण मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में हुआ था। उस समय मैं लगभग १८ वर्ष का युवक था। मैं अपनी युवकोचित उत्कण्ठा सहित पूज्य स्वामी जी के दर्शनार्थ एवं सदुपदेश लाभार्थ निश्चित सभामण्डप में पहुँचा। उस समय लगभग दस हजार से अधिक श्रोतागण मंत्रमुग्ध की भांति परमशान्त वातावरण में स्वामी जी की अमृत वाणी का पान करने में संलग्न थे। कुछेक आनंदित हो रहे थे, तो कुछ चन्द्रचकोरवत् निस्तब्ध थे, कुछ "प्रमाण वचन गुरुदेव" 'बराबर' इत्यादि शब्दोच्चारण कर रहे थे। मैं स्वयं पू० स्वामीजी की शांत, प्रसन्न, गंभीर मुद्रा तथा उक्त वातावरण से प्रभावित हो रहा था। मुझे लग रहा था, निश्चित ही स्वामी जी महान् संत हैं। उनका संतपना उनके प्रतापवन्त-आभायुक्त मुखमण्डल, मधुरवाणी, तदनकुल हाव-भाव एवं शांतमुद्रा से देदीप्यमान हो रहा था। केमरे की भाँति उक्त मुद्रा हृदय पटल पर चित्रांकित सी

हो गई। फिर भी उनकी वाणी का रहस्य या अर्थ स्वयं की अयोग्यता एवं आगम के अनभ्यास के कारण कुछ भी समझ में नहीं आया।

मेरी उत्कण्ठा में वृद्धि का कारण—तदुपरान्त सन् १९६४ से ६६ तक का समय स्नातक शिक्षा हेतु मैंने सिवनी (म० प्र०) में व्यतीत किया। इसी बीच किन्हीं दुराशययुक्त व्यक्तियों द्वारा पू० स्वामी जी का परिचय बार-बार "कानजी" "कानजी" आदि शब्दों द्वारा मिलने लगा। वास्तव में यह परिचय निंदकों की निन्दनीय प्रवृत्ति का परिचायक था। सूर्य पर धूल उछालकर उसे आच्छादित करने की असफल कोशिश की तरह तथोक्त "कानजी" आदि शब्द 'पूज्य संत श्री कानजी' के दिनकर सदृश प्रतापी व्यक्तित्व को आच्छादित करने में असमर्थ रहे, बल्कि इन चेष्टाओं ने मुझे उन्हें सन्निकट से समझने की प्रेरणा प्रदान की। जिज्ञासा को यत् किन्चित, शांत करने हेतु मैंने सोनगढ़ से प्रकाशित साहित्य का तथा इतर प्रकाशित दि० जैनाचार्यों के साहित्य का गंभीर अध्ययन एवं परीक्षण प्रारंभ किया, परिणामतः पूज्य स्वामी जी का विराट् व्यक्तित्व एवं जिनागम का रहस्य 'वीतरागता' समझ में आने लगा। अभी सन् ६४ से ६८ तक पू० स्वामीजी का पुनः साक्षात् सान्निध्य भले ही प्राप्त नहीं हो सका, तो भी उनके प्रवचनादि साहित्य अनुशीलन द्वारा मैं उनके व्यक्तित्व के काफी समीप पहुँचने लगा। अंतरंग से एक झनकार उठने लगी "सांची तो गंगा जा वीतराग वाणी"। इस संत की वाणी परमसत्य की उद्घाटक है। यह तो भव का अंत करने वाली वाणी है। आत्म हितकारी एवं शांतिदायिनी है। ऐसे संत का पुनः दर्शन एवं निरीक्षण करके जीवन सफल बनाना इस जीव का कर्त्तव्य है। अब उत्कण्ठा तीव्र से तीव्रतर होने लगी।

पुनदर्शन एवं सान्निध्य का सौभाग्य—एक कहावत प्रसिद्ध है कि "जहां दृढ़ इच्छा शक्ति हो, वहाँ रास्ता मिल ही जाता है।" इसी अनुसार सन् १९६८ के ग्रीष्मावकाश में मैं अपर्याप्त अर्थसाधन होने पर भी सोनगढ़ को रवाना हो गया अकेला ही। इतनी लम्बी यात्रा पर मैं अकेला प्रथमबार ही निकला था, अनेकों कठिनाईयों के उपरान्त मैं प्रातः ५-६ बजे सोनगढ़ (स्वर्णपुरी) में प्रवेश कर गया। ऐसा लगा उस नगरी का प्रातःकालीन शांत वातावरण, मानों ग्रीष्म की दोपहरी में दिवाकर किरणों से संतप्त सत्यान्वेषी पथिक वातानुकूलित "Air Conditioned Room" कमरे में पहुँच गया हो। सोनगढ़ के भव्यजिनालय एवं जिनायतनों की ध्वजाएँ लहरा लहरा कर संकेत करने लगी कि आओ चिरसंतप्त भव्यात्माओं, आओ! यही है स्वर्णपुरी, यह है वह सौभाग्यशाली नगरी जहां पूज्य श्री कानजी स्वामी ने अनवरत लहराने वाली वीतरागता की ध्वजा लहराई है। यही है वे जिनालय जहां साक्षात् विद्यमान तीर्थंकर सीमंधर देव के तदाकार निर्दोष जिनबिंब का तथा समवसरण का

दर्शन कर भव्यों के कण्ठों से यह आवाज ध्वनित हो उठती है "अद्य में सफलं जन्म-नेत्रे च विमले-कृते ।" यही है वह पवित्र तीर्थधाम जहाँ आत्महितकारी, अमृतमयी वाणी का अजस्र स्रोत बहता रहता है।

अग्रिम अनुभूति—मैंने सर्वप्रथय जिनालय में प्रथमवार सीमंधर जिनबिंब के तथा समवशरणादि के दर्शन किए । मेरे ठहरने आदि की सभी व्यवस्था कर दी गई । मेरे निकट संबंधी भाई श्री हेमचन्द जी से तुरंत ही मुझे आगामी समय-सारिणी का ज्ञान हुआ । मानों वहाँ पहुँचते ही मैं किसी महान आत्महितकारी यज्ञ में निमग्न हो गया । प्रतिदिन ४ बजे प्रातः काल से रात्रि ११-१२ बजे तक आध्यात्म के गूढ़ रहस्यों का खुलासा एवं अमृतवाणी के सप्तभंगनयतरंगयुक्त झरनों में निरन्तर स्नान से मानों अनादि कालीन आत्मा का अगृहीत मिथ्यात्व मल धुलने लगा । मंगलाचरण के ये शब्द "प्रक्षालित सकलभूतलमलकलंका" अब अनुभव में आने लगे । आत्मा का जो कि निरन्तर निर्मल निर्विकारी, शांत ज्ञानानंदमय स्वरूप है ऐसा आत्मतत्त्व के परिचय करने में तल्लीन हो गया । ययासमय दिन में २-३ बार भोजनादि के अशुभ विकल्पों के सिवा, शेष समस्त समय में मात्र बुद्धिपूर्वक तत्त्वाभ्यास के अध्ययन, मनन एवं चिंतन रूप सातिशय शुभ विकल्प ही बना रहता था । यह भी विस्मरण हो गया कि मेरे कोई संबंधी भी हैं मेरा कोई घर, नगर आदि है, जिसे मैं छोड़कर आया हूँ, मुझे कई समस्याएँ सुलझाना थी, मैं किसी को पत्र तो लिख दूं । तत्त्वचर्चा में ऐसी तल्लीनता कि यह तक भूल गये कि आज दिन कौन-सा है, दिनांक क्या है इत्यादि । ऐसा भी कोई वातावरण मिलेगा इस दुनियाँ में अन्यत्र, अंतरंग कहता है कभी नही, कहीं नहीं, सिर्फ एक मात्र सोनगढ़ को छोड़कर । सोनगढ़ का शासनतंत्र ही अलग है जिसका नाम है, "आत्मानुशासन ।" जहाँ दो प्रकार के शासन हैं एक तो व्यवहार से संत श्री कानजी स्वामी तथा दूसरे निश्चय से प्रत्येक आत्मा स्वयं शासक हैं स्वयं के आत्मानु-शासन तंत्र का ।

इक्कीस दिवसीय दीर्घकाल खण्ड व्यतीत हो गया, किंतु पता नहीं चला । द्वितीय इक्कीस दिवसीय कालखण्ड प्रारम्भ हुआ, समस्त विकल्प आर्कपित हुए, इस समय भी, पूर्ववत् ज्ञानामृत के रसास्वादन के लिए । यह सत्य ही है कि अध्यात्म का रस जिस भव्यात्मा को लग जावें, उसे ४२ दिन क्या ? ३३ सागर का काल व्यतीत होने पर भी पता नहीं चलता, ऐसा अनुभव चर्चा के रस में निमग्न हो जाता है । आगम में एक चौथे काल का उल्लेख भी है । लगता है मानों वह काल यही है, यहीं है । परन्तु चौथा काल तो इस समय विदेहक्षेत्र में वर्तमान है भरत क्षेत्र में नहीं, तब अंत-में इसका समाधान हो जाता है कि वहिदृष्टि से भरतक्षेत्र नजर आता है, अंतदृष्टि से तो मैं सदा काल विदेहक्षेत्र (अर्थात्, देहरहित चैतन्य अत्मप्रदेश क्षेत्र) का निवासी हूँ ।

यथार्थ में चैतन्यआत्मा आत्मा का विदेहक्षेत्र है, स्वक्षेत्र है, शेष सभी भरतक्षेत्र या विदेह-क्षेत्र भी परक्षेत्र हैं। यहाँ पुनः विकल्प पैदा होगा कि आप अपने आत्मा का परिचय दे रहें हैं या पू० श्री कानजी स्वामी का ?तो उत्तर होगा कि यही हैं पूज्य स्वामीजी का परिचय। उनके परिचय में ही तो यह सारा परिचय का प्रसंग बन रहा है। इसके पूर्व तो मैं अपना परिचय कभी इस प्रकार देता ही न था। मैं स्वयं को जानता ही न था, अतः इस परिचय में ही उस संत पू० श्री कानजी स्वामी का परिचय है। पू० स्वामी जी का काम भी यही है "निजपरिचय कराना।" जिस निज का परिचय वे कराते हैं, वह निज (आत्मा) तो द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म से रहित है, ऐसे निज परिचय में आधिव्याधि एवं उपाधियों का अंत होकर समाधि प्रगटती है। ऐसी समाधि निज व पर में प्रगटाने वाले हैं पू० स्वामी जी।

एक अनुभव—संसार के उपाधिधारी पंडितमन्यों की रीति निराली है। वे अपनी श्रद्धा, अपने विवेक, लेखनी एवं कथनी में कब कैसा मोड़ दे दें, कोई ठिकाना नहीं। परन्तु पू० स्वामी जी जब से वीतराग वाणी के रहस्य को समझे, तभी से यथावत् अक्षुण्ण रूप से निरुपणादि करते रहे है, उनका तो उद्घोष है कि "एक होय त्रय काल में, परमारथ को पंथ" तथा "आत्मभ्रांति सम रोग नहीं सदगुरु वैद्य सुजान।

वे वीतरागता के प्रबल पोषक है, इसलिए वे कहते हैं—

"वचनामृत वीतराग के परमशांति को मूल।"

औषधि हैं भवरोग की, कायर को प्रतिकूल।

अंत में—अधिक कथन से क्या ? मेरा स्वयं का जीवन इस संत के संपर्कमात्र से पूर्णत बदल गया। जहाँ उनके परिचय से पूर्व मुझमें नाममात्र का जैनत्व भी न था। भक्ष्य अभक्ष्य का विवेक न था, आलू, प्याज, भटा आदि अनंतकायों का भक्षण तथा अन्य अनेकों त्रुटियों के रहते हुए भी जैनी नामधारण करता था, जो कि नाम-धारी रूप मात्र था, पश्चात् उपर्युक्त समस्त अनर्गल प्रवृत्तियों का शोधन एवं आत्म-शोधन का अपूर्व चिंतामणि सदृश मार्ग पूज्य स्वामीजी के ही सान्निध्य से मुझे प्राप्त हुआ। इस महान् संत की महती अनुकम्पा से मुझ जैसे लाखों आत्माओं ने आध्या-त्मिक जीवन पाया है। लाखों की संख्या में प्रमाणिक जिनागम ग्रंथों का प्रकाशन हुआ। सैकड़ों भव्य विशाल जिन मंदिरों का निर्माण एवं हजारों जिनबिंबों की वैभव-पूर्ण प्रतिष्ठायें हुई। जहाँ गतानुगतिक समाज कोरे क्रियाकाण्ड एवं पाखण्ड की ओर उन्मुख हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर इस संत ने सर्वत्र ज्ञानमयी चेतना से समस्त धर्मकार्यों को अनुप्रणित किया है। ऐसे युगनिर्माण संत का विस्मरण कृतज्ञजन कभी

नहीं कर सकते। मैं स्वयं हरिवंश पुराण के निम्नांकित शब्दों में अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ।

पाप कूपे निमग्नेभ्यों, धर्महस्तावलम्बनम्।
ददत्ता कः समोलोके संसारोत्तारणं नृणाम् ॥ १५५ ॥
अक्षरस्यापि चैकस्य पदार्थस्य पदस्य वा,
दानरं विस्मरत् पापी किं पुनः धर्म देशिनम् ॥१५६॥
(हरिवंश पुराण—सर्ग २१/ श्लोक १५५-१५६/

अर्थात्—"पाप रूपी कूप में डूबे हुए जीवों को जो मनुष्य धर्मरूपी हाथ का सहारा देने वाला है, लोक में उसके समान कौन उपकारी है (अर्थात् कोई नहीं।")

एक अक्षर का अथवा आधे पद का, अथवा एक पद (का ज्ञान) प्रदान करने वाले को भूल जाने वाला मनुष्य जब पापी कहलाता है, तब कल्याणकारी धर्म के उपदेश देने वाले को भूल जाने वाले को क्या कहना? उसे तो महापापी समझो।"

अत: "चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मैश्री गुरुवे नमः।" अंत में पूज्य संत श्री कानजी स्वामी के प्रति अनंत अनंत उपकारों के कृतज्ञता का भार स्वीकार करता हुआ, उनके प्रति नम्रीभूत हूँ। ●

युग-क्रान्ता सन्त

राजेन्द्रकुमार जैन
सम्पादक—वीर

सौराष्ट्र के दो सन्तों ने अपने-अपने क्षेत्र में चरम सीमायें पार की है। पहले महात्मा गांधी जी जिन्होंने सारे देश में ही नही बल्कि विश्व में अहिंसा को पुनः प्रतिस्थापित किया एवं भारत को स्वतन्त्र कराया दूसरे सौराष्ट्र के पूज्य गुरुदेव कानजी स्वामी जिन्होंने सारे देश में आध्यात्मिक क्रांति का शंखनाद कर वीतराग वाणी का घर-घर में प्रचार किया।

इस समय जबकि व्यक्ति लौकिक क्रियाकाण्ड को ही धर्म समझ बैठा है, पूज्य स्वामीजी द्वारा पिछले ४० वर्षों से भी अधिक समय से जनसाधारण में आध्यात्मिकता का संचार अपने आप में एक महान उपलब्धि है। आपके ही सद्प्रयत्नों से समयसार मोक्षमार्ग प्रकाशक आदि शास्त्रों का घर-घर में पठन पाठन प्रारम्भ हुए।

कानजी स्वामी आज से २००० वर्ष पूर्व आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा उपदेशित धर्म को आज के युग में प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। सौराष्ट्र व गुजरात में जहाँ एक भी दिगम्बर जैन दिखायी नहीं देता था अब वहाँ लाखों दिगम्बर श्रावक बसते हैं।

वास्तव में कानजी स्वामी ने दिगम्बर जैन धर्म की महान् सेवा की है, मैं उनके चरणों में अपनी विनम्र आदरांजलि समर्पित करता हूँ। ●

पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी एवं उनका जीवन दर्शन

★ युगल' एम० ए० साहित्य रत्न, कोटा

पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी इस युग के एक महान् एवं असाधारण व्यक्तित्व हैं। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेपता यह है कि उन्होंने सत्य से बहुत दूर जन्म लेकर स्वयं बुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसंधान किया एवं अपने प्रचंड पौरुप से जीवन में उसे आत्मसात् किया। इस जीवन में शुद्ध अन्तस्तत्व की देशना के लिए उन्हें किन्हीं गुरु का योग नहीं मिला फिर भी उन्होंने तत्व को पा लिया क्योंकि सद्गुरू की देशना को वे इस जीवन से पूर्व ही उपलब्ध कर चुके थे। पूर्व देशना से प्राप्त उनका तत्व ज्ञान इतना परिपूर्ण एवं परिमार्जित था कि वह इस भवांतर तक भी उनके साथ रहा और उसी ने उन्हें आलोक दिया। उन्होंने तो आगम की नैसर्गिक पद्धति में तत्व को उपलब्ध कर ही लिया किन्तु मेरी कल्पना यह है कि इस युग में अंतस्तत्व के बोध के लिए यदि वे किसी को अपना गुरू स्वीकार कर भी लेते तो उन्हें, तत्व की उपलब्धि संभावित नहीं थी क्योंकि उस समय यह तत्व प्राय: अभाव ग्रस्त था। यहाँ तक कि जीवन के सहज क्रम में जो दीक्षा गुरू उन्हें मिले थे, तत्व की शोध एवं उपलब्धि के लिए उनका मोह भी उन्हें छोड़ना पड़ा।

सौराष्ट्र के उमराला ग्राम में जन्में उजमबा एवं मोती के ये लाल बाल्य से ही विरक्त चित थे और एक मात्र ज्ञान एवं वैराग्य के प्रकरण ही उन्हें पसन्द थे। अपनी उदात्त लोकोत्तर आकांक्षाओं के समक्ष उन्हें कामिनी का माधुर्य पराजित नहीं कर सका। फलस्वरूप किसी भी मूल्य पर वे उसे जीवन में स्वीकार करने को सहमत नहीं हुए। अन्तर में भोगों से विरक्ती बढ़ती गई और अन्त में २४ वर्ष की अवस्था में वे स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। दीक्षा के नियमानुसार घरबार, कुटुम्ब परिवार, धन सम्पत्ति सब छूट ही गये और दीक्षा के आचार का भी दृढ़ता से पालन होने लगा किन्तु शान्ति की भूख शान्त नहीं हुई। शोध की प्रेरणा प्रशान्त नहीं हुई और अन्तर्द्वन्द चलता ही रहा। अत: अधिक समय तक वह प्रतिबन्ध सहन न हो

राका और एक दिन (सं० १६६१) मस्त मतंग की तरह उसे भी छोड़ दिया और तत्व की मस्ती में घूमते श्री कानजी स्वामी का स्वर्णपुरी (सोनगढ़) सहज ही विश्राम स्थल बन गया।

श्री कानजी स्वामी के जीवन का यह स्थल सर्वाधिक मार्मिक, स्तुत्य, लोक मांगल्य, एवं वरण्य है जहाँ उन्होंने जीवन के सबसे भयंकर शत्रु 'मताग्रह' को खुली चुनौती दी एवं अन्त में विजयी हुए। जीवन में घरबार, कंचन कामिनी पद एवं प्रतिष्ठा सभी कुछ तो छूट जाते है किन्तु महान्‌ऋषि, मुनि एवं मनीषियों का बौद्धिक धरातल इस मताग्रह के प्रचंड पाश से मुक्त नहीं हो पाता। फलस्वरूप दृष्टि निष्पक्ष नहीं हो पाती और असंख्य प्रयत्नों में भी सत्य आत्मसात् नहीं होता।

श्री कानजी स्वामी इस युग के एक शुद्ध आध्यात्मिक क्रान्तिदृष्टा पुरुष हैं। उन्होंने जिस क्रान्ति का सूत्रपात किया ऐसी क्रान्ति पहिले शताब्दियों में भी नहीं हुई। जैन-लोक-जीवन की श्वासें रूढ़ी, अन्ध-विश्वास, पाखंड एवं कोरे कर्मकांड की कारा में घुट रही थी। इसके आगे धर्म कोई वस्तु ही नहीं रह गया था। इन महापुरुष ने शुद्ध जिनागम का मन्थन कर इन जीवन विरोधी तत्वों को अधर्म घोषित किया और इस निकृष्ट युग में शुद्ध आत्म धर्म की प्राण प्रतिष्ठा की। उन्होंने जन जीवन को एक सूत्र दिया "स्वावलंम्बन अर्थात् निज शुद्ध चैतन्य सत्ता का अवलम्बन ही धर्म है परावलम्बन में धर्म अथवा शान्ति घोषित करनी वाली सभी पद्धतियां अधर्म है। फलस्वरूप विश्वसनीय नहीं है।"

जिस समय भारत वसुधा पर पूज्य श्री कानजी स्वामी का अवतरण हुआ उस समय भी आध्यात्मिक चिंतन का रिवाज तो था किन्तु उस चिंतन में आध्यात्म नहीं था। आध्यात्मिक चिंतन का यह स्वरूप हो चला था कि आत्मा को कहा तो शुद्ध जाता था किन्तु वास्तव में माना अशुद्ध जाता था अथवा यदि शुद्ध माना भी जाता था तो आगम भाषा के दासत्व के कारण शुद्ध निश्चय नय से शुद्ध माना जाता था और व्यवहार नय से अशुद्ध। इस तरह श्रद्धा के लिए कोई धरती ही नहीं थी और दो नय की चक्की में घुन की तरह पिस कर आत्मा की मट्टी पलीत हो रही थी। बड़े से बड़े विचारक, महान् से महान् प्रतिभायें, त्याग और वैराग्य के आदर्शनय की इस चक्रीयता में इस तरह मुग्ध थे कि न तो उसमें से निकलने का उनका मन था और न सामने कोई रास्ता। सौराष्ट्र के उस संत ने जंगलों के निर्जनों में समयसार एवं मोक्ष मार्ग प्रकाशक जैसे परमागमों का गम्भीर अवगाहन कर इस आध्यात्मिक समस्या का सरलतम समाधान प्रस्तुत किया।

उन्होंने कहा "विश्व के सभी जड़ चेतन पदार्थ स्वयं सिद्ध अनन्त शक्तिमय एवं पूर्ण है वे एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न अपनी स्वरूप सीमा में ही रहते है और एक

दूसरे का स्पर्श तक नहीं करते। अतः सभी जड़ चेतन सत्तायें नितान्त शुद्ध है। आत्मा भी एक ऐसी ही स्वयं सिद्ध निरपेक्ष शुद्ध चैतन्य सत्ता है। श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, आनन्द आदि उसकी असाधारण शक्तियाँ अथवा स्वभाव है जो शाश्वत उसी में रहते है। वह अपने में परिपूर्ण एवं अन्य से भिन्न एक स्वतन्त्र, पवित्र सत् है क्योंकि जो सत्ता अथवा सत्ता है वह पूर्ण एवँ पवित्र होना ही चाहिए अन्यथा वह सत् कैसा? जो जड़ है यह पूरा जड़ हो एवं चेतन पूरा चेतन, अपूर्ण जड़ अथवा अथवा अपूर्ण चेतन का स्वरूप भी क्या हो ? अतः पूर्णत्व एवं एकत्व सत् का स्वरूप ही है। विश्व के दर्शनों में जैन दर्शन का यह एक मार्मिक अनुसंधान है अपने अनुसंधान में उसने कहा कि वस्तु का एकत्व ही उसका परम सौन्दर्य है सम्वन्ध की वार्ता विसँवाद है।"

"आत्मा का ऐसा परिशुद्ध स्वरूप स्थापित हो जाने पर आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान (मानने- जानने वाली पर्याय) वृत्ति का केवल एक ही काम रहा कि वह आत्मा को पूर्ण एवं शुद्ध ही माने, ऐसा ही जाने एवं ऐसा ही अनुभव करें। किन्तु आत्मा की इस वृत्ति में सदा से ही यह अज्ञान एवं अविश्वास रहा कि उसने आत्मा को शुद्ध एवं पूर्ण माना ही नहीं वरन अपनी पड़ोसी देहादि सत्ताओं में ही मुग्ध रही। उन्हीं में अहं किया एवं उन्हीं में लीनता। पर सत्ताओं में अहं की यह वृत्ति महान् व्याभिचारिणी है क्योंकि उसमें विश्व की अन्नत सत्ताओं को अपने अधिकार में लेकर उसमें रमण करने की चेष्टा है। अतः विश्व की स्वतन्त्र एवं सुन्दर व्यवस्था को समाप्त कर देने की यह हरकत विश्व का सर्व महान् अपराध हुआ और उसकी दण्ड व्यवस्था में निगोद फलित हुआ।"

"परिशुद्ध कांचन-तत्व होने पर भी आत्मा की वृत्ति में इतना लम्बा एवं ऐसा भयंकर अज्ञान क्यों रहा ? इसका उत्तर आत्मा से दूर कहीं अन्यत्र तलाश करना एक दार्शनिक अपराध होगा क्योंकि भिन्न सत्ता के वस्तुओं में कारण कार्य भाव कभी भी घटित नहीं होता। अतः इसका उत्तर स्वयं आत्मा ने सदा से श्वतः ही यह अज्ञान परिणाम किया और वह स्वयं ही अज्ञानी हुआ। जैसे एक लौविक प्रश्न है कि महान् वलशाली पराक्रमी एवं अतुल वैभव सम्पन्न एक सम्राट की महारानी दरिद्री महावत पर मुग्ध क्यों हो गई ? उसका कारण यदि हम महावत को मानें तो सम्राट तो उससे कहीं वहुत अधिक है फिर महावत का मोह कैसा ? अतः पूर्ण अनुसँधान के वाद हमारा अन्तिम समाधान यही होगा कि यह तो महारानी की अपनी स्वाधीन परिणती ही है। उसके मनोविकार का कारण दूसरा कोई भी नहीं है। उसी प्रकार आत्मा का अज्ञान भी अत्यन्त पर निरपेक्ष है। कथन में कर्मोदय आदि की सापेक्षता आ जाती है किन्तु भाव तो निरपेक्ष ही रहता है क्योंकि यदि कोई दूसरा आत्मा को अज्ञानी वनावे तो कोई ज्ञानी भी वना सकेगा और पुनः कोई अज्ञानी वना देगा। अज्ञानी वना इस

प्रकार आत्मा किसी के हाथ की कठपुतली मात्र रह जावेगा और उसके बन्ध मोक्ष के सभी अधिकार छिन जावेंगे। और यह तो एक मखौल ही होगा। फिर एक प्रश्न है कि तो फिर इतने लम्बे एवं जटिल अज्ञान का अन्त कैसे हो ? तो यह प्रश्न स्वयं ही अपना उत्तर है। "अज्ञान का अन्त कैसे हो" ज्ञान में इस सबल विचार का उत्पाद ही अज्ञान का प्राणान्तक है क्योंकि प्रबल अज्ञान में ऐसा समर्थ विचार होता ही नहीं।

"अनादि अज्ञान के प्रवाह में शुद्धात्मानुभूति सम्पन्न किन्हीं ज्ञानी सत् पुरुष का सुयोग मिलने पर जो महान् उद्यमशील आत्मा उनकी कल्याणी वाणी को हृदयंगम करता है। उसका अनादि का अज्ञान शिथिल होकर इस समर्थ विचार में प्रवृत होता है। ज्ञानी गुरू के सुयोग एवं उनकी वाणी मात्र से यह नहीं होता वरन गुरू की वाणी का मर्म जिसे अपने ज्ञान में प्रतिभासित हुआ है उसे यह विशुद्ध चिंतन धारा प्रारम्भ होती है। एक प्रश्न हमारा और हो सकता है कि अज्ञानी को ज्ञान ही नहीं है कि वह यह सब कैसे करता होगा ? तो ऐसा नहीं है उसके पास ज्ञान का अभाव है। अज्ञानी के पास ज्ञान तो बहुत है किन्तु परसत्ता शक्ति के कारण उसके ज्ञान कासूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यवसाय भी पर में ही होता है। किन्तु यही ज्ञान सदगुरू भगवन्त से आनन्द निकेतन स्व सत्ता की महिमा सुनकर उसके प्रति उग्र व्यवसाय करके सम्यक् ज्ञान में परिणित हो जाता है और अतिन्द्रिय आनन्द का संवेदन करता है।

अज्ञानी के ज्ञान का यह ईहात्मक प्रश्न कि 'अज्ञान का अन्त कैसे हो' अज्ञान को एक खुली चुनौती है। इस प्रश्न में अज्ञानी को अज्ञान का स्वरूप विदित हो चुका है अब वह समझने लगा है कि मेरी चैतन्य सत्ता को अनादि अनंत, पूर्ण ध्रुव अक्षयानन्द एवं सर्व सम्बन्ध विहीन है और मेरी ही वृत्ति ने उसे नश्वर, अपूर्ण, दुखी, अज्ञानी एवं पराधीन कल्पित किया है। यही मेरा अज्ञान था और अज्ञान आत्मा की पर्याय होने पर भी झूँठा होने कभी भी अनुशीलन के योग्य अर्थात् श्रद्धेय नहीं है क्योंकि अज्ञान के अनुशीलन में कभी भी सही आत्म सत्ता की उपलब्धि नहीं हो सकती। अज्ञान के सदृश समस्त ही पर्याय वर्ग श्रद्धेय की कोटि में नहीं जाता। इस अज्ञान को वह स्वसत्ता विरोधी एवं नितान्त मिथ्या मानकर अज्ञान एवं अज्ञान से प्रादुर्भत परसत्तावलम्बी पुण्य एवं पाप की वृतियाँ एवं अन्नत पर सत्ताओं से एकत्व तोड़ता हुआ एवं समर्थ भेदज्ञान के बल से स्व सत्ता में ही एकत्व एवं अहं की स्थापना करता हुआ अपने अविराम चिन्तन द्वारा जब महामहिम आनन्द निकेतन निज चैतन्य सत्ता में ही अलख जागता है तो सदा से पुण्य पाप जैसी पर सत्ताओं में पड़ा अपनी श्रद्धा का अहं कंपित एवं विडोलित होकर स्खलन को प्राप्त हो जाता है और लौट कर अपनी ध्रुव अक्षय सत्ता में ही अहंशील होता है। स्वरूप के अहं में धारावाहिक सक्रिय

इस गौरवमय वृत्ति को ही सम्यक् दर्शन कहते है। श्रद्धा का स्व सत्ता में अहं परिणित होने के ही क्षण में श्रुत ज्ञान की अविराम चिंतन धारा मन का अवलम्बन तोड़ती हुई विराम को प्राप्त होकर उसी शुद्ध चैतन्य सत्ता में एकत्व करती हुई अतीन्द्रिय आनन्द का संवेदन करती है। उपयोग की यह परिणति ही सम्यक् ज्ञान है जो अनुभूति का विलय हो जाने के उपरान्त भी भेद विज्ञान की प्रचंड क्षमता को लेकर सम्यक् दर्शन के साथ निरन्तर वना रहता है और उसी समय किंचित रांगशों के अभाव से उत्पन्न अल्प स्वरूप स्थिरता ही स्वरूपाचरण चारित्र है । इसी प्रकार परम आनन्द स्वरूप यह अनुभूति श्रद्धा. ज्ञान, चारित्र की त्रिवेणी है और साक्षात् मोक्ष मार्ग है।"

जैन दर्शन का यह चिंतन सचमुच कितना वैज्ञानिक है कि जहाँ वह यह प्रतिपादन करता है कि जीवन कला का आरम्भ ही जीवन तत्व (निज अक्षय सत्ता) के स्वीकार से होता है। इसीलिए साधना के प्रथम चरण में उसने सम्यक् दर्शन को स्थापित किया और कहा कि इसके विना सर्वबोध एवं जीवन की सर्व आचार संहिता मिथ्या ही होती हैं।

"सम्यक् दर्शन जैसी जीवन की महान् उपलब्धि एवं उसके विषय को हृद्यंगम करने के लिए यदि हम आत्म पदार्थ स्वरूप पर अनेकांतिक दृष्टि से विचार करें तो निर्णय वड़ा सरल हो जावेगा। यह निर्विवाद है कि आत्म पदार्थ के दो अंश है—द्रव्य एवं पर्याय। आत्म पदार्थ का द्रव्य अंश जिसे शुद्ध चैतन्य सत्ता, कारण परमात्मा, परम पारणामिक भाव भी कहते है सदा पर से भिन्न, अक्षय, अनन्त शक्तिमय पूर्ण, ध्रुव, अत्यन्त शुद्ध एवं पूर्ण निरपेक्ष है। उसमें कुछ भी करने का कभी अवकाश नहीं है और वह सदा ज्यों का त्यों रहता है। आत्मा के द्रव्यांश का यह स्वरूप प्रसिद्ध हो जाने पर अव उसका दूसरा अंश पर्याय शेप रह जाती है। यदि हम पर्याय की कार्य मर्यादा पर विचार करें तो हमारे मन में स्वाभाविक ही एक प्रश्न पैदा होगा कि द्रव्य के पूर्ण एवं शुद्ध सिद्ध हो जाने पर पर्याय को तो द्रव्य में कुछ करना ही नहीं रहा तव फिर पर्याय का कार्य क्या होगा ? तो उसका एक यह सरल उतर है कि पर्याय का कार्य नित्य विद्यमान द्रव्य का दर्शन; उसी का अहम् उसी की अनुभूति, एवं उसी की लीनता करना रहा और पर्याय का स्वरूप भी आलम्बनशीलता ही है। वह द्रव्य की रचना नहीं करती, द्रव्य में कोई अतिशय नहीं लाती वरन् द्रव्य जैसा है वैसी ही उसकी प्रतीति एवं अनुभूति करती है। द्रव्य तो ज्ञान एवं अज्ञान दोनों दशाओं में ज्यों का त्यों रहता है। इस प्रकार अनेकांतिक पद्धति में आत्म पदार्थ के दो अंश द्रव्य एवं पर्याय की स्वरूप सीमा भी स्थिर हो जाती है और आत्म पदार्थ दो अंशों में खण्डित न होकर द्रव्य पर्याय स्वरूप पूरा वना रहता है।

आत्मा द्रव्य पर्याय स्वरूप होने पर भी द्रव्य पर्याय का स्वरूप परस्पर विरुद्ध होने के कारण श्रद्धा का अहम् एक ही साथ दोनों में नहीं हो सकता जैसे एक स्त्री का अहम एक ही साथ स्व एवं पर दो पुरुषों में नहीं हो सकता। नित्य द्रव्य के अहम् में 'मैं अक्षय हूं" ऐसी अनुभूति होती है और अनित्य पर्याय के अहम् में "मैं क्षणिक हूं" ऐसा संवेदन होता है। पर्याय का स्वरूप भी विविधरूप है। वह क्षणिक है, आलम्बनवती है, वर्तमान में विकारी है, भूत एवं भविष्य का व्रती समुदाय वर्तमान में विद्यमान ही नहीं है एवं समग्र ही वृत्ति समुदाय गमनशील है। उसमें विश्राम नहीं है। पथिक को गमन में नहीं, गन्तव्य में विश्राम मिलता है क्योंकि गन्तव्य ध्रुव एवं विश्राम स्वरूप होता है। इसी प्रकार आत्म वृत्ति को वृत्ति में नहीं ध्रुव में ही विश्राम मिलता है। वृत्तियाँ तो स्वयं ही विश्राम के लिए किसी सत्ता को तपासती हैं। इस प्रकार समग्र ही वृत्ति समुदाय दृष्टि (श्रद्धा) के विषय क्षेत्र से वाहर रह जाता है। इसी अर्थ में आचार्य देव श्री अमृतचन्द्र ने कहा है कि वद्धस्पृष्टादि भाव आत्मा के ऊपर ही उपर तैरते है उनका आत्मा में प्रवेश नही होता।

इस सम्वन्ध में कुछ और भी तथ्य विचारणीय है। आत्मा एक अनादि अनन्त ध्रुव एवं अक्षय सत्ता है। गुण एवं पर्याय तो उसके लघु अंश है और वह एक ही सदा इनको पीकर वैठा है। अत: गुण पर्याय के अनन्त सत्वों से भी वह एक चिन्मय सत्ता वहुत अधिक है। पर्याय जव उस अनन्तात्मक एक का अहम् एवं अनुभव करती है तो उस एक की अनुभूति में अनन्त ही गुणों का स्वाद समाहित हो जाता है। इसके स्थान पर एक एक गुण पर्याय की अनुभूति की चेष्टा स्वयं ही वस्तु स्थिति के विरुद्ध होने से प्रतिक्षण आकुलता ही उत्पन्न करती है क्योंकि वस्तु के प्रत्येक प्रदेश में अनन्त गुणों की समष्टि इस तरह संगठित एवं एकमेक होकर रहती है कि उनमें से किसी के अनुभव का आग्रह अनन्त काल में भी साकार नहीं होता वरन् अज्ञानी अपनी इस चेष्टा में प्रतिक्षण विफल प्रयास होने से निरन्तर प्रचण्ड आकुलता को उपलब्ध करता रहता है। गुण पर्याय के अहम् में अनन्त गुण पर्याय की एक छत्र स्वामिनी भगवति चैतन्य सत्ता का महान् अपमान भी होता है। अत: गुण पर्याय का अहम् भी जड़ सत्ताओं के अहम् के समान मिथ्यादर्शन ही है।

आत्मा के द्रव्य गुण पर्याय एक ही समय में ज्ञान के विषय वनते है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उनको अहम् भी एक ही साथ समान रूप से समर्पित किया जाये। अनेक को एक साथ जानना एक वात है और फिर उनमें से श्रद्धा (अह्म) के विषय का चयन करना विलकुल भिन्न दो वात है। सभी श्रेय श्रद्धेय नहीं होते वरन् आत्मा के द्रव्य गुण पर्याय मय परस्पर विरुद्ध स्वरूप को जानकर ज्ञान ही यह निर्णय लेता है कि ये तीनों समान रूप से उपादेय नहीं हो सकते वरन् तीनों में मात्र निर-

पेक्ष निरभेद एवं निरविशेप द्रव्य सामान्य ही उपादेय अथवा श्रद्धेय होने योग्य है। अन्य की उपादेयता स्पष्ट मिथ्या दर्शन है।

एक वार्ता यह भी वहुलता से चलती है कि जब एकान्त पर्याय दृष्टि अर्थात पर्याय का अहम् मिथ्या एवं आकुलता स्वरूप है तो एकान्त द्रव्यदृष्टि भी मिथ्या एवं आकुलतामय होना चाहिए। यह तर्क ठीक ऐसा ही लगता है कि गर्त में गिरना यदि एकान्त कष्टमय है तो सयन का निवास भी एकान्त कष्टप्रद ही होना चाहिए किन्तु यह तर्क तो स्पष्ट अनुभूति के विरुद्ध है। जब समग्र ही पर्याय समुदाय अज्ञान राग द्वेष एवं अनित्यता का आयतन है और इसके समानान्तर एक मात्र निज चैतन्य सत्ता ही शुद्ध पूर्ण, ध्रुव एवं आनन्द निकेतन है तो दोनों में से किस का अहम् एवं किसका अवलम्बन श्रेयसकर होगा ? एक बात और है और वह यह कि ज्ञान सदा अनेकांतिक ही होता है और दृष्टि सदा ऐकांतिक ही होती है। द्रव्य एवं पर्याय के परस्पर विरुद्ध दोनों पहलुओं का परिज्ञान हो जाने पर सहज ही यह निर्णय हो जाता है कि वृत्ति (दृष्टि) को दोनों में से कहां आराम मिलेगा। "निश्चित रूप ध्रुव द्रव्य ही शाश्वत आराममय है" इस प्रकार ध्रुव की महिमा ज्ञात हो जाने पर अनादि से वृत्ति समुदाय में पड़ा श्रद्धा का अहम् विगलित होकर निज ध्रुव सत्ता के अहम् में परिणित हो जाता है।

श्रद्धा का विषय इतना स्पष्ट होने पर भी प्रमाणाभास से ग्रासीभूत कुछ ऐसे आग्रह है जिन्हें श्रद्धा के विषय में पर्याय शामिल किये विना तृप्ति नहीं मिलती। किन्तु हमारा संतुलित विशुद्ध चिन्तन स्वयं हमें यह समाधान देता है कि श्रद्धा के विषय क्षेत्र में पर्याय के भी पर्रपिण का हमारा आग्रह अविवेक तो है ही साथ ही अत्यन्त अव्यवहारिक भी है। इस सम्बन्ध में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात सदा दृष्टव्य है—एक प्रश्न है कि श्रद्धा का श्रद्धेय पहले से ही विद्यमान एवं पूर्ण होता है या श्रद्धा के क्षण में स्वयं श्रद्धा श्रद्धेय के साथ मिलकर उसे पूरा करती है और तब वह उसका श्रद्धेय होता है ? यदि श्रद्धा श्रद्धेय को पूरा करती है तो इसका अर्थ यह हुआ कि श्रद्धेय सदा ही अपूर्ण है और अपूर्ण श्रद्धेय में श्रद्धा का सर्व समर्पण एवं लीनता अनन्त काल में भी सम्भव नहीं है। इस प्रकार श्रद्धेय की अपूर्णता में श्रद्धा का स्वरूप सदैव संदिग्ध, प्राप्त एवं मलिन ही रहेगा और वह कभी भी सर्व समर्पण पूर्वक श्रद्धेय का चरण नहीं करेगी। एक बात और है—यह तो सर्व विदित है कि वर्तमान में अज्ञानी का पर्याय समुदाय विकारी है और स्व एवं पर, द्रव्य एवं पर्याय, विकार एवं निर्विकार आदि का तात्विक चिंतन एवं विश्लेपण भी अज्ञान दशा से ही प्रारम्भ होता है। अज्ञानी को अपनी विशुद्ध चिंतन धारा में जब यह पता लगता

है कि 'मेरी सत्ता तो नितान्त शुद्ध एवं अक्षय है और मेरी ही वृत्ति उसे अशुद्ध एवं नश्वर घोषित करती रही" तो वृत्ति समुदाय में पड़ा उसका विश्वास स्खलित होकर शुद्ध चैतन्य सत्ता पर अपनी स्थापना कर लेता है। इस विश्वास में सदैव ही पर्याय के स्तर का निषेध प्रवर्तित होता है। इसी को पर्याय का हेयत्व कहते है। स्पष्ट वात तो यह है कि दृष्टि में निषेध रूप भी कोई वृत्ति प्रवर्तित नहीं होती वरन् निरन्तर निज शुद्ध चैतन्य सत्ता में अह्म का प्रवर्तन ही पर्याय का निषेध अथवा हेयत्व कहा जाता है। फिर भी यदि हमारा पूर्वाग्रह विकारी एवं अनित्य समुदाय को परम निरविकार नित्य द्रव्य के साथ मिला कर अपने श्रद्धेय की रचना करेगा तो उस श्रद्धेय का क्या स्वरूप होगा इसकी कल्पना भी सम्भव नहीं है। सम्भवत इस मिथ्या एवं विफल प्रयास में श्रद्धा एव श्रद्धेय का सम्पूर्ण सौन्दर्य ही नष्ट हो जावेगा। इसी प्रकार भावी निर्विकारी पर्याय समुदाय को द्रव्य में मिलाकर श्रद्धा करने का आग्रह भी समान कोटि का मिथ्या दर्शन ही है क्योंकि भावी निरमल पर्यायें तो वर्तमान में विद्यमान ही नहीं है अत: उस अविद्यमान ही नहीं है अत: उस सत् को विद्यमान द्रव्य में मिलाने की विधि क्या होगी ? दूसरी वजनी वात यह है कि कोई भी पर्याय नित्य विद्यमान निरविकारी निज चैतन्य सत्ता के अवलम्वन पर शुद्ध होती है न कि शुद्ध पर्याय का अवलम्वन होता है।

इस संदर्भ में एक अत्यन्त सुन्दर मनोवैज्ञानिक तर्क भी हमें समाधान देगा कि जव इस अनन्त विश्व में एक मात्र निज शुद्ध चैतन्य सत्ता ही सम्पूर्ण एवं सर्वोत्तम होने से शरणय है और इसके समानान्तर समग्र ही गुण पर्याय समुदाय एवं विश्व की जड़ सत्तायें हीन एवं भिन्न होने से शरणय नहीं हो सकती तो सर्वोत्तम सत्ता का अवलम्वन न लेकर हीन एवं भिन्न के अह्म एवं अवलम्वन में क्या कभी आनन्द की निष्पत्ति हो सकेगी ? निश्चिन ही नहीं होगी। फिर भी यदि पर्याय पक्ष का आग्रह प्रवर्तित होता है तो इससे वड़ी दुर्गति एवं दुराशय दूसरा क्या होगा।

शुद्ध चैतन्य सत्ता मिथ्या दर्शनादि विकारी पर्याय समुदाय से विकारी नहीं वनती वरन् इस शुद्ध चैतन्य सत्ता का अदर्शन अर्थात् अविश्वास ही मिथ्यादर्शन की विकारी पर्याय है। इसी प्रकार वह चैतन्य सत्ता सम्यक् दर्शनादि शुद्ध पर्यायों के उत्पन्न होने पर शुद्ध नहीं होती वरन् उस शुद्ध चैतन्य सत्ता का दर्शन अर्थात् अहम् ही सम्यक् दर्शन की शुद्ध पर्याय है। इस प्रकार चैतन्य सत्ता की त्रैकालिक शुद्धता एवं सर्व नय निरपेक्षता अत्यन्त निरापद है और सर्व ही अनित्य एवं विकारी पर्याय समुदाय उसकी ध्रुव परिधि के वाहर रह जाता है। यहाँ तक कि ध्रुव सत्ता के अहम् को सम्यक् दर्शन कहा तो जाता है किन्तु सम्यक् दर्शन में ध्रुव का अहम् नहीं

वरन् स्वयं ध्रुव है। इस प्रकार स्वयं सम्यक् दर्शन भी सम्यक् दर्शन की परिधि (ध्रुव) के बाहर रह जाता है और यद्यपि द्रव्य पर्याय स्वरूप पूरे आत्म पदार्थ में सम्यक् दर्शन का विषय पदार्थ का ध्रुव सामान्य द्रव्यांश ही होता है किन्तु वह अंश अपूर्ण नहीं स्वयं ही पूर्ण है और दृष्टि (श्रद्धा) उसमें अंश का नही वरन् पूर्ण का अनुभव करती हुई स्वयं पूर्ण है। इस प्रकार दोनों अंशों की पूर्णता ही वस्तु की पूर्णता है। ध्रुव को अंश मानकर श्रद्धा करना प्रकारान्तर से मिथ्या दर्शन ही है जैसे ग्यारह के अंक में एक के दोनों अंक अपने-अपने में पूर्ण है। इस प्रकार दोनों अंक अपूर्ण हो तो ग्यारह का पूर्णांक ही उपलब्ध नहीं होगा क्योंकि दो अपूर्ण स्वयं तो कभी पूरे होते ही नहीं किन्तु दोनों मिलकर भी किसी एक पूर्ण स्वरूप को निष्पन्न नहीं कर सकते। यह वस्तु स्वभाव की स्वयं सिद्ध विलक्षणता ही है।

इस पद्धति में आत्मा को मात्र ध्रुव मानने से उसमें पर्याय का अभाव नहीं हो जाता वरन् ध्रुव एवं ध्रव की श्रद्धा, पूर्ण एवं पूर्ण का अहम् इस प्रकार दोनों अंशों की निरपेक्ष पूर्णता में आत्म पदार्थ द्रव्य पर्याय स्वरूप पूर्ण ही बना रहता है। वास्तव में ध्रुव को अंश मानने वाली श्रद्धा में पूर्ण की प्रतीती ही नहीं होगी वरन् सदा ही ऐसा लगता रहेगा कि आत्मा में अभी कुछ कमी है। निश्चय ही श्रद्धा आदि वृत्तियों का कार्य ध्रुव आत्मा में कुछ करना नहीं वरन् उसे ध्रुव मानना मात्र होता है। "मैं ध्रुव हूँ" यही सम्यक् दर्शन का स्वर है। सम्यक् दर्शन की काया ध्रुव से ही निर्मित है उसमें सर्वत्र ध्रुव ही पसरा है। अनित्यता उसमें है ही नहीं। उसे विश्व में ध्रुव के अतिरिक्त अन्य सत्ता का स्वीकार ही नहीं है। उसका विश्व ही ध्रुव है। यदि दृष्टि में ध्रुव के अतिरिक्त अन्य सत्ता का भी स्वीकार हो तो दृष्टि का स्वभाव अहम् होने के कारण उसे अन्य सत्ता में अहम् हुए बिना नहीं रहेगा ओर यही अहम् मिथ्या दर्शन है। "मेरी सत्ता ध्रुव है" सम्यक्दर्शन को द्रव्य पर्याय का यह भेद भी बर्दाश्त नहीं है। उसे ज्ञान की तरह स्व पर का भेद करना नहीं आता उसे तो अहम् करना आता है। उसके लोक में कोई पर है ही नहीं। वह मिथ्या होती है तब भी उसे सब स्व ही दिखाई देता है तब सम्यक् होने पर तो उसकी परिधि में अन्य भावों का प्रवेश कैसे सम्भव है और तो और सम्यक् दर्शन के घर में स्वयं अपने रहने के लिए भी कोई जगह नहीं है। उसने अपना कोना-कोना ध्रुव के लिए खाली कर दिया है।

सौराष्ट्र के सन्त ने भव के अन्त के लिए "ध्रुव" का यह मंगल सूत्र लोक को दिया। उन्होंने सम्यक्दर्शन के जिस स्वरुप का अनुसंधान किया वह इस युग का एक आश्चर्य है। सम्यक्दर्शन के इस सूक्ष्म एव अद्भुत स्वरूप का इस युग को स्वप्न भी

नहीं था। वास्तव में श्री कानजी स्वामी इस युग में सम्यक् दर्शन के आविष्कर्त्ता है और यह भवान्तक सम्यक् दर्शन इस युग को उनका सबसे महान् वरदान है। इसके स्वरूप का बोध उनके बिना सम्भवित ही नहीं था। उन सत् पुरुष ने सम्यक् दर्शन के सम्बन्ध में प्रचलित सभी भ्रान्तियों को प्रक्षालित कर दिया। कोई कहते थे कि सच्चे देव, गुरु, धर्म की श्रद्धा ही सम्यक् दर्शन है तो कोई सात तत्व की श्रद्धा किसी ने तो यहां तक कहने का दुस्साहस किया कि जैन कुल में जन्म ही सम्यक् दर्शन है। कहीं से आवाज आई कि सम्यक् दर्शन काल लब्धि आने पर अपने आप होता है उसके लिए पुरुषार्थ अपेक्षित नहीं है और उत्पन्न हो जाने पर भी स्वयं को उसका पता नहीं चलता किन्तु उन महापुरुष ने रहस्योदघाटन किया कि इनमें से एक भी सम्यक् दर्शन नहीं हैं इन सबकी समग्रता में भी प्रचंड अन्तर पुरुपार्थ के विना सम्यक् दर्शन नहीं होता। यह भी नितांत असत्य है कि सम्यक् दर्शन होने पर स्वयं को उसका पता नहीं चलता। सम्यक् दर्शन का उद्भव होने पर साधक को निज शुद्ध चैतन्य सत्ता की लीनता में अतींद्रिय आनन्द का प्रयत्क्ष संवेदन होता है। आगम का अक्षर अक्षर इसका साक्षी है। उन सन्त ने सम्यक् दर्शन के इस निश्चय पक्ष का ही विवेचन नहीं किया वरन् उसके व्यावहारिक पक्ष का भी प्रवल समर्थन किया। उन्होंने कहा 'सम्यक् दृष्टि मिथ्यात्व, अन्याय एवं अभक्ष का सेवन नही करता।' उसका लोक जीवन वड़ा पवित्र होता है वह स्वप्न में भी अतत्व एवं असत्य का समर्थन नहीं करता। वही सच्चे देव गुरु धर्म का सच्चा उपासक होता है। जीवन में इस विशुद्धि के प्रादुर्भावि भाव के विना सम्यक् दर्शन नहीं होता। उसका जन्म पवित्र मनोभूमि में ही होता है।

सम्यक् दर्शन की गरिमा को गाते गाते वे सन्त विभोर हो जाते है। वे कहते है "सम्यक् दर्शन जीवन की कोई महान उपलब्धि है वह जीवन तत्व एवं जीवन कला है। उसके विना जीवन मृत्यु का ही उपनाम है। ज्ञान में स्व पर का भेद समझने की क्षमता होने पर सम्यक् दर्शन हर परिस्थिति में हो सकता है। सातवें नरक की भयंकरता अथवा स्वर्गों की सुपमा उसमें वाधक नहीं होती। कर्मकाण्ड के कठिन विधान उसकी उत्पत्ति में मदद नहीं करते उसे घर नहीं छोड़ना है देह का विर्सजन नहीं करना है वरन् घर एवं देह में रहकर उनसे अहम् तोड़ना है। इसीलिए सम्यक् दर्शन सरल है। कठिन की कल्पना ही कठिनाई है। सम्यक् दर्शन अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थिति का दासत्व स्वीकार नहीं करता इसीलिए नरक एवं स्वर्ग के विपम वायु मण्डल में भी "मैं नारकी नहीं, मैं देव नहीं वरन् मैं तो अक्षय चैतन्य तत्व हूं ऐसे अविराम संचेतन में उसका जन्म हो जाता है इसीलिए वह हर गति में

होता है।" इस युग में सम्यक् दर्शन श्री कानजी स्वामी की एक ऐसी शोध है जिसने मृत्यु की ओर बढ़ते युग के चरण जीवन की ओर लौटा दिये है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि उस संत के सम्यक्दर्शन ने मृत्यु को ही मार कर विश्व से उसकी सत्ता ही समाप्त कर दी है।

श्री कानजी स्वामी एवं चारित्र—सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् ज्ञान की तरह पूज्य गुरु देव ने चारित्र का भी एक प्रान्जल स्वरूप प्रस्तुत किया। वे चारित्र के महान् उपासक है। चारित्रवन्त दिगम्बर सन्तों के अन्तर वाह्य स्वरूप का वर्णन करते करते वे अघाते नहीं है। सहस्त्रों वार उनके अन्त स्थल से यह उद्‌गार सहज ही निकल पड़ते है कि "ऐसे वन विहारी नग्न दिगम्बर, वीतराग सन्तों के दर्शन हमें कव प्राप्त हो और वह अवसर कव आवें जव उस आनन्दमय नग्न दिगम्बर दशा की हमें उपलब्धि हो" कुन्द कुन्द एवं अमृतचन्द्र जैसे अनन्त भावलिंगी सन्तों के चरणों में उनका मस्तक सदा नत रहता है। आनन्द में झूलते दिगम्बर सन्तों के हृदय के मर्म को आज वे ही पहिचान पायें है। मुनित्व के वाह्य इति वृत्तों में मुनि का आत्मा खो गया था चारित्र को कठिन एवं कष्ट साध्य माना जाता था। चारित्र के उस महान् उपासक की वाणी के माध्यम से चारित्र का सही स्वरूप आज निखरा है। कोरे शुभ अनुष्ठानों की काली कारा में चारित्र जैसे जीवन तत्व को कैद करने के सभी प्रयत्न आज उस सन्त ने विफल कर दिये है। उन्होंने शंखनाद फूँका 'चारित्र न तो घर वार आदि वाह्य संयोगों का वियोग मात्र है और न कर्मकाण्ड की छलागें। न कोरा नग्नत्व ही चारित्र है और न महाव्रत, समिति आदि का पराश्रित शुभाचार। उपसर्ग एवं परिषह झेलना भी चारित्र नहीं तो इन्द्रियों का दमन एवं भयंकर काय क्लेश भी नहीं वरन् स्वरूप में अन्तर्लीन आनन्द वृति ही चारित्र है।"

श्री कानजी स्वामी ने चारित्र के अनिवार्य सहचर शुभाचार का भी जिसे व्यवहार चारित्र कहते है पूरा समर्थन किया "उन्होंने कहा शुभाचार जो मात्र मंद कषाय की ही पर्याय है उसे चारित्र मानना तो मिथ्या दर्शन है ही किन्तु वीतराग चारित्र के अनिवार्य सहचर शुभाचार का सत्व ही स्वीकार न करना भी समान कोटि का मिथ्या दर्शन ही है।" मुनित्व की भूमिका में उग्र चारित्र के साथ रहने वाले शेष कषायांप इतने मंद हो जाते है कि उनकी अभिव्यक्ति २८ मूलगुण रूप शुभाचार के रूप में ही होती है। अतएव श्री कानजी स्वामी कहते है कि यद्यपि नग्नता मुनित्व नहीं किन्तु मुनि नग्न ही होते हैं और अन्तरंग परिग्रह के अभाव के साथ उनके तिल तुश मात्र भी वाह्य परिग्रह नहीं होता। मुनि का स्वरूप ज़माने के अनुसार नहीं वदलता वरन् उनका त्रैकालिक स्वरूप एक ही होता है। उन्होंने व्यवहार चारित्र का

बड़ा सुन्दर स्पष्टीकरण किया कि व्यवहार (शुभ भाव) कोई चारित्र नहीं है वरन् वह तो अचारित्र भाव में चारित्र का आरोप मात्र है। क्योंकि अन्तरंग वीतराग चारित्र के साथ वह शुभ भाव भूमि नियम से होती है तथा उस शुभ भाव भूमि के प्रगट हुए बिना वीतराग चारित्र भी प्रकट नहीं होता। इसी अनुरोध से मन्द कषाय रूप उस अचारित्र भाव को भी चारित्र कहने की एक पद्धति है और इसी पद्धति को व्यवहार कहते है। किन्तु वस्तुतः चारित्र तो आनन्दमय वीतराग भाव ही है और वही मोक्ष मार्ग है। मन्द कषाय रूप व्यवहार चारित्र-चारित्र का विकार मात्र है। वह थोड़ा भी चारित्र नहीं है और सर्व ही बन्ध स्वरूप है।

सम्यक् दृष्टि को जीवन में सदा ही चारित्र के प्रादुर्भाव की उग्र भावना प्रवर्तित होती है उसे भले ही पुरुषार्थ की निर्बल गति के कारण चारित्र नहीं होता किन्तु वह कभी भी चारित्र की आनन्दमय वृति के प्रति उदासीन एवं प्रमादी भी नहीं होता। अतः निश्चित ही उसे इस भव अथवा भवान्तर में चारित्र का उदय होता है। मोक्ष मार्ग की क्रमिक भूमिकाओं का उल्लंघन करके जल्द बाजी करने से चारित्र नहीं आता वरन शुद्ध चैतन्य तत्व की उग्र भावना से ही जीवन में चारित्र का उदय होता है।

श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र का तो विशद विवेचन श्री कानजी स्वामी की वाणी में हुआ ही है किन्तु साथ ही जैन दर्शन के आधार भूत सिद्धान्त निश्चय व्यवहार निमित्त उपादान एवं आर्हत दर्शन का प्राण अनेकांत आदि का जो अत्यन्त प्रामाणिक आगम सम्मत एवं सतर्क प्रतिपादन हुआ है कि वह चित्त को चकित कर देता है। सम्भवतः जैन दर्शन का आधार भूत कोई सिद्धान्त ऐसा नहीं है जिसमें उनके ज्ञान एवं वाणी का व्यवसाय नहीं हुआ हो। अध्यात्म का ऐसा सांगोपांग एवं व्यापक विवेचन तो शताब्दियों में नहीं हुआ। चालीस वर्ष से अध्यात्म की बरसातें करती हुई उनकी प्रज्ञा ने अज्ञान की जड़ें हिला दी है। तीर्थंकरों एवं वीतराग सन्तों के हृदय का मर्म खोलकर उन्होंने हमें तीर्थकरों के युग तक पहुंचा दिया है। उनकी प्रज्ञा ने आगम के गम्भीर रहस्यों की थाह लेकर जो मर्म निकाले है वह इस युग का एक आश्चर्य सा लगता है। वाणी का यह कमाल कि चालीस वर्ष के धारावाहिक प्रवचनों में कहीं भी पूर्वा पर विरोध नहीं है। आत्म प्रसिद्धि, नय प्रज्ञापन एवं अध्यात्म संदेश जैसी साहित्यिक विधियां उनकी निर्मल एवं पैनी प्रतिभा के ऐसे प्रसव है जिन्हें देखकर आज के युग का बौद्धिक अहम उनके चरणों की धूल में धूसरित होकर गर्व का अनुभव करेगा। उनके प्रवचनों से कल्पनातीत आध्यात्मिक साहित्य का सर्जन हुआ है। शाश्वत शान्ति के विधि विधानों से भरे उनके आध्यात्मिक साहित्य ने भारतीय

साहित्य का शीश विश्व में ऊँचा किया है। वह साहित्य युग युग तक शान्ति के पिपासुओं को सच्ची शान्ति का दिशा निर्देशन करता रहेगा। उन्होंने जिस आध्यात्मिक क्रान्ति को जन्म दिया है उसने युग के प्राण मौत के मुंह से निकाल दिये है आज जन जन के श्वास प्रश्वास में अमरत्व का संचार होने लगा है। आज के त्रस्त जन जीवन को उनकी वाणी में सही राह एवं राहत मिली है। श्री कानजी स्वामी का युग भारतीय इतिहास एवं श्रमण सस्कृति का एक स्वर्ण युग होगा। उन्होंने भारतीय इतिहास में एक बेजोड़ अध्याय जोड़ा है। वे उस क्रान्ति के उन्नायक महामानव है जिसका जन्म वाहर नहीं भीतर होता है। जिस क्रान्ति के उदय में आत्मा क्लान्ति का नहीं वरन मंगलमय शान्ति का संवेदन करता है। लक्ष लक्ष मानवों ने उनकी इस शान्ति वाहिनी क्रान्ति का समर्थन किया है और उसके सत्य को परख कर उसमें दीक्षित हुए है। आज लोक का यह स्वर कि "यदि यह मुक्ति दूत नहीं होता तो हमारी क्या दशा होती "लोक हृदय की सच्ची अभिव्यंजना है। निस्संदेह श्री कानजी स्वामी लोक माँगल्य की प्रतिष्ठा करने वाले एक लोक दृष्टा एवं लोक सृष्टा युग पुरुप है।

इन महापुरुप का अन्तरंग जैसा उज्जवल है वाह्य भी वैसा ही पवित्र है। उनकी अत्यन्त नियमित दिनचर्या सात्विक, एक रूप, एवं परिमित आहार आगम सम्मत, सत्य सम्भापण, करूणा एवं सुकोमल हृदय उनके व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव है। ८७ वर्ष की अति वृद्ध अवस्था में भी उनकी दिनचर्या इतनी नियमित एवं संयमित है कि एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाता। "समय गोयम मा पमायए" की वीर वाणी उनके जीवन में अक्षरशः चरितार्थ हुई है। शुद्धात्म तत्व का अविराम चिन्तन एवं स्वाध्याय ही उनका जीवन है। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति वे सदैव सतर्क एवं सावधान है। उसका उल्लंघन उन्हें सह्य नहीं है। उनके जीवन का प्रत्येक स्थल अनुकरणीय है। निश्चित ही वे इस जगत के वैभव है और युग उन्हें पाकर गौरवान्वित हुआ है।

वे युग पुरुप युगों युगों तक मुक्ति का संदेश प्रसारित करते हुए युग-युग जीवें यही आज के युग की एक मात्र कामना है।

मैं उन युग पुरुप की ८७ वीं जयन्ति के पुण्य पर्व पर अपनी श्रद्धा के अनन्त सुमन उनके चरणों में चढ़ाता हूं।

□
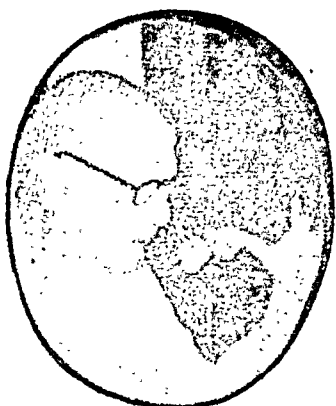
युग पुरुष कानजी स्वामी का शत-शत अभिनन्दन !

हजारी लाल 'काका'

□

जिसने धर्म साधना ही में लगा दिया है अपना तन मन,
भारत भर में घूम-घूम कर दिया धर्म को नूतन जीवन।
अडिग आज जो आत्म धर्म पर निश्चय नय काले अवलम्वन,
हे युग पुरुष तुम्हें तन-मन से करता हूँ शत-शत अभिनंदन।

जिनके सतत प्रयत्नों से चल रही धर्म की चर्चा घर-घर,
जिसनें जन जीवन में फूंका आत्म धर्म का मंत्र मनोहर।
समय सार के गणधर वन कर'किया जिन्होंने पावन प्रवचन,
हे युग पुरुप तुम्हें तन मन से करता हूँ शत-शत अभिनंदन।

चौथा काल वर्तने लगता जहां आपने डाला वसेरा,
वह स्थल तीरथ वन जाता जहां आपने डाला डेरा।
तुमसे धर्मामृत रस पीकर प्रमुदित हो जाता है जन- जन,
हे युग पुरुप तुम्हें तन मन से करता हूँ शत-शत अभिनंदन।

रूढ़ि वाद में वहे जा रहे थे उन सव को सद्‌मार्ग वताया,
क्रिया कांड में धर्म समझने वालों को जाकर समझाया।
'काका' गंवा रहे क्यों नरभव कुछ तो इसकी कीमत आंकों,
अगर मोक्ष की है अभिलाषा तो अपने अंतर में झांको।

भेद प्रभेद वता करके समझाया ये है सम्यक दर्शन,
हे युग पुरुप तुम्हें तन मन से करता हूँ शत-शत अभिनंदन।

अध्यात्मरसिक

स्वस्ति श्री कानजी स्वामी जी का सद्भाव पूर्ण

स्वागतार्ह—प्रशस्त-विकल्प

[ब्र० माणिक चन्द्र चंवरे, करिजा]

सोनगढ़ में परमागम-मंदिर को निमित्त करके जो पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ उस समय सम्मिलित विद्वत् परिषद के अधिवेशन में श्री दि० जैन तीर्थ सुरक्षा निधि की आवश्यकता स्पष्ट की गई। विद्वत् समाज की तो पूर्ण अनुकूलता थी ही। उपस्थित समाज भर ने इस योजना का सद्भावों से एक स्वर से स्वागत ही किया। भारत भर में प्राचीन काल से दि० जैन समाज की तीर्थ क्षेत्र रूप संपदा वैभव संपन्न रही है। उसकी पूर्णरूपेण विधिवत् अद्ययावम् (up to date) सुरक्षा-सुव्यवस्था और जीर्णोद्धार होने के लिए करोड़ों की आवश्यकता है और यह इस काल में समयोचित और सर्वोपरि सामयिक घटना हो सकती है। इस विषय को लेकर समाज में नवचैतन्य निर्माण हुआ है। समाज की ओर संस्कृति की सुरक्षा के लिए एक पवित्रतम प्राणभूत घटना के विषय में भी योगायोग से कोई कोई भाई अन्यथा विकल्प करके गुणैक दृष्टि से या कार्य की दृष्टि से न देखते हुए कषायो का आविष्कार करने में न चूके। पक्षपात में पड़ जाने के कारण एक भाई ने महामहिम आचार्य श्री कुंद कुंद भगवान् को भी कोसा। सूर्य के ऊपर थूकने जैसी हंसी की वात हुई। अस्तु।

तीर्थ सुरक्षा का कार्य विशाल व्यापक ओर महत्वपूर्ण है। वह सुसंगठित रूप से योजनावद्ध सजगता से तत्परतापूर्ण स्वरूप से हो इसमें किसी को भी कोई विकल्प की आवश्यकता नहीं है। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी वम्वई इस कार्य में संग्लन है। उसके कार्यो में हस्तक्षेप करने का या सुरक्षा व्यवस्था में हस्तक्षेप करने का किसी को भी विकल्प नही था, न है। केवल सुरक्षा में समय पर आवश्यक सम्वल पहुंचाने मात्र उद्देश से यदि स्वतन्त्र रूप से भी 'सुरक्षा ट्रस्ट' होता हैं, उसमें भी

विकल्प का कोई कारण नहीं होना चाहिए। नये ट्रस्ट का दायरा और विचार धारा अत्यन्त स्पष्ट थी और तिथि १४/६/७४ की सोनगढ की खास मीटींग में पुनः अत्यन्त अत्यन्त स्पष्ट हुई। श्री पं० बाबू भाई जी श्री, नेमीचंद जी पाटनी आदि भाइयों ने अपने वक्तव्य में ट्रस्ट का मूल उद्देश्य और सदाशय प्रामाणिकता से स्पष्ट किया, अनन्तर इसी समय श्री भा० दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के मान्यवर सभापति श्री सेठ लाल चन्द जी ने प्रस्फुटित सदाशय को हृदयगंम करके उत्साह पूर्ण रूप से सहज भाव से प्राप्त होने वाले इस हार्दिक सहयोग का सहर्ष स्वागत ही किया और सफलता की मनोकामना प्रगट की।

इस ही अवसर पर स्वस्ति श्री आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी से ता० १६ को अध्यात्म प्रवक्ता श्रीमान पं० बाबू भाई के साथ स्वतंत्र रूप से भेंट होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। श्रीमान् स्वामी जी को और विकल्पों मे कोई रस विशेष नहीं परमार्थ की सहज स्वाभाविक रुचि है इस स्वभाव विशेष का परिचय था ही। इस लिए उनकी आध्यामिक विशिष्ट भाव समाधि में अपनी तरफ से अंतराय न हो, इस भावना से इसके पूर्व में कहने की तीव्र भावना होते हुए भी कुछ कहा नहीं था; परन्तु इस वक्त दिगम्बर जैन तीर्थ तीर्थनीधि और ट्रस्ट के विषय में आवश्यकता को लेकर मनोगत स्पष्ट किया। फलस्वरूप श्रीमन् स्वामी जी की ओर से जो भाव और भावनाएं व्यक्त हुई वह उनकी आध्यात्मिक गौरवता को लिए हुए ही थी। स्वामी जी ने कहा—

> **"अपनी ओर से किसी का द्वेष तो होना ही नही चाहिए। सत्वेषु मैत्री तत्वभावनापूर्वक होनी चाहिए। फिर भी दिगम्बर-जैन-तीर्थो की सुरक्षा और सुव्यवस्था के लिए उचित प्रबंध करना समाज का कर्त्तव्य होगा।"**

विचार पूर्ण अभिप्राय में रत्ती भर भी द्वेष भावना का अंश नहीं था। समाज की ओर से जो असीम प्रमाद भाव या उपेक्षाभाव हो रहा उसके परिहार के लिए संपूर्ण समाज को सूत्र रूप से समुचित मार्ग दर्शन भी था। सम्यग्दर्शन के साथ यदि विकल्प हो तो धर्मायतनों के विषय में किस प्रकार के हो सकते है इसका वह सहज भाव से प्रगट हुआ एक स्वभाव सुन्दर सद्भाव परिपूर्ण हृदयग्राही मनोहर दर्शन था।

समाज में हर एक विषय को लेकर समय-समय पर इष्ट अनिष्ट रूप हद से ज्यादह नुक्ताचोनी होती ही आई है। निष्पत्ति तो कुछ हुई नहीं। आशा करे कि इस विषय में यदि समाज चाहे तो बहुत कुछ सीख सकता है, सजग होकर बिना विकल्प अच्छी मात्रा में ठोस कार्य कर सकता है। परमात्म प्रसाद से यह सब हो, ऐसी हार्दिक भावना है। □

शत शत वन्दन

—डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल

श्रद्धेय कानजी स्वामी वर्तमान युग के महान् सत्पुरुष हैं। सद्गृहस्थ होते हुए भी समाज में उनका सम्मान किसी आचार्य व मुनि से कम नहीं हैं। तत्व ज्ञान का प्रचार करना उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य रहा है और उसमें आशातीत सफलता मिली है। गत ४० वर्षों से वे दिगम्बर समाज के आध्यात्मिक पक्ष को ऊंचा उठाने में व्यस्त हैं। आचार्य कुन्दकुन्द का समय सार उनका सर्वाधिक श्रद्धास्पद ग्रन्थ है जिसकी उन्हें प्रत्येक पंक्ति ही नहीं अपितु उसका प्रत्येक शव्द उनके रोम-रोम में समाया हुआ है। मुझे उन्हें दो वार सोनगढ़ में व चार वार जयपुर में नजदीकी से देखने का अवसर मिला और मैंने उन्हें अपने समय के प्रत्येक क्षण को तत्व चर्चा में व्यतीत करते हुए देखा। वे नियमित रूप से दिन में दो वार प्रवचन करते हैं। और उसमें आध्यात्मिकता का पाठ स्वयं पढ़ते हैं तथा श्रोताओं को पढ़ाते हैं। गम्भीर तत्व चर्चा करते हुए भी उन्हें हम प्रसन्न मुख पायेंगे, आत्मा की शक्ति का जव वे वर्णन करने लगते हैं तो अपने आपको भूल जाते हैं और ऐसे लगने लगता है कि जैसे वे आत्म गुणों में उतर गये हों। प्रवचन करने की उनकी अपनी शैली है और उसी शैली में आज देश के पचासों विद्वान उनके सन्देश का प्रचार प्रसार करने में लगे हुए हैं। देश में यह प्रथम अवसर है जवकि एक ही व्यक्ति के सद्प्रयत्नों एवं प्रेरणा से सारे देश में स्वाध्याय की परम्परा को प्रोत्साहन मिला हो।

पूज्य कानजी स्वामी का जन्म यद्यपि दिगम्बर सम्प्रदाय में नहीं हुआ लेकिन सारे देश में विशेषत: गुजरात में उन्होंने दिगम्बर धर्म का जिस विशाल पैमाने पर प्रचार किया, विशाल मन्दिरों का निर्माण कराने की प्रेरणा दी, पचासों पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सवों का आयोजन कराया और हजारों स्त्री पुरुषों को दिगम्बर धर्म में परिवर्तित किया यह उनके महान् व्यक्तित्व का परिचायक है। गत सैकड़ों वर्षों में इस प्रकार का परिवर्तन सम्भवत: प्रथम वार हुआ है। स्वामी जी का केन्द्र सोनगढ़ है। और वह अध्यात्म प्रेमियों के लिए तीर्थ स्थल के समान है। दिगम्बर जैन समाज में जितना साहित्य का प्रचार एवं स्वाध्याय के प्रति जन भावना उत्पन्न हुई है उन सव में स्वामी जी की प्रेरणा कार्य कर रही है। स्वामी जी साधु वेश में नहीं हैं लेकिन पूर्णतः साधु स्वभाव के हैं। आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य अमृत चन्द्र, पद्म नन्दि एवं महापंडित टोडर मल जी के वे सवसे अधिक प्रशंसक हैं और अपने प्रत्येक प्रवचन में इन महान् आत्माओं का स्मरण किए विना नहीं रहते।

इन विद्वानों के ग्रन्थों की तो उनको पंक्ति एवं वाक्य तक ऐसे के ऐसे याद हैं, जैसे मानो उन्होंने उन ग्रन्थों को पूर्ण आत्म सात कर लिए हों।

जैन धर्म के ऐसे महान् प्रचारक के चरणों में मेरा शतत: वन्दन।

गुरु-कहान

एक सन्त का मानस,
कभी नहीं स्वीकार करेगा,
रेखाओं में बन्धन।
जिसने जीवन भर सीखा है !
आत्म-देह का भेद
जो कि संसार छुटाता,
जीवन में जीने को जीता,
किन्तु भाव में मुक्ति समाई।
तदपि देह का त्याग,
ज्ञानमय हो तो फिर—
संसार नहीं फिर-फिर आयेगा
यही ध्येय ध्याता ने ध्याया
अमर हो गया और रहेगा :—
'गुरु कहान'
जो सदा तप रहा यही तपस्या
स्वर्णपुरी उद्यान महकता और गूंजता
इसी भाव के अलख राग से
चिर गुंजन हो रहा निनादित
लाखों-लाखों के अन्तस में
आत्मा की आवाज गूंजती
कलयुग में सतयुग दर्शाती
इसीलिए गुरुदेव नमन है—
हे आत्मा के सन्त नमन है—
परमात्मा के हे लघुनन्दन तुम्हें नमन है !!

राजेन्द्र कुमार जैन, विदिशा (म. प्र.)

आध्यात्मिक क्रान्ति के सूत्रधार :

श्री कानजी स्वामी
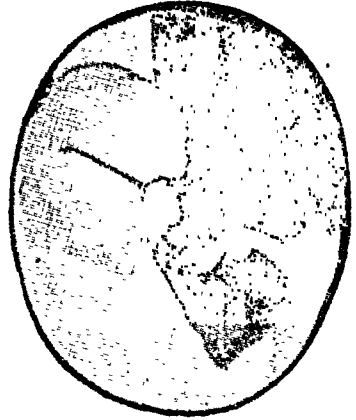
पं० रतन चन्द 'भारिल्ल', शास्त्री, न्यायतीर्थ, एम. ए., बी. एड, विदिशा (म. प्र.)

सोनगढ़ के सन्त युग पुरुष श्री कानजी स्वामी के अनुपम व्यक्तित्व ने धर्म एवं अध्यात्म के क्षेत्र में प्राय: सभी विशाल व्यक्तित्वों को प्रभावित किया है। ऐसा कोई भी नहीं बचा जो उनके व्यक्तित्व से अप्रभावित रहा हो। उन्होंने तत्वाज्ञान की ओर एक नया मोड़ दिया है जो युगों से विस्मृत था। वे वर्तमान आध्यात्मिक क्रान्ति के सृष्टा हैं। उनका अधिकांश जीवन धर्म भावना से ओत-प्रोत और आत्म-साधक के रूप में ही व्यतीत हुआ है एवं हो रहा है, अत: वे सच्चे अर्थो में सन्त व युग पुरुष हैं।

साधु, व्रती, विद्वान, श्रीमान् और नेतागण सभी ने स्वामी जी के बारे में समय-समय पर अपने-अपने मनोभाव अभिव्यक्त किए हैं तथा उनके द्वारा हुए तत्व प्रचार, दिगम्बर जिन धर्म की प्रभावना, धर्मयतनों के नव-निर्माण के महान कार्यो एवं आध्यात्मिक क्रान्ति की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। यहां कुछ मनीषियों के विचार उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत करने का प्रयत्न है।

सर्वप्रथम, तपोनिधि चारित्र चक्रवर्ती १०८ आचार्य शान्ति सागर जी (दक्षिण) के हृदय में कानजी स्वामी के प्रति जो विचार थे वे उन्हीं के शब्दों में दृष्टव्य हैं—

एक बार कुछ व्यक्ति आचार्य श्री के पास जाकर बोले—

'महाराज ! समाज में कानजी स्वामी के आत्म धर्म ने गजहब मचाया है। उनकी समय सार की एकान्तिक प्ररुपणा से बड़ी गड़बड़ी होगी, व्यवहार धर्म का व सच्चे धर्म का लोप होगा...। इसलिए आप आदेश निकालें व उनकी प्ररुपणा धर्म

वात्य है, ऐसा जाहिर करें।" उक्त कथन सुनकर आचार्य श्री ने कहा—"अगर मेरे सामने प्रवचन के लिए समयसार रखा जाएगा तो मैं भी क्या और कोई भी क्या वही तो मुझे कहना पड़ेगा, पुन्य-पाप को हेय ही बताना होगा, यही समय सार की विशेषता है। अब रही बात व्यवहार की, व्यवहार धर्म की जीवन में उपयोगिता कैसी है? यह बात कानजी स्वामी को पटाना होगी। उनका निषेध करने से क्या होगा? कानजी का निषेध करके क्या कुन्द-कुन्द का निषेध करना है?"१

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष के निर्माता प्रशान्त मूर्ति तत्वरसिक श्री १०५ क्षु० जैनेन्द्र वर्णी के श्री कानजी स्वामी के प्रति उद्गार...। "अत्यन्त परोक्ष उस तत्व का परिचय पाने के लिए जिन वाणी की शरण अथवा ज्ञानी जनों की संगति ही मात्र निमित्त कारण है। अत्यन्त दुर्लभ उस सार की प्राप्ति में निमित्त रूप से सहायक होने वाले उस ज्ञानी पुरुष के प्रति क्यों स्वाभाविक बहुमान स्वत: उत्पन्न न हो जायेगा। भले ही वह ज्ञानी पुरुष विशेष साक्षात् वीतरागी भगवान् अरहंत हों या वीतरागी दि० गुरु हों, या कोई श्रावक हों अथवा गृहस्थ हों, तत्व की प्राप्ति में निमित्तपने की अपेक्षा सब समान हैं। यद्यपि वैराग्य व चारित्र की भूमिकाओं की अपेक्षा उनमें आकाश-पाताल का अन्तर है। काठियावाड़ देशस्थ सोनगढ़ ग्राम के सुप्रसिद्ध अध्यात्म योगी कानजी स्वामी भी उन्हीं में से एक हैं। अध्यात्मक जगत के वासी, उनके अर्थात् श्री कानजी स्वामी के उस महत् उपकार को कदापि नहीं भुला सकते, जोकि उन्होंने अपनी अद्वितीय प्रतिभा द्वारा भौतिक युग की अन्धकारमय जगती पर विलुप्त प्राय: हो जाने वाली अध्यात्म धारा को पुन: नवजीवन प्रदान किया है।"२

इसी क्रम में प्रत्यक्षदर्शी, १०५ क्षुल्लक चिदानन्द जी महाराज के अनुभव निम्न प्रकार हैं—

"जब मैं पैदल यात्रा करता हुआ जैन बद्री मूड़बद्री गिरनार की यात्रा के पश्चात् चिर अभिलाषित अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए चातुर्मास के समय सोनगढ़ पहुंचा और चार मास के स्थान पर १४ मास वहां रहा। वहाँ मैंने स्वामी जी की धर्म देशना श्रवण की और वहां का अपूर्व शान्त वातावरण देखा तो जो आनन्द आया उसको मैं प्रगट करने में असमर्थ हूं। यही कारण है कि जो वहाँ का वातावरण एक बार अवलोकन कर लेता है, वह दूसरे वक्त जाये बिना नहीं रह सकता।"

---

१. आचार्य शान्तिसागर अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ १५७

२. सन्मति सन्देश वर्ष ७, अंक ५, पृष्ठ २७

"जब स्वामी जी से निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान, कर्त्ता-कर्म, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध के विषय में सुना व १४ माह की अवधि में जो अनुभव किया तो जीवन की दिशा ही बदल गई। वहां रहने वाले मुमुक्षु निश्चयात्मक धर्म पर तो अटूट श्रद्धा रखते ही हैं क्योंकि वास्तव में धर्म तो वही है परन्तु साथ ही जिनेन्द्र पूजन, भक्ति, दान स्वाध्याय आदि की प्रवृत्ति भी उनमें ही देखी जाती है। और यह सब स्वामी जी के निश्चय-व्यवहार की सन्धिपूर्वक उपदेश करने की शैली का प्रतीक है, क्योंकि निश्चय के साथ व्यवहार होता है उसका निषेध कैसे हो सकता है।१

विद्वत वर्ग में प्रतिष्ठा प्राप्त महान दार्शनिक विद्वान स्व० पं० श्री चैनसुख दास जी न्यायतीर्थ जयपुर ने गुरुदेव के सम्बन्ध में लिखा है कि—

"इसमें कोई शक नहीं कि कानजी स्वामी के उदय से अनेक अंशों में क्रान्ति उत्पन्न हुई है, पुराना पोपडम खत्म हो रहा है और लोगों को नई दिशा मिल रही है। यह मानना गलत है कि वे एकान्त निश्चय के पोषक हैं। हम सोनगढ़ में एवं सर्वत्र फैले हुए उनके अनुयायियों में निश्चय तथा व्यवहार का सन्तुलन देख रहे हैं। सौराष्ट्र में अनेकों नवीन मन्दिरों का निर्माण तथा उनकी प्रतिष्ठायें स्पष्ट बतलाती हैं कि वे व्यवहार का अपलाप नहीं करते। वे भगवान् कुन्द कुन्द के सच्चे अनुयायी हैं। जो उनकी आलोचना करते हैं वे आपे में नहीं हैं व उन्होंने न निश्चय को समझा, न व्यवहार को और सच तो यह है कि उन्होंने जैन शास्त्रों का हार्द ही नहीं समझा।

सोनगढ़ से जो धार्मिक साहित्य निकल रहा है उससे स्वाध्याय का बहुत प्रचार हुआ है।···निमित्त और उपादान तथा क्रम बद्ध पर्याय आदि दार्शनिक चीजें हैं, विद्वानों के समझने की हैं। ऐसी चीजों की आन्दोलन का विषय बनाना समाज की शक्ति को क्षीण करना है। हमें प्रत्येक प्रसंग को निष्पक्ष दृष्टि से देखना चाहिए। उनका प्रयत्न प्रशंसनीय है।२

संहितासूरि पं० नाथूलाल जी शास्त्री इन्दौर द्वारा स्वामी जी के बारे प्रगट किए गये उद्गार निम्न हैं—"इस अशान्ति पूर्ण भौतिक वातावरण में आत्म धर्म एवं सदाचरण का प्रसार कर जिन शासन की प्रभावना करने वाले और अपने पुण्यशाली तेजस्वी व्यक्तित्व से अगणित व्यक्तियों के जीवन को बदल देने वाले

---

१. सन्मति सन्देश, वर्ष ७, अंक ५, पृष्ठ २७

२. सन्मति सन्देश, वर्ष ७, अंक ५, पृष्ठ २

महान् आध्यात्मिक सन्त आत्मार्थी सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस युग की अनुपम विभूति हैं—श्री कान जी स्वामी समस्त उपलब्ध साहित्य (शास्त्रों) का अध्ययन कर चुके हैं। श्री आचार्य समन्तभद्र स्वामी, जिनसेन स्वामी, अमृतचन्द्राचार्य, नेमी चन्द्राचार्य आदि के ग्रन्थों का भली-भाँति स्वध्याय करने से उनका सब विषय स्मृति में है, उनका स्मृतिज्ञान विलक्षण है।

श्री कानजी स्वामी के जितने प्रवचन हुए उनका प्रकाशन हुआ है उन्हें माध्यस्थ भाव से देखने पर अविरोधता ही मिलती हैं। मैं लगभग १५ वर्ष से सोमगढ़ के सम्पर्क में हूं, प्रारम्भ में मुझे भी स्वामी जी के प्रवचनों में विरोध का आभास हुआ......परन्तु धीरे-धीरे जब विचार किया और शास्त्रवलोकन किया तो वास्तविकता का ज्ञान हुआ। वर्तमान में अध्यात्म की ओर जनता का झुकाव और स्वाध्याय के प्रचार का श्रेय स्वामी जी को है।

श्री कानजी स्वामी हमारी अध्यात्म परम्परा को पुर्नजीवित करने वाले इस युग के महान् अध्यात्मिक सन्त हैं। स्वामी जी की शास्त्र अविरूद्ध अनेकान्त वाणी और पवित्र व्यक्तित्व का माध्यस्थ भाव से अधिकाधिक लाभ उठा कर मनुष्य भव को सफल बनावें।

जैन समाज के गौरव, लब्धप्रतिष्ठित व्रती विद्वान पं० जगमोहन लाल जी शास्त्री कटनी ने स्वामी जी से प्रभावित होकर उनके प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए लिखा है कि..." जब से श्री कानजी स्वामी ने भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के समय सार आदि अध्यात्म ग्रन्थों का परिशीलन कर जैन धर्म का यथार्थ मर्म समझा और अपने अनुयायी हजारों भाई-बहिनों को समझाया तब से दि० जैन समाज की प्रगति में एक नया मोड़ आया है।१

स्वर्गीय पं० गोपाल दास जी वरैया के सतप्रयत्न से दि० जैन समाज में धर्म और न्याय के पठन-पाठन का प्रसार हुआ। श्री १०८ मुनि गणेश कीर्ति महाराज के प्रयत्न से संस्कृत व्याकरण, दर्शन, साहित्य के पठन-पाठन की रुचि जागी इसी प्रकार इस युग में श्री कानजी स्वामी के निमित्त से दि० जैन समाज में अध्यात्म शास्त्रों के पठन-पाठन की ओर रुचि हो रही है।

वर्तमान काल में धर्म की बात उसी धर्म के अनुयायियों के गले उतारना भी कठिनतर कार्य है फिर अपनी पुरानी मान्यताओं को छोड़कर पक्षपात रहित हो सत्य

---

१. सन्मति सन्देश, वर्ष ७, अंक ५, पृष्ठ ४९
२. सन्मति सन्देश, वर्ष ७, अंक ५, पृष्ठ २५

को स्वीकार करने की वात तो अत्यन्त कठिन है। श्री कानजी स्वामी ने इस दिशा में जो प्रयत्न किया है उसका वहुत वड़ा मूल्य है।

हमने स्वामी जी को नजदीक से देखा है, परखा है और उनके प्रवचनों को तथा अनुभवों को सुना है हमें विश्वास है कि वे दिगम्वर जिनागम के कटर श्रद्धानी हैं।......स्वामी जी सरल परिश्रमी हैं। उन्हें वचन पक्ष या अभिमान नहीं है वल्कि आगमानुकुल वात को वे तत्काल स्वीकार कर लेते हैं।......स्वामी जी प्रतिज्ञा रूप प्रतिमा आदि नहीं पालते तथापि उनके आचरण खान-पान आदि किसी प्रतिमाधारी से कम नहीं हैं। उत्तम आचरण, मर्यादित खान-पान आजीवन ब्रह्मचर्य, मन्द कषाय आदि उनके गुण उनमें और उनके अनेक शिष्यों में पाये जाते हैं।

समाज के विवेकशील वर्ग से हमारा निवेदन है कि आगम के प्रकाश में उनके प्रवचनों को देखें। मिथ्याधारणा वना कर न चलें।......वे एक महापुरुष हैं, अपना सर्वस्व पूर्व रूप त्यागकर धर्म रत्न की खोज में चले हैं। उनके साथ धर्म वात्सलयता का वर्ताव करना आवश्यक है, तभी दि० जैन धर्म का प्रभावन होगी।१

सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाश चन्द्र जी शास्त्री वनारस—गुरुदेव के सम्वन्ध में अपने हार्दिक उद्‌गार इस प्रकार प्रगट किए हैं—

"इसमें सन्देह नहीं कि श्री कानजी स्वामी का व्यक्तित्व वड़ा प्रभावक है और वक्तत्व शैली अनुपम है, उनके प्रभाव से सोनगढ़ के जैनेतर अधिवासी भी अध्यात्म चर्चा के प्रेमी वन गये हैं। उक्त कथन के अतिरिक्त मण्डन मिश्र को निम्न किवदन्तियां प्रस्तुत करते हुए सोनगढ़ व स्वामी जी के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है—
"मण्डन मिश्र एक वहुत वड़े विद्वान थे, जव शंकराचार्य शास्त्रार्थ के लिए उनके ग्राम में पहुंचे तो उन्होंने ग्राम के वाहर कुंआ पर पानी भरने वाली स्त्री से मण्डन मिश्र का घर पूछा, उस स्त्री ने उत्तर दिया—

स्वतः प्रमाणम् परतः प्रमाणं, कीरांगना पत्र गिरी गिरन्ति।
द्वारेपि नीडान्तः सन्निरूद्धा, आवेहि तन्मंडन मिश्र धामः॥

अर्थात् जिसके द्वार पर पिंजरों में वन्द मैंनायें प्रमाण स्वतः होता है या परतः होता है।" इस प्रकार की चर्चा करती हों उसे ही मण्डल मिश्र का घर समझना। सोनगढ़ के विषय में भी यही समझना चाहिए कि जहां के वायु मण्डल में अध्यात्म प्रवाहित हो, वही कानजी का स्थान सोनगढ़ है।२

ब्र० राजाराम जी जैन गुरुदेव की ७५वीं जन्म जयन्ती के अवसर पर लिखते हैं कि—

---

१. कानजी स्वामी अभि० ग्रन्थ (हि० वि०) पृष्ठ ८
२. जैन जागरण के अग्रदूत (भा० ज्ञान पीठ काशी) पृष्ठ ९१

"मैं १००८ श्री बाहुबली जी की दक्षिण यात्रा को महा मस्तकाभिषेक के समय जा रहा था, भोपाल में श्री बाबा छोटे लाल जी वर्णी का साथ हो गया। उनके साथ स्वर्णपुरी पहुंचा। वहां आध्यात्मिक सन्त श्रद्धेय स्वामी जी के प्रवचन सुन कर मन्त्र मुग्ध जैसा हो गया, यात्रा का विकल्प टूट गया, करीब ४ माह लगातार वचनामृत का पान किया, जीवन में अनुपम रहस्य समझा।

भले ही लोग कहें कि व्यवहार उड़ा दिया, मुनि निन्दक हैं, परन्तु भाई। पक्षपात छोड़कर निर्णय करो व्यवहार कुशलता, सद् प्रवृत्ति जो सोनगढ़ में है, शायद ही अन्यत्र हो। इतना अवश्य है कि व्यवहार धर्म नहीं, क्योंकि धर्म तो आत्मा की परिजाति है इसलिए बाह्य क्रियाकाण्ड धर्म नहीं हो सकता, ऐसा वे उपदेश करते हैं और अनादि, विपरीत मान्यता को छुड़ाते हैं······इत्यादि।१

भारत वर्षीय विद्वत् परिषद के मन्त्री श्री पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने लिखा है—"श्री कानजी स्वामी युग पुरुष हैं, उन्होंने दि० जैन धर्म के प्रभाव का महान् कार्य किया है। उनके इस जीवन निर्माण में समय सार का अद्भुत प्रभाव है। इसमें निबद्ध कुन्दकुन्द स्वामी की विशुल अध्यात्म देशना ने अगणित प्राणियों का उपकार किया है। उसने पहले महाकवि श्री बनारसीदास जी को दिगम्बर धर्म में दीक्षित किया फिर शतावधानी राज चन्द्र को दि० जैन धर्म का श्रद्धालु बनाया। और अब श्री कानजी स्वामी को दिगम्बर धर्म का दृढ़ श्रद्धानी बनाया है। न केवल कानजी स्वामी को, किन्तु उनके साथ २० हजार व्यक्तियों को भी इस धर्म में दीक्षित कराया है। समयसार से प्रभावित होकर श्री कानजी स्वामी ने शुद्ध वस्तु स्वरूप को समझा, वर्षो इसका एकान्त में मनन किया और अन्तरंग की प्रबल प्रेरणा पाकर अपने जन्म जात धर्म का परिधान छोड़ दिया। अब वे बड़े गौरव के साथ कहते हैं कि—

"संसार सागर से पार करने वाला यदि कोई धर्म है तो दिगम्बर जैन धर्म ही हैं। उनके इस कार्य से सौराष्ट्र से सौराष्ट्र प्रान्त की जागृत हुआ हो सो बात नहीं, भारतवर्ष के समस्त प्रदेश जागृत हुए हैं और स्वाध्याय के प्रति निष्ठा का भाव उत्पन्न कर आत्म कल्याण की ओर लग रहे हैं।२

श्री पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री वाराणसी के शब्दों में—

"कोई कुछ भी क्यों न कहे, मैं तो कहता हूं कि वर्तमान में श्री कानजी

---

१. सन्तति सन्देश अंक ५, वर्ष ७

२. सन्मति सन्देश अंक ५, वर्ष ७।

स्वामी का उदय दिगम्बर परम्परा के लिए अभ्युदय रूप है। जिसके जीवन में दिगम्बर परम्परा का माहात्मय समाया हुआ है वह श्री कानजी स्वामी और समग्र सौराष्ट्र को आदर की दृष्टि से देखे विना नहीं रह सकता।२

उनके अनन्त उपकार स्वीकृत करते हुए श्री कान्तीलाल शाह वम्बई ने स्वामी जी के प्रति जो श्रद्धा एवं कृतज्ञताज्ञापन की वह उन्हीं के शब्दों में निम्न है—

"आपने समाज का वड़ा उपकार किया है, वस्तु तत्व का विवेचन यथार्थ रूप में विवेन आप से ही मिलता है आप स्वयं भी भेद विज्ञान के साक्षात् अवतार हैं। एक वार जो आपका प्रवचन सुन लेता है वह उनका ही हो जाता है। हमारे तो वे धर्म पिता हैं। उनके अनन्त उपकार का समाज व मैं अत्यन्त ऋणी हूं। उनकी अमृत वाणी सुनकर एवं परोक्ष में उनके प्रवचन पढ़कर अगणित जीवों ने अपना आत्मकल्याण किया है। आपने ही जैन तत्व को समझने की सच्ची दृष्टि दी है। जैन धर्म की आत्मा वस्तु की स्वतन्त्रता, व्यवहार, निश्चय, निमित्त, उपादान और क्रम नियत आदि का आपने समाज के सामने इतना सुन्दर निष्कर्ष निकाल कर रखा है कि जनसाधारण दृष्टि भी वदल गई। उनके उपकार का वदला दे सकना असम्भव है मेरी मंगल कामना है कि पूज्य श्री के वताये हुए जैन शासन की विश्व भर में जय-जयकार हो और गुरुदेव दीर्घ काल तक हमारा मार्ग प्रदर्शित करते रहें।२

अन्त में उपसंहार के रूप में दि० जैन विद्वानों की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था श्री भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद के अभिप्राय को रखना चाहूंगा उस का तृतीय अधिवेशन सं० २००३ में सोनगढ़ में हुआ जिसमें ३२ विद्वान वन्धुओं ने और दूसरे हजारों लोगों ने भाग लिया। पूज्य गुरुदेव का परिचय करने का मुख्य उद्देश्य से ही परिषद के अधिवेशन के लिए सोनगढ़ की पसन्दगी की गई थी। इस वारे में विद्वत्परीषद के अध्यक्ष श्री पं० कैलाशचन्द्र जी सिद्धान्ताचार्य ने अपने प्रवचनों में कहा था कि—"यहाँ पर परिषद का अधिवेशन करने से हम सवको महाराज श्री के पास से अध्यात्म का वहुत लाभ मिला है। परिषद अपना अधिवेशन का कार्य तो किसी भी स्थान पर कर सकती थी किन्तु महाराज जी के आध्यात्मिक उपदेश का लाभ लेने के मुख्य हेतु से इस स्थान को प्रमुखता दी गई है।......... महाराज के पास में हम सव को नई दृष्टि मिली है। हम भगवान से प्रार्थना करते हैं कि हम फिर इधर आवें और महाराज श्री जी का उपदेश सुनकर अपना आत्म कल्याण करें।

---

१. खानियातत्व चर्चा पृष्ठ १६

२. सन्मति सन्देश, अंक ५, वर्ष ७, पृष्ठ ५२

विद्वत्परिपद के सभी बन्धु पू० स्वामी जी के साक्षात परिचय से प्रसन्न हुए थे और पूज्य गुरुदेव को अभिनन्दन देते हुए परिपद ने एक प्रस्ताव भी पास किया था, जो निम्न प्रकार है—

"आत्मार्थी श्री कानजी महाराज द्वारा जो दि० जैन धर्म का संरक्षण और सम्वर्द्धन हो रहा है, विद्वत परिपद उसका श्रद्धापूर्वक अभिनन्दन करती है तथा अपने स्वराष्ट्री साधर्मी वहिनों-भाईयों के सद्धर्म प्रेम से प्रमुदित होती हुई उनका हृदय से स्वागत करती है। वह इसे परम सौभाग्य और गौरव का विपय मानती है कि आज दो हजार वर्प वाद भी महाराज ने श्री १००८ वीर प्रभु के शासन के मूर्तिमान प्रतिनिधि भगवान कुन्द कुन्द की वाणी को समझ कर अपने को ही नहीं पहिचाना है, अपितु हजारों और लाखों मनुष्यों को जीव उद्धार के सत्य मार्ग पर चलने की सुविधाएं जुटा दी हैं। परिपद का दृढ़ विश्वास है कि महाराज के प्रवचन-चिन्तन तथा मनन द्वारा होने वाला दिगम्वर जैन धर्म की मान्यताओं का विश्लेपण तथा विवेचन न केवल सार्धमियों की दृष्टि को अन्तमुर्ख करेगा अथवा सतत् ज्ञानाराधकों को अप्रत्तता के साक्षात् परिणाम आचरण के प्रति तथैव प्रयत्न-वनायेगा अपितु मनुष्य मात्र को अन्तर तथा वाह्य पराधीनता से छुड़ाने वाले रत्त्रमय की प्राप्ति कराने वाले वातावरण को सहज ही उत्पन्न कर देगा। अतएव इस अवसर पर अभिनन्दन और स्वागत के साथ साथ परिपद यह भी घोपित करती हैं कि चूंकि आपका कर्त्तव्य हमारा है, इस प्रवृत्ति में हम आपके साथ हैं। (प्रस्तावक—प्रो० खुशाल चन्द्र जैन, एम. ए. और पं महेन्द्र कुमार जी, समर्थक—पं० परमेष्ठी दास जी, पं० राजेन्द्र कुमार जी।)

इनके अतिरिक्त श्री कानजी स्वामी ने दक्षिण और उत्तर भारत की तीर्थ यात्रा करते हुए जिस नगर में भी पदार्पण किया, कहाँ की धर्म प्राण समाज ने गुरुदेव का भावभीना स्वागत श्रद्धा-भक्ति व प्रेम वश अपूर्व सम्मान किया था। सैकड़ों स्थानों से आपको कई सौ अभिनन्दन पत्र भी समर्पित किए गए थे जिनमें स्वामी जी के गुणों एवं सम्यज्ञान प्रचार की महत्ता प्रदर्शित की गई है। उनमें से कुछ प्रमुख नाम निम्न हैं—

१. दि० जैन परिपद, दिल्ली
२. वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली
३. जैन समाज, कलकत्ता
४. दि० जैन समाज, मद्रास
५. दि० जैन समाज, जयपुर

६. दि० जैन पंचायत, सहारनपुर
७. दि० जैन समाज, कोटा
८. दि० जैन समाज, जबलपुर
९. दि० जैन समाज, ग्वालियर
१०. दि० जैन समाज, वम्वई
११. सकल दि० जैन समाज, आगरा
१२. दि० जैन समाज, सागर
१३. गणेश दि० जैन संस्कृत विद्यालय, सागर
१४. दि० जैन समाज, दमोह आदि।

ऐसे पूज्य श्री स्वामी जी ने क्रमवद्ध पर्याय की झंकार कर हम जैसे अनादि काल से सुसुप्त अनेक प्राणियों को जागृत किया है अतः हमारे ऊपर उनके अनन्त-अनन्त उपकार हैं, जिन्हें जीवन में भुलाया नहीं जा सकता। अन्त में पूज्य गुरुदेव के प्रति मेरी विनम्र श्रद्धा समर्पित है।

एक क्षण भी जी, मगर स्वभाव सन्मुख जी।
तू स्वयं भगवान है, भगवान बनकर जी॥

कुन्द कुन्द आचार्यनु,
गुरुवर भाखे ज्ञान।
सीमंधर प्रभुये कह्यु,
धरे गुरुवर ध्यान॥

सर्व सृष्टि ने तारवा,
सीमंधर अवतार।
कुन्द कुन्द आचार्यपण,
करुणाकरी अपार॥

गोहेल वाड़नी धन्य धर, धन्य उमराला गांव।
वैश्य कुलने धन्य छे, ज्यां जन्म्या गुरु कहान॥
धन्य-धन्य आ धरती ने, धन्य सोनगढ़ ग्राम।
ज्यां गुरु सदा विराजिता, नहिं कोऊ तेहि समान॥

—सौभाग्यमल जैन, भोपाल
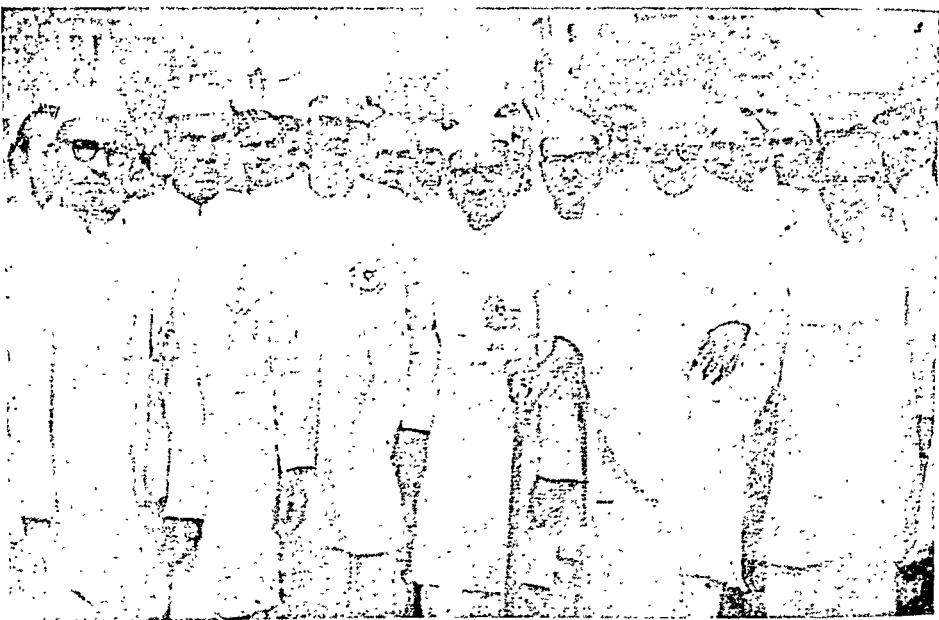
स्वामी जी सन् १९७३ में तीसरी बार दिल्ली पधारे, यह चित्र उसी अवसर का है। चित्र में दृष्टिगोचर हैं—साहू शान्ति प्रसाद जैन जी, लाला प्रेमचन्द जी, लाला भगत राम जी जैन आदि।

जयपुर के सुप्रसिद्ध श्रीमन्त सेठ आध्यात्मिक-रसिक श्री पूरण चन्द जी गोदिका के परिवार के साथ गुरुदेव।

स्वामी जी से आध्यात्मिक तत्व चर्चा करते हुये सिद्धान्ताचार्य पण्डित कैलाश चन्द्र जी शास्त्री, श्री प्रेम चन्द जी, श्री नेम चन्द जी हैट वाले, अध्यक्ष दिल्ली दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल एवं साहू शान्ती प्रसाद जी जैन।

सन् १९५७ में कानजी स्वामी के दिल्ली आगमन का दृश्य। दृश्यवय हैं—स्व० श्री तनसुखराय जी, श्री नेमीचन्द पाटनी आगरा, लाला भगतराम जी आदि।

श्री कानजी स्वामी एक अद्भुत व्यक्तित्व

—विमल भाई

कानजी स्वामी, एक जीती जागती जीवन जोत, आत्म अभ्युदय की साकार मूर्ति। सारे सौराष्ट्र में जिनकी आत्मक्रान्ति की धूम है, पर शेष भारत जिनके प्रकाश से वंचित नहीं।

सुन्दर सलौना शरीर, दैदीप्यमान आभा, सुखद भाव मण्डल, वाणी में ओज जो भी सरल हृदय से सन्मुख हुआ, उस ही की ग्रंथि खुली, ऐसा शायद ही कोई हो कि जिसने सरलता से सुना तो हो पर उसे शान्ति न मिली हो।

ऐसा भी आज तक नहीं हुआ, कि किसी की बातों को सभी ने सरलता से मान लिया हो, कुछ विरोधी भी सभी के होते ही है, इनके भी है। पर उनके लिए स्वामी जी के हृदय में बड़े सुन्दर विचार है। ये श्रद्धालू श्रावकों से कहा करते हैं। "तुम्हें विरोधियों से घृणा या क्रोध न करना चाहिये, इनमें भी तुम्हारी ही तरह भगवान बसते है। इनमें थोड़ी न समझी है, जब समझ जायेंगे तो स्वयं ही सही रास्ते पर आ जायेंगे। साथ ही तुम्हें भी अपनी समझ के लिए अहंकार न करना चाहिये, बस सहज रूप में अपनी दृष्टि अप्राप्त की ओर रख, आगे बढ़ते जाना चाहिये।"

एक बार एक त्यागी ब्रह्मचारी इनका पक्ष लेकर किसी विरोधी भाई से सवाल जवाब और मुकदमे बाजी की ऊहापोह में पड़ गये, इनके सामने बात आई तो ये बोले—भाई समय का समागम तो बहुत थोड़ा है, न जाने कब आयु समाप्त हो जाए, इस मूल्यवान समय को यूं हल्की बातों में उलझ कर नष्ट न करो, बन सके तो प्राप्त समय को अपने आत्म कल्याण में प्रयोजित कर लो।

ये सर्व साधारण को बहुत ही सरल भाषा में समझाया करते है इनका कहना है सबसे पहले तुम यह मानो, कि 'तुम हो' तुम्हारा स्वतन्त्र अस्तित्व है, ये कैसे हो सकता है, कि जो वस्तुयें दिखती है, वो तो है और जो उन्हें देखने वाला है वो नहीं, इसलिए आकाश, समय, और पुदगल (दिखने वाली जड़ वस्तुयें) की तरह ही तुम्हारी भी स्वतन्त्र सत्ता है।

अब जिन्होंने अपनी सत्ता स्वीकार कर ली, उनसे यह कहते है, तुम्हारे में जो विकार चलते दिखते हैं, उसके दोषी तुम स्वयं ही हो, क्योंकि अगर तुम दोष का कारण औरों को मानोगे तो तुम उन्हीं में फेर फार करने का प्रयत्न करते रहोगे, और जब सब दोषों के जिम्मेदार अपने को ही मान लोगे, तो अपने को ही ठीक करने के प्रयत्न में लग जाओगे।

इसलिए दोष दूसरे निमित्तों को न हो दोष तुम्हारा और केवल तुम्हारा ही है। इसके माने विना आगे गति नहीं।

अव ये जिन्होंने माना दोष हमारे ही है, शत प्रतिशत हम ही उनके जिम्मेदार है। उनसे यह कहते है देखो तुम्हारे वास्तविक स्वभाव में दोष नहीं, यदि दोष स्वभाव का हिस्सा होते तो उसमें से वो निकल नहीं सकते थे यदि तुम अपने निज के वास्तविक स्वभाव की ओर दृष्टि दोगे तो यह शनै शनै स्वत: निकलते जायेंगे। और तब शुद्ध सोने के समान निखर आयेगी तुम्हारी निर्मल आत्मा।

जिस तरह सोने को तपाने से उसका मैल निकल जाता है, उस ही तरह दर्शन, ज्ञान और चरित्र रूप धर्म अंगीकार करने से आत्मा निखरती है।

इन महापुरुप जन्म दिन सम्वत १९४६ में वैसाख सुदी दूज के दिन सौराष्ट्र के उमराला गांव में, शाह मोती चन्द के घर माता ऊजमदे की कूख से हुआ था।

इनके उपदेश सभी जातियों और प्रदेशों के लोगों के लिए समान है, यही कारण है, इनके आश्रय में आये लोगों में सभी जातियों और प्रदेशों के लौग सम्मिलित हैं, उनमें भाषा भेद का कोई झगड़ा नहीं, सभी प्रेम की डोर में वन्धे समानता से धर्म साधन करते है।

वर्तमान युग के महान सन्त

श्री कानजी स्वामी

—श्रीराम जैन, दिल्ली

... मुझे याद है अपने जीवन का वह सुनहरी सुखद दिन जबकि मुझे एक मुमुक्षु भाई द्वारा गुजरात के महान आध्यात्मिक सन्त पूज्य श्री कानजी स्वामी जी के सम्बन्ध में उनकी कही हुई वाणी का सार सुनने को मिला और पुण्ययोग से कुछ ही दिन पश्चात् उनके दर्शन तथा सत्यकथित मर्मस्पर्शी, भेदज्ञानमयी सर्वज्ञ की वाणी सुनने और समझने का अवसर मिला गया।

आत्मा समझ स्वरूप है, आत्मा स्वयं सिद्ध प्रत्यक्ष अनुभव गोचर है, स्वभाव से परिपूर्ण है तथा ज्ञाता द्रव्य में कुछ करने की तो बात दूर रही, यह तो अपनी पर्याय में भी कोई फेरफार नहीं कर सकती। ऐसी दृष्टि पाकर कौन निहाल नहीं हो जावेगा? समझकर तो निहाल होगा ही होगा। पूज्य स्वामी जी ने अनेक भव्य जीवों को ऐसी दृष्टि दी और आज भारत में अनेक जीव आपके द्वारा निरुपित मोक्षमार्ग को समझकर अपने कल्याण में लगे हुए हैं। यह बात अब विद्वानों तथा जैन समाज के हृदय में अंकित हो चुकी है और जैन समाज चिरकाल तक उनके इस उपकार को भुला नहीं सकेगा। मैं पूज्य गुरुदेव के चरणों में हार्दिक अभिनन्दन अर्पित करता हूं।

हे ! स्वर्णपुरी के सरल सन्त

—मांगीलाल अग्रवाल 'अगर', एम. ए., बी. एड.

सोनगढ़ के सरल सन्त ने,
आगम मर्म बतात दिया ॥
हिमालय सा प्रवल अडिग ये,
सौराष्ट्र सन्त यूं धवल खड़ा,
ज्ञान गंग प्रवाही समय भक्त ने
सम्यक मार्ग जतलाय दिया ॥ १ ॥
ये आतम बात बड़ी आमलोक,
ये सम्यक सार्थक दर्शन है,
ये अनादि अविरोधागम है,
भव्यों को भव बता दिया ॥ २ ॥
पंथवाद और क्रिया काण्ड का,
भंडाफोड़ करवाय दिया.
व्यवहार धर्म उपचार बता,
धर्म स्वरूप समझाय दिया ॥ ३ ॥
पर लक्ष्मी मिथ्या श्रावक को,
निज वैभव गुण प्रकटाने को,
अणुव्रत, महाव्रतधारी को,
अनुभव पाठ पढ़ाय दिया ॥ ४ ॥
तेजमयी स्वप्रकाश ज्योति से,
ये भारत क्षेत्र चमकाय दिया,
सोनगढ़ की स्वर्णपुरी को,
प्रसिद्ध तीर्थ बनवाय दिया ॥ ५ ॥
जन-जन को शिक्षित करने का,
शिविरों का साज सजाय दिया,
काम छोड़ विरागी बनकर,
वीतराग विज्ञान सिखाय दिया ॥ ६ ॥
शत-शत वन्दन स्वामी जी को,
आत्मज्ञ, मर्मज्ञ, विरागी जी को
धवल धाम सन्मार्गी जी को,
'अगर' मम स्वरूप लखाय दिया ॥ ७ ॥

शान्त मूर्ति

★ नन्दलाल सरावगी, कलकत्ता
अध्यक्ष, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ

पूज्य आध्यात्मिक सन्त श्री कानजी स्वामी को मैं २५ वर्षों से जानता हूं। इनके विषय में पहले मैं अपने कतिपय पंडितों तथा त्यागियों से इनके विषय में अनर्गल सुना करता था, कितने तरह की मिथ्या बातों का प्रचार इनके विषय में किया जाता था। एक बार मैं सोनगढ़ गया। वहां पर मैंने आपके प्रति लोगों में अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्ति देखी। आपके प्रवचनों में नित्य ही हजारों की संख्या में लोग धर्म श्रवण करते थे। मुझे यह एक सबसे बड़ी विशेषता लगी कि जब आपका प्रवचन प्रारम्भ होता था तब १ घन्टे तक सभी लोग अत्यन्त शान्त व गम्भीर रूप से बैठते थे कोई भी व्यक्ति फुसफुसाहट भी नहीं करता था।

द्वितीय बार जब आप ससंघ तीर्थ यात्रा को निकले थे तब मुझे आपके दर्शनों का लाभ प्राप्त हुआ। मैं राजगृही से कलकत्ता तक लगभग १ माह तक साथ रहा। और आपके आहार-विहार, धर्म साधन के बारे में जो हमारे पंडित तथा त्यागी कहा करते थे, को सावधानीपूर्वक देखा। मुझे लगा कि हमारे पंडित व त्यागी वर्ग ने जो कहा वह मिथ्या था! आपके खान-पान के विषय में जो भ्रान्ति समाज में फ़ैली हुई है, क्रिया उससे बिल्कुल विपरीत थी। मैंने आपका आहार अत्यन्त अल्प एवं शुद्ध पाया।

उसी समय आपका विहार राजगृही से गया की ओर वहां की समाज के विशेष निमन्त्रण पर हुआ। आपका वहां पर हार्दिक स्वागत किया गया।

आप जब राजगृही में थे, तब एक गुजराती वृद्ध भाई ने आकर प्रणाम कर कहा—'तीर्थंकर महाराज की जय।' तब स्वामी जी ने कहा—'नहीं रे भाई, अब आँख खुल गई है, हम तो अव्रती ब्रह्मचारी हैं। आपके विषय में पूज्य स्व० पंडित वन्शीधर जी इन्दौर वालों से अक्सर पूछा करता था तब उन्होंने मुझे कहा कि पूर्व जन्म के संस्कार हैं, इसलिए इनके प्रवचन तथा अर्थ निदोष होते हैं। पूज्यवर्णी जी का भी आपसे बहुत स्नेह था, वे आपसे प्रभावित भी थे।

मुझे एक बात इनकी बहुत ही प्रभावित करती है वह यह कि जो गुण एक जैन सन्त में होने चाहिए वे सब आप में पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। दो-तीन जैन पत्रों में आपके प्रति अनर्गल मिथ्या प्रचार हो रहा है लेकिन आपने न तो किसी का प्रत्युत्तर ही दिया और न विरोध ही किया। पहले जब आप एक बार कलकत्ता आए

तो प्रवचन के समय कुछ भाईयों ने आपसे उल्टे प्रश्न करने शुरू कर दिए। जब उनके उत्तर ठीक मिल गए तो वे असभ्य व्यवहार करने लगे। तब आपके कुछ समर्थक खड़े हो गये और वे विरोधी भाईयों को दण्ड देना चाहते थे तब स्वामी जी ने कहा कि इन भले लोगों से झगड़ा मत करो। जो कुछ कहा है, मुझे कहा है। मैंने इनके शब्दों को ग्रहण नहीं किया है। आप लोग शान्त रहें। यह एक सच्चे सन्त का उदाहरण है।

मैं तो गुणों से सदैव ही प्रभावित था तथा जब कभी भी आपके दर्शनार्थ सोनगढ़ जाता हूं, बहुत सन्तोष होता है। आपके चेहरे पर असली ब्रह्मचर्य का तेज विद्यमान है, जो कि जैन त्यागी होना ही चाहिए। आपकी वाणी बहुत ही ओजस्वी है।

मैं भगवान जिनेन्द्र देव से आपके दीर्घ मंगलमय जीवन की कामना करता हूं।

जैन धर्म का केन्द्र आत्मा है। इस लिए यह धर्म अध्यात्म प्रधान है। विचार के लिए निश्चय नय है और कार्य के लिए व्यवहार नय है। विचार ठीक होने पर व्यवहार भी ठीक होगा। दोनों का होना जरूरी है, पर विचार व्यवहार को दिशा देता है।

कुछ काल के प्रभाव से, कुछ परिस्थितियों के कारण, कुछ सांसारिक उपलब्धियों के लालचवश ऐसा होता है कि व्यवहारिक पक्ष निश्चय से दूर हो जाता है और व्यवहार ऐसा होने लगता है कि उसमें कमजोरियाँ ही झलकती हैं और उसकी दृढ़ता दिखाई नहीं देती। ऐसे समय में अनिवार्य हो जाता है कि कोई क्रान्ति आए और व्यवहार पक्ष निश्चय से दूर न होकर उसके अनुसार साथ-साथ चले। यह तभी मुमकिन है जब भूला हुआ या आंखों से ओझल किया हुआ निश्चय पक्ष अपने आसन पर फिर जमे।

जैन धर्म के इतिहास में समय-समय पर ऐसा होता रहा है। बहुत दिनों से कानजी महाराज का नाम सुना था। पर उनका, साहित्य देखने का और उनके व्याख्यान सुनने का मौका कुछ समय से ही मिला। ऐसा लगा कि जैन धर्म का निश्चय पक्ष जो शायद कुछ पीछे हट गया था और व्यवहार की बागडोर नहीं पकड़ रहा था, जाग्रत हो रहा है। इससे यह विश्वास पैदा होता है कि शुद्ध जैन धर्म फिर से मार्ग दिखाएगा और व्यवहार को रास्ता दिखाकर आलोक पैदा कर सकेगा। कानजी महाराज की इस ओर साधना सफल हो रही है और जैन धर्म के शुद्ध रूप का ज्ञान बढ़ता जा रहा है।

कानजी महाराज के चरणों में शत-शत वन्दन!

—शिवनाथ मित्तल, नई दिल्ली

आत्म धर्म मर्मज्ञ

पद्म चन्द जैन सर्राफ
अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश दिगम्बर जैन
मुमुक्षु मण्डल

भव के अभाव का सिंहनाद करने वाले सन्त इस समय दिखने वाले विश्व में एकमात्र पूज्य श्री गुरुदेव कानजी स्वामी ही हैं। हम जैसे पामर प्राणियों पर उनका महान्-महान् उपकार है कि दिगम्बर सम्प्रदाय में जन्म लेकर भी भाव दिगम्बर की बात न समझ सके। पूज्य श्री के उपदेश से ही सच्चा स्वाधीन मार्ग समझ में आया।

जीवन के प्रारम्भ से ही पूज्य श्री स्वामी जी सत्य की खोज में थे। मुझे अपने आत्म स्वरूप की प्राप्ति कैसे हो, इसके लिए उन्होंने स्थानक वासी सम्प्रदाय में साधु पद स्वीकार किया। स्थानकवासी सम्प्रदाय के सब शास्त्रों का अध्ययन किया परन्तु स्वामी जी जो चाहते थे उसकी प्राप्ति वहां न हुई। स्वभाव से उनकी कोरे क्रियाकाण्ड में रुचि नहीं थी। वे बराबर अनुभव करते थे कि बिना अध्यात्म को समझे आत्मा का उद्धार नहीं, उन्होंने ज्ञान यज्ञ का प्रारम्भ तो किया पर उसमें तृप्ति न मिली स्वाध्याय के साथ भूख बढ़ने लगी। जो मैं चाहता हूं वह कहां मिले, यही प्रश्न उन्हें बराबर होने लगा।

प्रकृति का नियम है कि यदि किसी गुरुतर कार्य के लिए दृढ़ प्रयत्न किया जाय तो उसकी अवश्य प्राप्ति होती है। हुआ भी ऐसा ही। पूर्व भव का संस्कार ही समझिये लम्बी प्रतीक्षा के बाद भगवान् श्री कुन्द कुन्द प्रणीत श्री समयसार श्रुत उनके हाथ लगा और उसका स्वाध्याय प्रारम्भ किया। उन्होंने पढ़ा—हे आत्मन् अनादि से तूने संसार सम्बन्धी काम, भोग सामग्री प्राप्त की एक बार नहीं, अनन्त-अनन्त बार प्राप्त की। यदि प्राप्त नहीं किया तो एकमात्र पर से भिन्न अपने आत्म स्वरूप को प्राप्त नहीं किया। उन्होंने भीतर से अनुभव किया कि यह कोई अलभ्य वस्तु है। यदि मेरा कल्याण होगा भव बन्धन का अन्त होगा तो इसी से होगा। इतने समझते ही उनके आनन्द का पारावार न रहा। वे सब भूल गये, खाना भूले, पीना भूले, सम्प्रदाय का नशा उतरने लगा।

अन्य सबको भूल कर वे इस महान श्रुत के अभ्यास में एकचित्त होकर लग गये। भक्त आकर कहते स्वामिन्! जनता चातक के समान आपश्री के उपदेशामृतपान करने के लिए लालयित हो रही है। विशेष आग्रह होने पर कहते—'भाई मेरा चित्त स्वाध्याय में है, उन्होंने श्री समयसार परमागम के मिलने पर उसका स्वाध्याय ही अपना परम प्रधान कर्त्तव्य बनाया और उसके तल स्पर्शी अनुभव मनन द्वारा बन

सका। उतना रसपान किया और भक्तजनों का उसका रसपान कराया। आज भी पूज्य गुरुदेव की यही स्थिति है, ज्यों ही वे एकान्त पाते है श्री समयसार परमागम के रसामृतपान द्वारा साक्षात् समयसार वन जाते हैं।' यह है उनकी अन्तर आत्म परिणति का सच्चा जीवन परिचय वे दिगम्बर परम्परा के सच्चे अनुयायी हो गये और उनकी वाणी भी उनके अनुरूप निकलने लगी। अध्यात्म, अध्यात्म, अध्यात्म एक मात्र यही उनके प्रवचनों का विषय वन गया। उनके जीवन में जो उथल-पुथल हुई, उनकी वाणी को सुनकर वह उथल-पुथल वाहर भी होने लगी। परन्तु वे घवराये ही कहीं परिणाम यह हुआ कि अन्त में उनकी अध्यात्म वाणी का सब ने लोहा मान लिया उसके फलस्वरूप यह दिखाई दिया कि हजारों-लाखों व्यक्ति सम्प्रदाय के मोह से मुक्त होकर आत्म पन्थी (दिगम्बर) वन गये। यह हैं पूज्य गुरुदेव कानजी स्वामी का और उनकी वाणी का चमत्कार। एक वार भी जिसे उस वाणी का लाभ मिलता है उसके हृदय कपाट खुल जाते हैं।

धन्य हैं वे महात्मन्, धन्य है उनकी वाणी और धन्य है उनका आत्म धर्म स्वीकार। मेरी यही अन्तर अभिलाषा है कि आप श्री का अपूर्व प्रभावना योग चिर काल तक समस्त विश्व को उपलब्ध होता रहे। हे युग निर्माता महात्मन् आप श्री के चरणों में मेरा शत-शत वन्दन है।

★

परम आदरणीय कानजी स्वामी का परिचय सन् १९५० में जव मैं सोनगढ़ गया, तव से है। इसके पश्चात् भी स्वामी जी का ५०० यात्री भाईयों का संघ लश्कर नगर में आया। यहां वे तीन दिवस ठहरे। उनका हर प्रकार का प्रवन्ध लश्कर नगर की कार्यकारिणी ने किया, जिसका मैं मन्त्री था। इस कारण उनकी सेवा तथा प्रवचन श्रवण का अवसर प्राप्त हुआ। उसके पश्चात् भी फतेपुर पंच कल्याणक, वम्वई पंच कल्याणक, सोनगढ़ पंच कल्याणक में उपस्थित होकर प्रवचन श्रवण कर धर्म लाभ लिया। आपके प्रवचन आध्यात्मिक विषय पर होते हैं। आपका प्रवचन निर्भीक, निःस्पृही मधुर भाषा में होता है। आपके प्रवचनों को श्रवण कर लाखों महानुभाव दिगम्बर जैन धर्म में दीक्षित होकर धर्म साधना कर रहे हैं। मैं शुभ कामना भेज रहा हूं कि वे दीर्घायु हों और आपका धर्मध्ययन व्रत में निरन्तर वृद्धि होकर मोक्ष मार्ग की ओर गमन करने में लय रहे।

—मिश्री लाल पाटनी, ग्वालियर

ग्रंथराज समयसार और श्री कानजी स्वामी

ब्र० हेम चन्द्र जैन 'हेम'

नमः समयसाराय, स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय, सर्वभावान्तरच्छिदे॥

द्वितीय श्रुतस्कन्ध परम्परा में कुन्दकुन्द भारती का सर्वोत्कृष्ट परमागम 'समयसार' है। 'पर' से एवं 'पर्याय' से भी भिन्न, स्वसहाय, निर्विकल्प स्वरूप निज-शुद्धात्मतत्व को दर्शाने वाला तथा व्यवहार से विमूढ़ जगज्जनों को भेद विज्ञान एवं वीतराग दशा होने में कारणभूत एकमात्र यह परमाध्यात्म शास्त्र 'समयसार' है। इसलिए 'मंगल भगवान वीरो...' इस श्लोक में वीर प्रभु एवं गौतम स्वामी के तत्काल बाद इस परमाध्यात्म शास्त्र के रचयिता कलिकालसर्वज्ञोपमा प्राप्त आचार्य कुन्दकुन्द देव का नाम स्मरण किया गया है। अस्तु कालदोष से जीवों की बुद्धि मन्द होती देख एवं निज उपयोग की शुद्धता के वर्धनार्थ क्रमशः आचार्य अमृतचन्द्रसूरि और आचार्य जयसेन स्वामी द्वारा संस्कृत में 'आत्मख्याति' एवं 'तात्पर्यवृत्ति' टीका में लिखी जाने के बाद आज से करीब ५०० वर्ष पूर्व पाण्डे राजमल जिनधर्मी सद्गृहस्थ महाकवि ने सं० टीका में उद्धृत श्लोकों के ऊपर 'खण्डान्वय टीका' गद्य भाषा में लिखी जिसका आधार लेकर महाकवि सद्ग्रहस्थ पं० बनारसी दास जी ने 'नाटक समयसार' नामक पद्यानुवाद प्रस्तुत कर समयसार के सार को जीवित रखा। पं बनारसीदास जी के करीब ३०० वर्ष बाद अर्थात् आज से २०० वर्ष पूर्व जयपुर में आगम एवं अध्यात्म के ज्ञाता एवं अधिवक्ता दो महासमर्थ विद्वान एक ही काल में हुए। प्रथम का नाम आ० क० पंडित प्रवर श्री टोडरमल जी हैं और द्वितीय का नाम पं० श्री जयचन्द्र जी छावड़ा हैं। इनमें से प्रथम विद्वान श्री टोडरमल जी ने ब्र० रायमल जी की प्रेरणा एवं सहयोग से गोमट्टसारादि अनेक आगम ग्रन्थों की भाषा टीकायें रचीं और आगम-अध्यात्म के पठनोपरान्त भी रह जाने वाली शंकाओं के समाधानार्थ एक मौलिक चिन्तन से युक्त सुबोध भाषा ग्रन्थराज 'श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक, लिखा जो कि सामाजिक विद्वेषों का शिकार बन जाने से एवं पंडित् प्रवर की आयु-क्षीणता के कारण अपूर्ण-अधूरा ही रह गया। तथापि आत्मार्थी जनों को आज भी मोक्षमार्ग प्रकाशित कर रहा है और करता रहेगा। द्वितीय विद्वान् पं० जयचन्द्र जी छावड़ा ने 'समयसार' अष्टपाहुड़ एवं देवागम आदि अनेक आध्यात्म व न्याय शास्त्रों की

भाषा टीकायें रचकर महान् श्रुतसेवा का लाभ उठाया। जिस प्रकार ग्रन्थराज समयसार को प्राप्त कर शतावधानी श्रीमद् राजचन्द्र एवं श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी निर्ग्रन्थ मार्ग के उपासक बने, ठीक उसी तरह आज हमारे बीच ८६ वर्ष की देहावस्था में विराजमान परमकृपालु सत्पुरुष आत्मज्ञ सन्त श्री कानजी स्वामी भी उन्हीं परम दिगम्बर श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव के समयसार को प्राप्त कर स्वय एवं अन्य अनेक भव्य जीवों को सच्चे निर्ग्रन्थ वीतराग धर्म का दृढ़ उपासक बना रहे हैं। सोनगढ़— जहाँ पूज्य स्वामी जी विराजते हैं, आज इस भारत वसुन्धरा पर एक 'लघु सर्वार्थसिद्धि' की उपमा धारण करता हुआ स्वर्णपुरी अथवा मोक्षपुरी अथवा परमागमपुरी बन है कि जहां निरन्तर अध्यात्मरसिक जीवों का तांता लगा रहता है और अपनी-अपनी अध्यात्म पिपासा शान्त कर स्थायी निराकुल सच्चे मोक्ष सुख की प्राप्ति हेतु उद्यम-वन्त हैं। अहो ! परमागम जिनवाणी एवं श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य परम्परानुगत मूल दिगम्बर शुद्धम्नाय के पोषक एवं संरक्षक सोनगढ़ के सन्त तुम्हें बारम्बार प्रणाम।

त्रिलोक चन्द जैन, दिल्ली

मात्र पश्चिम में ही नहीं, अपितु समस्त देश एवं विदेश में भी हजारों जैनों को घोर मिथ्यामार्ग से उबार कर सम्यक् रास्ता दिखाने तथा उस पर अग्रसर कराने का जिन्हें श्रेय है, उन परम श्रद्धेय आत्मज्ञ सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के चरणों में यह मस्तक सहज ही कृतज्ञता से झुक जाता है। पूज्य स्वामी जी की सत्प्रेरणा से ही सौराष्ट्र एवं महाराष्ट्र प्रान्तों में जहां दिगम्बर जैन मन्दिर के दर्शन करना दुर्लभ-सा था, वहां पचास से भी अधिक नयनाभिराम दिगम्बर जैन मन्दिर बनकर तैयार हो गये हैं।

यह श्री स्वामी जी के सरल, सहज एवं शान्तिदायक आध्यात्मिक प्रवचनों का ही प्रभाव है, जिससे हमारे महान आध्यात्मिक शास्त्र, जो तिजोरियों और तहखानों में बन्द थे और जिनका पठन-पाठन निषिद्ध-सा था, बच्चे-बच्चे को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं और यह दुर्लभ ज्ञान भण्डार जन-जन को सुलभ होकर आनन्दित कर रहा है।

मुझ पामर के जीवन में शान्ति एवं सुख के कुछ क्षण भर देने का सारा श्रेय इन्हीं युग पुरुष की अमृतवाणी को प्राप्त है। मैं इस महापुरुष के चरणों में अत्यन्त गद्गद् हृदय से अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूं और श्री जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करता हूं कि भव्य जीवों के सद्भाव से यह सूर्य कालान्तर में भी भारत भूमि को आलोकित करता रहे।

आत्म-विश्वास

—फूलचन्द पुष्पेन्दु, खुरई

मैं डंके की चोट कहूंगा निश्चय पूर्वक
समय सार की दिव्य ध्वनि को—
अगर झेलने वाला कोई
महापुरुष इस भारत में विद्यमान है
तो बस केवल एक व्यक्ति है,
बाकी तो सब तथाकथित है।
महावीर का गौतम गणधर
क्या हर कोई हो सकता है ?
अरे ! विकट पुरुषार्थ चाहिये।

❋

सीमंधर तो विद्यमान है इस दुनिया में
उनके गुण पर्याय द्रव्य को
सम्यक्‌दृष्ट्या देख रहे जो
वे अपने को देख रहे हैं निश्चयपूर्वक;
मोह पलायन हुआ इसी से—
अर्हद्‌भक्त हैं, परम दार्शनिक केवल वे ही
शेष दार्शनिक तथाकथित हैं।
"जो जाणदि अरहंत"...गाथा
है नजीर सुप्रीम कोर्ट की
कुन्द-कुन्द के न्यायालय की।

❋

नग्न दिगम्बर कुन्द-कुन्द—प्रभु-
अमृतचन्द्राचार्य प्रभु
का गुण गायन जब करते हैं झूम-झूम कर
तब तो हमको ऐसा लगता
जैसे सचमुच स्वयं नग्न हों
आतम-मगन हों, इसीलिए तो
मुनियों के हैं भक्त आप ही
केवल सच्चे !
बाकी तो सब तथाकथित है—
हे सम्यक्त्व शिरोमणि ! तुमको
मेरा बारम्बार नमन है !!

गुरुदेव या गुण देव : एक विनम्र आदरांजलि

● सुरेश सरल, जबलपुर

दातौन के वक्त नीम की तनिक-सी लकड़ी घन्टों के लिए मुंह में कड़ुवाहट छोड़ जाती है और यदि कड़ुवाहट सहने का क्रम कुछ दिन तक नियमित रखा जावे तो यह कड़ुवी लकड़ी दांतों पर स्थायी चमक ही नहीं छोड़ती वरन् उन्हें भिन्न-भिन्न गरम, ठण्डे, तीखे, चटपटे, खारे, मीठे, खट्टे पदार्थों से संघर्ष स्वीकारने की शक्ति, क्षमता भी प्रदान करती है। नन्ही-सी दातौन, बत्तीसों दाँतों को स्वस्थ, सुन्दर और साफ-सुथरे बनाये रहती है।

भारतवर्ष का गौरव है यह कि गुरुदेव भी वर्तमान में जैन-मानस के लाखों-लाख प्राणों (आत्मनों) को अपनी गम्भीर गिरा से योग्य श्रावक बना रहे हैं। अब क्षण भर को ऊपर के शब्दों के भावार्थ देखिये :—श्रावक—दाँत, गुरुदेव—दातौन, पदार्थ—कर्म, संघर्ष शक्ति—संयम-साधना। दाँत गन्दे हैं, दातौन कड़ुवी है। समूची समाज की चर्या विवादग्रस्त है, गुरुदेव की चर्या आत्म-ग्रस्त है।

सफाई—ज्ञान—का अमृत घोलने वाले गुरुदेव यदि गन्दे दाँतों से घिरी जीभ द्वारा कड़ुवे माने जायें तो माने जाते रहें, वे कड़ुवाहट, सिद्धान्त-शिक्षा—से जन-जन का जीवन जो उज्जवल कर रहे हैं। इस पर जब जिसने ध्यान दिया, उसकी कड़ुवाहट समाप्त हो गई। गुरुदेव अपनी यात्रा-वीथिका पर अकेले हैं या सहयात्रियों से घिरे हैं, उन्हें इसकी खबर है। खबर भी रहे भी क्यों—"सम्यग्दृष्टि कदाचित् अकेला ही हो तो अकेला भी वह सुशोभित एवं प्रशंसनीय होगा।" गुरुदेव को श्रावक-समाज से विरोध मिले या समर्थन, उन्हें इसकी भी परवाह नहीं है। उनके अन्तर में प्रज्जवलित चैत्यानन्द की अमर ज्योति का प्रभाव ही कुछ ऐसा है। वे स्वयं में रमे हैं। प्रकृति को आत्मसात कर रहे हैं और आत्मा को प्रकृतिसात। शायद तभी, उनकी निष्छल मुस्कान उनकी आत्मा की विमलता की आकृति की स्पष्टि देती है।

वह ऐसा प्राण है जो सुख में स्थापित है, एक ऐसा प्राण जिसमें सुख स्थापित है। गुरुदेव का परिचय भी यही है। वे महान दृष्टा हैं। गुण जो घट-घट में प्रतिष्ठित हैं और जिनके दर्शन भी गुरुदेव कर चुके हैं। अतः वे जीव-जीव के गुण स्पष्ट करते चल रहे हैं।

अग्निदेव, वायुदेव कई-कई श्री देवों के नाम प्रचलित होते रहे हैं सृष्टि से। वर्तमान समाज को एक देव और मिले हैं—गुण देव। यही मेरी ओर से गुरुदेव को एक वैशैपणिक-संज्ञा है, मेरी आदराँजलि है।

आध्यात्मिक गगन के चमकते नक्षत्र

पूज्य कानजी स्वामी

[पं० श्री 'स्वतंत्र जी' जैन]

★

इतिहास की साक्षी है कि आज से दो हजार वर्ष पूर्व अर्थात् भ० महावीर की निर्वाण प्राप्ति के पाँच शताब्दि वर्ष पश्चात् आ० कुन्दकुन्द महाराज हुये। तब आपकी मां शैशवकाल में "शुद्धोऽसिबुद्धोऽसि निरंजनोऽसि, संसार माया परिवर्जितोऽसि" की लौरियां गाते हुये पीठ पर हलकी नन्हीं मृदुल एवं मधुरिम थपकियां देते हुए बालक कुन्द कुन्द को सुलाती थीं। इन लौरियों में संस्कारित बालक कुन्द कुन्द पर यह प्रभाव पड़ा कि वे आगर्भ दिगम्बर रहे।

विदेह क्षेत्रस्थ भ० सीमन्धर जिनेन्द्र की साक्षात् दिव्यध्वनि श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और आगे चलकर भ० महावीर की आध्यात्मिक देशना के प्रतीक बन गये। वे अध्यात्म-गंगा में गंभीर डुबकियां लगाकर जिस शीलता की अनुभूति करते थे वह वचनातीत थी। क्योंकि जड़ शब्दचैतन्य अनुभूति को कहने में सर्वथा असंभव रहे हैं।

विश्व के कल्याणार्थ प्रशस्त अनुराग के कारण ही जब करुणा का भाव आता था तब आपकी लेखनी की पैनी नोंक ताड़ पत्र पर समयसार आदि जैसे परम आध्यात्मिक परमागम ग्रन्थों को लिखती थी। और जब स्वानुभूति का रस अन्दर ही अन्दर झरने लगाता था, तब लेखनी अपने आप रुक जाती जाती थी। कुन्द कुन्द की वाणी बनाम भ० महावीर की वाणी ही मानी गयी है। कलिकाल सर्वज्ञ कुन्द-कुन्दाचार्य के ग्रन्थों में एक शुद्धात्मा की ही कथनी बहुलता के रूप में है।

महर्षि कुन्द कुन्दाचार्य के एक हजार वर्ष बाद आ० अमृतचन्द्र हुये, इन्होंने कुन्द-कुन्द की वाणी का जैसा हार्द समझा वह अपनी जगह महत्वपूर्ण है। यही कारण है कि आपने कुन्द कुन्दाचार्य के परमागम ग्रन्थों की विविवनामों की विस्तृत टीकायें की जो आपकी अगाध विद्वता की परिचायक हैं। साथ में यह भी सिद्ध करती हैं कि आप अपने युग के अद्वितीय अध्यात्म के ज्ञाता थे। आचार्य अमृतचन्द्र की वाणी बनाम आचार्य कुन्द कुन्द की वाणी है।

श्रीमदमृताचार्य के ६००/६५० वर्ष पश्चात् श्री बनारसीदास जी हुये, जो कि गृहस्थ होते हुए भी आध्यात्म के ज्ञाता अध्येता एवं प्रणेता थे। सुप्रसिद्ध रस-कवि होते हुये भी आध्यामिक क्रान्ति के जन्म दाता थे जो तेरा पंथ (जिनेन्द्र का पंथ) के नाम से जानी जाती है। क्रान्तिकारक होने के कारण ही आपने भट्टारकवाद को उखाड़ फेंका था। नाटक समयसार की रचना श्रीमदमृताचार्य की आत्मख्याति टीका का एक प्रकार से हिन्दी पद्यानुवाद प्रतीक स्वरूप माना जाता है। बनारसी दास की वाणी बनाम आ० अमृत चन्द्र की वाणी है।

पंडित प्रवर बनारसी दास जी के लगभग २०० वर्ष बाद पं० टोडर मल जी हुये। आप आचार्य कल्प की उपाधि से प्रसिद्ध हैं मोक्ष मार्ग प्रकाशक आपके द्वारा रचित एक ऐसा ग्रन्थ है जो आपके प्रकांड पांडित्य का प्रतीक है। अपने समय के विशिष्ट सिद्धान्तज्ञ, अध्यात्मज्ञ, कर्मवीर एवं धर्मवीर थे आपकी वाणी आ० कुन्द-कुन्द, आ० अमृतचन्द्र, कविवर बनारसीदास जी की प्रतीक है।

इस प्रकार हम देखते हैं आचार्य कुन्द कुन्द से लगा कर आज तक अध्यात्म रूपी गंगा की निर्मल पवित्र धारा बहाने में समय-२ पर हुये अनेक ऋषि महर्षियों ने मानव समाज को प्राण, त्राण दोनों ही प्रदान किये हैं। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि उमास्वामी समन्त भद्र, पूज्यपाद, अकलंक, विद्यानंदि, आदि मुनिवर अध्यात्म के ज्ञाता या उपदेष्टा नहीं थे। इन मुनिवरों द्वारा रचित अनेक महान् ग्रन्थ मानव समाज के लिए कल्याणप्रद एवं मार्ग दर्शक रहे हैं।

आज इस २० वी शती में पूज्य कानजी स्वामी आध्यात्मिक क्रांति के प्रवल समर्थ प्रचारक, प्रखर उपदेष्टा एवं सुवक्ता है। आप इस युग के युग पुरुष माने जाते हैं। आने वाला कल आप का इतिहास बनकर मानव समाज को आत्म कल्याण के लिये प्रेरणास्पद बना रहेगा। वर्तमान में आप आध्यात्मिक गगन में चमकते हुये देदीप्यमान सितारे (नक्षत्र) हैं।

कान जी स्वामी की रचनात्मक कार्यप्रणाली एवं आध्यतिमक क्रांति से भारत

एवं भारतेतर अनेक देश भी परिचित है। आध्यात्मिक विषय से संबंधित जो कार्य किया वैसा कार्य आज के वर्तमान साधुसमाज एवं पंडित वर्ग (विद्वत्समाज) से न हो सका। यह कटु स्पष्ट सत्य है। कोई अन्यथा भाव न लायेगा ऐसा मेरा निवेदन है।

श्री कान जी स्वामी के संबंध में विस्तृत विवेचन पूर्वक लिखना समयाभाव एवं स्थानाभाव दोनों ही मुझे मजबूर करते हैं। पहिले हम देखते थे कि आज से ४०/४५ वर्ष पूर्व समय सार जैसे ग्रन्थ केवल अलमारी की शोभा बढ़ाते थे। समय सार के ज्ञाता और उपदेष्टा उगुलियों पर गिनने लायक विरल ही व्यक्ति थे। पर आज मंदिरों में समय सार का प्रवचन होता है।

अनेक नवयुवक और नवयुवतियाँ, वेटी, वहिन मंदिरों में समय सार पर प्रवचन करते हुये देखे जाते हैं। इस के मूल में पूज्य कानजी स्वामी का आध्यात्मिक प्रचार ही कर रहा है। कान जी स्वामी जन जागरण के प्रतीक है। उन्होंने सोते हुए मानवों को जगाया और उन्हें एक नवीन प्रेरणा, नवीन दिशा प्रदान की।

मानव ने अंगड़ाई लेकर करवट वदलना छोड़ दिया क्योंकि सोता हुआ मानव ही करवट वदलता है। जो अंगड़ाई लेकर जागता है वह फिर सोता नहीं। अगर जागने के वाद तत्काल ही सो जाये तो ऐसा व्यक्ति आलसी या प्रमादी माना जाता है। प्रमादी व्यक्ति अपने जीवन में कोई भी अच्छा कार्य नहीं कर सकता। कानजी स्वामी पहिले स्वयं जगे तव वाद में दूसरों को जगाया।

व्यक्तित्व के धनी कानजी स्वामी का अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व है जो जनता पर अपना प्रभाव छोड़ जाता है। वे जो कुछ कहते हैं वह उनके अन्तरंग की आवाज होती है और कहते समय इतने तन्मय, तल्लीन एवं आत्म विभोर हो जाते हैं। जिसे सुनकर जनता गदगद हो जाती है।

२५/३० हजार जनता के वीच आपके प्रवचन में अपूर्व शांति वनी रहती है। क्या मजाल कि कोई चूं चपाट भी कर सके। स्वामी जी का प्रवचन श्रोताओं के अन्तरंग को छूता है। एक सही दृष्टि प्रदान करता है। अध्यात्म की इतनी भीड़ अन्यत्र देखने में नहीं आयी। आपके प्रवचन के समय कई दशक टेपरिकाडिंग यंत्र रख दिये जाते हैं। और अध्यात्म प्रेमी सज्जन चाहे जव टेपरिकाडिंग के माध्यम से स्वामी जी के प्रवचन का लाभ लेते हैं।

सुगठित देहयष्टि, गौर वर्ण, उन्नत ललाट, देदीप्यमान् काँतिमान्, मुग्ध, आजानु लटकती भुजायें, मृदुमुस्कान वखेरती हुयी मुखाकृति, वार्वक्य के भार से थका शरीर, "समझन पड़े छै के नहि" शब्दों द्वारा आत्मीयता वखेरते हुये श्री कानजी

स्वामी का अद्‌भुत व्यक्तित्व है। जिसने आज तक कानजी स्वामी को न देखा हो वह आपके टेप किये हुये प्रवचन को सुनकर आपके व्यक्तित्व का पता अच्छी तरह लगा सकता है।

युगनेता युग पुरुष :—जो युग (समय) के साथ चलते है या युग में ढल जाते हैं वे सामान्य मानव हैं। और जो नवीन दिशा बतलाकर मानव समाज को लेकर नेता साथ चलते है वे युग-नेता हैं, और ऐसे पुरुष उस युग के युग पुरुष माने जाते हैं।

अध्यात्मके विषय में कानजी स्वामी की सेवायें अभूतपूर्व एवं असाधारण (२० शती में) मानी गयी हैं। अतएव वे इस युग के युग पुरुष और युगनेता हैं।

तीर्थधाम सोनगड़ :—प्राचीन युग में इसे सोनगढ़ कहते थे, सोनगढ़ का अपभ्रंश सोनगड़ हो गया है। सोनगढ़ का अर्थ होता है स्वर्ण के अलंकार आभूषण वनाने वाला कुशल शिल्पी स्वर्णकार। जबसे स्वामी जी के सोनगढ़ में चरण पड़ें, या अपना निवास स्थान वनाया तव से सोनगढ़ स्वर्णपुरी हो गया। कानजी स्वामी भी एक कुशल शिल्पी स्वर्णकार की तरह हैं जिन्होंने अध्यात्म विद्या के अनेक अलंकार गढ़े हैं (श्री रामजी भाई, श्री खीम जी भाई, श्री वावू भाई आदि)।

और आज सोनगढ़ एक तीर्थ धाम के रूप में हैं। गिरनार पालीताणा की, यात्रा करने लक्षाधिक यात्री सोनगढ़ अनिवार्य रूप से आते ही हैं। तीर्थ क्षेत्रों की यात्रायें तो ठण्ड के दिनों में की जाती हैं। पर सोनगढ़ तो प्रतिदिन शताधिक यात्री आते ही रहते हैं। इस दृष्टि से सोनगढ़ का महत्व एक तीर्थधाम से कम नहीं हैं।

दूसरी वात यह है कि यहाँ शताधिक परिवार अपने-२ वंगले वनाकर स्थायी रूप से रहते हैं और धर्म साधन करते हुए स्वामी जी के प्रवचनों का लाभ लेते हुए सुख शान्ति पूर्वक जीवन यापन कर रहे हैं। यहां प्रतिदिन मेला सा रहता है।

सोनगढ़ के सन्त कानजी स्वामी सोनगढ़ के ही सन्त नहीं, अपितु भारत देश के आध्यात्मिक सन्त हैं। यहां तो केवल एक ही चर्चा है वह है "शुद्धात्मा" की। "शुद्धोऽसिवुद्धोऽसि" की अलख जगाने में स्वामी जी का जवरदस्त हाथ है सोनगढ़ की धरा के अणु-२ में यही अलख गूँज रही है।

सन्त वह है जो अधिक से अधिक समाज को देता है और कम से कम समाज से लेता है। सन्त का स्वभाव सूर्य की तरह होता है जो सार पदार्थ को ग्रहण कर असार को छोड़ देता है। सन्त पुरुष निन्दा और प्रशंसा से वहुत ऊँचे उठा होता

है। कान जी स्वामी का विरोध कम नहीं हुआ और वह आज भी हो रहा है। पर स्वामी जी की इस ओर अणुमात्र भी दृष्टि नहीं गयी। वे अपनी धुन के पक्के हैं, उन्होंने जो अनुष्ठान प्रारम्भ किया है उसकी पूर्णाहुति की प्रतीक्षा में रहते हैं। समय की पावन्दी यहां की प्रमुख विशेपता है।

सोनगढ़ में क्या नहीं हैं? सभी कुछ हैं सभी प्रकार की सुविधा सम्पन्न एक सुन्दर कस्वा है। रेलवे स्टेशन, वसों की सुविधायें, पोस्ट तार फोन ऑफिस, वैंक, हाई स्कूल चिकित्शाला, धर्मशाला, विजली, नल, जैन विद्यार्थी गृह, महिलाश्रम, पत्र, प्रेस, प्रकाशन, मानस्तंभ सीमंधर जिनालय, महावीर परमागम मन्दिर, स्वाध्याय मंदिर, वाजार, शुद्ध जलवायु, शांत वातावरण आदि सभी कुछ तो है।

रेलवे स्टेशन के सिवाय ये सारी व्यवस्थायें एवं नवीन निर्माण कार्य कानजी स्वामी के आगमन के कारण ही क्रमशः होते रहे हैं। भगवान महावीर की रजतशती निर्वाणोत्सव के उपलक्ष्य में आगम पथ मासिक पत्रिका दिल्ली की ओर से परम आध्यात्मिक सन्त कान जी स्वामी के लिए "पत्रं पुष्पं फलं तोयं" के रूप में अभिनन्दनार्जलि समर्पित करने का जो प्रयास किया गया है वह सुन्दर है। संतों का सम्मान करना भी आवश्यक है। □

कौन जानता था कि उमरालानगर में श्री मोती चंद भाई की धर्मपत्नि श्री उजम वाई की कोख से सं० १९४६ वैसाख सुदी २ रविवार को ऐसा महान होनहार वालक का जन्म होगा? तत् समय एक ज्योतिपी ने कहा कि यह वालक महापुरुप होगा। जिस प्रकार सूर्य प्रभात में खिल कर सारे विश्व में अपनी जगमगाहट द्वारा प्रकाशमान होता है। उसी प्रकार पूज्य कानजी स्वामी वाल अवस्था से सूर्य की किरणों की भांति दिन दूनी रात चोगुनी के अनुसार सारे देश में अध्यात्म ख्याति फैला रही है।

सम्यक्दर्शन के विना जीवन व धर्म नहीं है ऐसा अकाट्य सिद्धांत जो लोग भूल रहे थे उन्हें शास्वत किया।

आप इतने शांत हैं कि जिसका वर्णन करना असम्भव है। प्रथम वार इन्दौर सर सेठ हुकम चन्द जी सा० के समय जव पूज्य स्वामी जी इन्दौर पधारे तव महू, उसके वाद सोनगढ़, इन्दौर नक्सी, भोपाल, प्रतापगढ़, रतलाम में दो वार साक्षातकार हुआ, परन्तु ऐसा अध्यात्मवेत्ता, महान् शांतमूर्ति कि जिनके मुखमंडल पर परम शांति देखी जो कि किसी पर देखने में नहीं आई।

अंत में पूज्य श्री कानजी स्वामी को अत्यंत विनम्र भाव से हृदयांजलि अर्पण करते हुए भावना करता हूं कि ऐसा महान पुरुप चिरायु हों।

मोहन लाल छावड़ा, रतलाम

एक दृढ़ व्यक्तित्वः श्री कानजी स्वामी

हेमचन्द जैन 'चेतन' जयपुर

□

'हम जैन कुल में पैदा हुए हैं इसलिए हम जैन हैं' ऐसा मानने वाले को तथा 'यह शास्त्र में लिखा है और शास्त्र जिनदेव की वाणी है, यदि हम इसमें शंका करेंगे तो हमारे निःशंकित अंग नहीं पलेगा' इस भय से प्रयोजनभूततत्वों में हेय उपादेय की और हिताहित की परीक्षा किये विना ही जिनवाणी की आज्ञा मानते हैं उन्हें महापंडित टोडरमलजी ने मिथ्यादृष्टि कहा है। वह जैन कहलाने का पात्र नहीं है।

पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी श्वेताम्बर कुल मे जन्मे, पले-पुसे और उसी संप्रदाय में दीक्षित होकर वड़े आचार्य पदपर भी आसीन हुए। पुण्य तो जोरदार था ही साथ में ज्ञान का क्षयोपशमभी अतः वहुत शीघ्र ही विद्वान आचार्य के रूप में ख्याति अर्जित कर ली। इतना सब होते हुए भी उनका मन इस ओर रमा नहीं, जमा नही। वे जिस सत्य को पाना चाहते थे वह सत्य वहाँ मिल नहीं।

वे सत्य की खोज में थे ही कि इसी बीच सौभाग्य से उन्हें 'समयसार' परमागम पढ़ने को मिला, उसे पाकर वह इतने प्रसन्न हुए कि मानो कोई वड़ी भारी निधि मिल गई हो। इसके कुछ दिनों वाद 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' ग्रन्थ पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह ग्रन्थ तो उन्हें इतना प्रिय लगा कि उसका सातवां अध्याय उन्होंने अपने हाथ से लिख लिया जिसे सदा अपने पास रखते थे। वस, क्या था, ये दोनों ग्रन्थ अन्धे को दो आंखों जैसा काम कर गये। अव वे उन्हीं के अध्ययन-मनन में डूबने लगे। एकान्त में आकर समयसार का अध्ययन करते।

धीरे-धीरे उन्हें उस सत्य की प्राप्ति होने लगी जिसे वे चाहते थे। और इसी

के साथ जिस असत्य का चोला धारण कर रखा था प्रति उसके विद्रोह जाग्रत होने लगा और वह दिन भी शीघ्र आ पहुंचा जबकि उन्होंने अपने आपको दिगम्बर जैन घोषित कर दिया। यह तो अनुमान सहज किया जा सकता है कि इस परिवर्तन में उन्हें कितने प्रलोभनों का और कितनी धमकियों का सामना करना पड़ा होगा, परन्तु सत्य के अन्वेषी उस महापुरुष के चरणों में वे सब प्रलोभनों और धमकियों भरे तोप के गोले ठण्डे पड़-पड़ गये। उन पर कोई असर न कर सका, असर करता भी कैसे उन्होंने यह निर्णय किसी के दबाव में आकर या बहकावें में थोड़ी ही लिया था यह निर्णय तो उनकी अन्तरात्मा का दृढ़ निश्चय था। इस प्रकार हम देखते है कि सच्चे अर्थो में स्वामी जी ही जैन हैं।

हर्ष की बात तो यह है कि मात्र वे ही जैन नहीं बने, उनके उपदेश से, उनकी प्रेरणा से हजारों लोगों को नई दृष्टि मिली और वे दिगम्बर जैन बने। स्वामीजी ने दिगम्बर साहित्य का गहन अध्ययन किया। उनकी बुद्धि कुशाग्र, दृष्टि पैनी और अन्वेषणी तो थी ही फलतः जिस ग्रन्थ को पढ़ा उसका मर्म भी शीघ्र समझ में आ गया। उन्होंने जो पाया; उसे बांटा भी दिल खोलकर। आज उन्ही की प्रेरणा के फलस्वरूप घर-घर में आर्ष प्रणीत ग्रन्थों का पठन-पाठन होता है। सौराष्ट्र व गुजरात में ही नहीं बल्कि बम्बई, राजस्थान, मध्यप्रदेश, बंगलोर आदि में तथा माइरोबी (दक्षिण अफ्रीका) और अमेरिका में भी जिन जिन स्थानों पर जिन मन्दिर नही थे, परन्तु आवश्यकता थी; वहां पर मन्दिर बनवाये, जिनबिम्बों की स्थापना कराई, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई, मुमुक्ष मण्डलों व पाठशालाओं की स्थापना हुई, सामूहिक नियमित स्वाध्याय की प्रवृत्ति जाग्रत हुई, यात्रासंघ निकाले, पूजा-पाठ-भक्ति आदि में स्वयं सम्मिलित होकर उत्साहित किया।

स्वामीजी के ऊपर अक्सर यह आक्षेप किया जाता है कि स्वामीजी व्यवहार का लोप करते हैं और निश्चय पर विशेष जोर देते हैं परन्तु आक्षेपक यह भूल जाते हैं कि उन्होंने निश्चय व्यवहारनय को यथावत् समझा है तदनुसार वे विवेचना भी करते हैं, फिर भी जिस पूजा-पाठ-भक्ति, व्रत-उपवास आदि को वे व्यवहार कहते हैं उस व्यवहार का पालन स्वामीजी और उनमें श्रद्धा रखने वालों में पाया जाता हैं उतना सम्भवतः उन आक्षेपकों में भी नहीं पाया जाता हो। इसका परिचय स्वयं सोनगढ़ जाकर पाया जा सकता है तथा उसका प्रारूप यत्र-तत्र मुमुक्षु बन्धुओं में दिखा जा सकता है।

'भगवान आत्मा .....।" गुरुदेव के मुंह से प्रवचन में बार-बार यह शब्द

दुहराया जाता है, इसे सुनकर भी कुछ लोगों को इसमें दिखावटी या बनावटीपन की गन्ध आती है : वे किसी पंथ व्यामोह के वश यह भूल जाते हैं कि यह बनावटी ढंग नहीं यह तो अन्तरात्मा की आवाज है। उन्होंने स्वभाव से सभी आत्माओं को भगवानवत् देखा हैं और अनुभव किया है। अतः उनके मुंह से आत्मा के प्रभावोत्पादक शब्द निकलते हैं तो क्या आश्चर्य।

वर्तमान में भगवान आत्मा की प्रभावना का पूर्णतयाः श्रेय पूज्य गुरूदेव को ही है, नहीं तो इस भौतिक और कर्तावाद के युग में आत्मा लुप्त प्रायः हो गया था जिसका उद्घाटन कर पूज्य गुरूदेव ने हमारे ऊपर महान-महान उपकार किये हैं। वास्तव में हमने आत्मा के यथार्थ स्वरूप को समझा ही नहीं है, यदि समझा होता तो हम इस तथ्य से अपरिचित नहीं रहते कि जिस आत्मा की बात गुरुदेव कहते हैं तथा शास्त्रों में जिस आत्मा का उल्लेख है वह चेतन तत्व मैं ही हूं, वह ज्ञानानन्द स्वभावी, अजर-अमर अविनाशी, उत्पाद व्यय रहित ध्रुवतत्व, ज्ञाता दृष्टा स्वभावी आत्मा मैं ही हूं।

निश्चय-व्यवहारनय, निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग, निमित्त-उपादान पुण्य-पाप की एकता, क्रमवद्ध पर्याय, समस्त द्रव्यों की स्वतन्त्रता की उद्घोषणा गुरूदेव की वाणी में निरन्तर हुआ करती है।

इन्हीं बातों को लेकर कुछ लोग अज्ञान से भ्रम उत्पन्न करते हैं। वे कथन का अभिप्राय तो समझते नहीं अथवा समझते भी हैं तो अपनी रूढ़ मान्यताओं को चोट लगती जानकर भ्रमित हो जाते हैं और पंथ व्यामोह में पड़कर अन्य अल्पज्ञों को नय कहते हैं। वाणी इतनी समर्थ नहीं है कि वह एक साथ ही वस्तु के अनेकान्त स्वरूप का कथन कर लें एक बार में वस्तु के एक अंग या गुण का ही कथन हो सकता है। वक्ता जब एक पक्ष को मुख्य करता है तब दूसरा पक्ष गौण होता है; अभाव नहीं। उदाहरणार्थ-मोक्षमार्ग के प्रकरण में पुण्य पाप को संसार का कारण होने से समान है, ऐसा कहने में सांसारिक अवस्था में पुण्य की अपेक्षा पाप हेय हैं, पुण्य उपादेय; यह स्वतः गौण हो जाता है। परन्तु लोग कुतर्क दे-देकर स्वयं पथभ्रष्ट होते हैं और दूसरों को करते हैं। कुछ लोगों को तो कानजी स्वामी, सोनगढ़, सोनगढ़ के विद्वान (जिसे वे सोनगढ़ी कहते हैं) सोनगढ़ द्वारा प्रकाशित और प्रचारित साहित्य से इतनी चिढ़ होती है कि वे उस नाम का स्वयं प्रयोग तो दूर रहा, दूसरों के द्वारा सुनने पर भी मुंह फेर लेते हैं उनके अपने प्रवचनों, भाषणों में, प्रचार का मात्र एक ही विषय है और वह है सोनगढ़ का विरोध। वे ना समझ जनता को इस

प्रकार भ्रमित कर देते हैं कि उन्हें हेय-उपादेय का, हिताहित का निर्णय करने तक का अवसर नहीं देते हैं। अंध श्रद्धालु जनता नेभी उनके द्वारा दी हुई एकान्त पक्ष की पट्टी को ऐसी दृढ़ता से बाँध रखी है कि आसानी से खुलना संभव नहीं है। उन्हें कोई सदुपयोग देकर वस्तुस्वरूप का यथार्थ विवेचन करके उनकी वह पट्टी खोलना चाहें तो वे तैयार नहीं क्योंकि उन्हें यह भय लगता है कि यदि हमें सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया और समयग्दर्शन अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार हमें जवर्दस्ती मोक्ष ले गया तो इस संसार में वचेगा कौन ?

कुछ ऐसे लोग भी हैं जो तत्वों के व द्रव्यों के नाम तक नहीं जानते हैं और कहते हैं कि तुम सोनगढ़ी हो, यह सोनगढ़ का शास्त्र है, ये सोनगढ़ी विद्वान है— इत्यादि। अब हमारी समझ में यह नहीं आता उन्हें सोनगढ़, सोनगढ़ी विद्वान, और सोनगढ़ी शास्त्रों में ऐसी क्या दुर्गन्ध आती है, जो उन्हें असह्य हो जाती है।

पूज्यवर आचार्यों द्वारा रचित ग्रन्थों का मात्र प्रकाशन, उनपर प्रवचन और उनका प्रचार-प्रसार सोनगढ़ से हो रहा है इसलिए वे सोनगढ़ी शास्त्र कहलाने लगे ? इसीलिए वे वहिष्कार के पात्र हो गये !! उनमें आग लगवाते हैं, मंदिर से वाहर फिकवाते हैं इत्यादि प्रकार से उपद्रव करते हैं। उन उपद्रवियों ने कभी उन शास्त्रों को आचार्य प्रणींत मूलग्रंथों से मिलाने की कोशिश ही नही की। यदि कोशिश की होती तो उनका यह भ्रम कभी का दूर हो जाता और वे सही रास्ते पर आ गये होते, क्योंकि उनमें कहीं एक अक्षर का भी फेर-वदल नहीं हुआ है।

हमें विरोध की जगह इसका श्रेय गुरुदेव को देना चाहिए कि जिनके प्रताप से आज सर्वत्र उन पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों समयसार, नियमसार, गोम्मटसार आदि तथा श्रावकाचारों का पठन-पाठन, मनन-चिन्तन प्रारंभ हुआ है। उन्हें घर-घर में पहुंचाया है, स्वाध्याय की प्रेरणा दी है, पाठशालाओं और स्वाध्याय शालाओं के माध्यम से उन शास्त्रों के मर्म समझने की योग्यता प्रदान की है; ऐसे महान उपकारी गुरुदेव का वहुत-वहुत आभार करना चाहिए, जिनके हम चिर ऋणी रहेंगे।

विरोध करने वालों के पास विरोध करने का कोई ठोस आधार तो है नहीं और न कोई तथ्य या प्रमाण ही है। वे कहते हैं कि इन शास्त्रों को मत पढ़ाना, इन वालबोध पाठमालाओं, वीतराग विज्ञान पाठमालाओं को वच्चों को मत पढ़ना, इनकी पाठशालाओं में वच्चों को पढ़ने मत भेजना क्योंकि इन पुस्तकों में और इन शास्त्रों में विप भरा है; ऐसा सुनते-सुनते अव प्रवुद्ध पाठकों को, वह विप क्या है ? यह जानने की इच्छा होती हो तो उसका उत्तर वे उन भड़काने वालों से नहीं पा-पाते

हैं, तव फिर पाठकों को स्वयं ही वह विप निकालने को मजबूर हो जाना पड़ता है और वे प्रयत्न करके भी उन शास्त्रों को और उन पाठमालाओं (जिनमें विरोधी लोग विप वताते हैं) को पढ़ते है, समझते हैं। तव उनको पता लगता है कि ओहों ! इन शास्त्रों और पाठमालाओं में तो कहीं भी वस्तु स्वरूप के विरुद्ध कोई कथन है हीं नहीं। इनमें तो वह परम औपधि परम अमृत भरा है जिसका एक वार पान कर लेने पर अनन्त भव भ्रमण का अन्त आ जाता है और यह भी समझ में आ जाता है कि उन भड़काने वालों की वाणी में विप अवश्य भरा है जो ऐसे जन्म मरण के नाशक परम अमृत के पान करने से वंचित करा रही है। मैं अव भी दृढ़ता के साथ कहता हूं कि कोई निष्पक्षभाव से उन्हें पढ़ें और निष्पक्षभाव से स्वामीजी के प्रवचन सुनें तथा निष्पक्ष भाव से समझें तो वे कहीं भी कोई वस्तुस्वरूप का विरोध नहीं पायेंगे।

विरोध तो तव हो जव उन्हें किसी का विरोध करने का उद्देश्य हो, परन्तु उन्हें तो किसी का विरोध करना ही नहीं; मात्र अपना अविरोध ही उनकी वाणी में प्रकट होता है।

स्वामीजी के प्रत्यक्ष या परोक्ष में जो भी संपर्क में आया वह प्रभावित हुए विना नहीं रह सका, चाहे वह कितना ही छोटा-वड़ा व्यक्तित्व क्यों न रहा हो। परन्तु स्वामीजी की यह विशेषता रही है कि वे उन सवसे अप्रभावित ही रहे। उनका लोग कितना विरोध करते हैं किन्तु उन्होंने किसी विरोध का प्रतीकार नहीं किया; इसी प्रकार प्रशंसक भी उनके कम नहीं हैं परन्तु अपने प्रशंसकों को उन्होंने कभी प्रोत्साहन नहीं दिया; वल्कि विरोधियों का मुकावला करने वाले प्रशंसक भी उनकी दृष्टि में अच्छे नहीं हैं। ऐसे व्यक्तित्व के धनी पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी शताधिक जीवन की कामना करते हैं।

श्री गुरुदेव पधारे.............

—लाल चन्द्र जैन 'राकेश' रायसेन (म० प्र०)

[राजस्थान के कोटा नगर में दि० २४-५-७५ से ८-६-७५ तक "जैन दर्शन शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर" का आयोजन किया गया था। इस आयोजन के मध्य १-६-७५ को श्री गुरुदेव कानजी स्वामी भी पधारे थे। प्रस्तुत गीत उस अवसर पर स्वागत-गान के रूप में रचा गया था।]

धन्य धरा है, धन्य गगन है, धन्य हैं भाग्य हमारे।
आज श्री गुरुदेव पधारे, कोटा नगर हमारे॥

[१]

"बाहर भोगों के अंगारे, भीतर रागों की ज्वाला।
पीकर मिथ्यात्विक मदिरा, ये सारा जग है मतवाला॥
भूल रहा है निज वैभव को, दर्शन-ज्ञान बिसारे।"
उसे आतम-रस पान कराने, श्री गुरुदेव पधारे॥ धन्य······हमारे॥

[२]

स्वर्णपुरी में बैठ आपने, शिवपुर मार्ग बताया।
पर दुर्भाग्यवशात् सकल जग, लाभ न लेने पाया॥
अतः लिये जिनवाणी गंगा, देने जगत किनारे।
नगर-ग्राम में अलख जगाते, कोटा नगर पधारे॥ धन्य······हमारे॥

[३]

अगम, अपार, गूढ़ अर्थो को, रखती है जिनवाणी।
सही रूप में तुम ही समझे, महावीर की वाणी॥
"यह आतम है शुद्ध सदा ही" जग-हित वचन उचारे।
"कर्त्ता-धर्त्ता स्वयं आपका, किसको कौन उबारे॥ धन्य······हमारे॥

[४]

भटक रहा जग पर परिणति में, निज आतम को भूला।
धन-दौलत को पाकर ऐंठा, फिरता फूला-फूला॥
कहा इसे सत्पथ दर्शाते, "ये कुछ भी नहीं हमारे।"
"करें परम उपकार जगत् का, जब तक रवि-शशि तारे॥ धन्य······हमारे॥

*

जैन जगत के अद्वितीय सूर्य

☐ उग्रसैन बण्डी, उदयपुर

आध्यात्म सन्त, समयसार मर्मज्ञ, परम आदरणीय पूज्य गुरुदेव काठियावाड़ में श्री मोती चन्द भाई की सहधर्मिणी माता उजम बाई के गर्भ से वि० सम्वत् १९४६ को वैशाख शुक्ला २ को अवतरित हुए। आपका कौटुम्बिक धर्म स्थानकवासी श्वेताम्बर सम्प्रदाय था। बाल्यकाल में ही आप विवेकी एवं तीक्ष्ण बुद्धि के थे। व्यवसाय काल में भी वैराग्यमयी साहित्य का अध्ययन करना आपका लक्ष्य था। पिता श्री को आपने स्पष्ट व्यक्त किया था कि यह मनुष्य पर्याय पंच इन्द्रियों का भोग भोगने को नहीं वरन् जन्म मरण का अन्त करने को है। ब्रह्मचर्य को अपना भूषण बना स्वामी जी सदैव विकथाओं से विरक्त एवं सतसंग में अनुरक्त रहे।

वैराग्य रंग लाया और परिणाम स्वरूप आपने स्वेताम्बर स्थानकवासी सम्प्रदाय के साधु पद की दीक्षा ग्रहण की। आपकी पावन, प्रखरबुद्धि एवं अद्वितीय प्रवचन शैली ने हजारों श्रावक-श्राविकाओं को प्रभावित किया। आचारित एवं संयमित जीवन बिताते हुए आपने सम्प्रदाय के साधुओं में गरिमा भरा पद प्राप्त किया। परन्तु वीतरागता, के अनुसन्धान में रत स्वामी जी को सन्तोष नहीं हुआ।

आखिर "जिन जिजा तिन पाइयां" का मुहावरा चरितार्थ हुआ और आपको आचार्य कुंद कुंद द्वारा प्रणीत परमं आध्यात्म ग्रन्थ "समयसार" प्राप्त हुआ। आपने इस ग्रन्थ का अध्ययन वन, गुफाओं में गुप्त रह कृत कृत्य हो किया। समयसार की प्रत्येक पंक्ति को आप हृदयागम करते रहे और इस ग्रन्थ को मनन, चिन्तन एवं आराधना का केन्द्र बना लिया। मनन, साधना में रत स्वामीजी को आचार्य कल्प पंडित टोडर मल जी द्वारा रचित मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रन्थ भी मिला, उसका गंभीरता से अध्ययन करने पर आपका निर्णय रहा वि अब निजात्मा

से धोखा नहीं किया जा सकता। सर्वज्ञ के ज्ञान में झलकते हुए सत्य को ही वे अपना जीवन समर्पण करना चाहते थे। अतः आपने स्वकाल कहें या काललब्धि, भाग्य का उदय कहें या पुरुषार्थ की प्रवलता से सं० १९९१ चैत्र सुदी १३ भगवान महावीर के जयन्ती दिवस पर दृढ़ विश्वास एवं अडिग श्रद्धा पूर्वक जर्जरित चोला छोड़कर अनादि सनातन दिगम्बर जैन धर्म को अन्तरत्तम से स्वीकार किया।

इस अद्वितीय परिवर्तन से समाज भौचक्का हो, वौखला उठा। आपकी दोनों ही पक्षों में निन्दा, स्तुति होने लगी। नाना प्रकार के भय उत्पन्न करने पर भी आप सुमेरू पर्वत की तरह निश्चल, मौन अपने द्वारा प्रणीत विश्वास की साधना में अनुरक्त रहे। दिगम्बर समाज के जन्मजात त्यागी, वृत्ति, पंडित एवं समाज के ठेकेदारों ने भी आपकी भरसक आलोचना की। परन्तु आपने अपने द्वारा गम्य मर्म का ५० वर्षों से धाराप्रवाही चहुमुंखी वाणी से देश के विभिन्न क्षेत्रों में फैले अज्ञान अंधकार को नष्ट किया। आत्म हित की वाणी ज्ञान गंगा की तरह तरंगित हो मुमुक्षुओं के उपकार का कारण वनी। आप स्वतंत्र रूप से आध्यात्मिक ग्रन्थों का मर्म निकाल कर मुमुक्षुओं को परोसने लगे और उसके परिणाम स्वरूप लाखों की तादाद में ग्रन्थ छप कर जिज्ञासुओं को उपलब्ध होने लगे। पंडितों व साधुओं की धरोहर अव श्रावकों की धरोहर वन गई। पठन पाठन प्रारम्भ हुआ और वहती हुई ज्ञान गंगा से जड़ चेतन मन्दिर प्रक्षालित हुवे।

स्याद्वाद अनेकान्त, निमित्त-उपादान, निश्च्य-व्यवहार, ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय, स्वपर, द्रव्य-गुण-पर्याय की स्वतन्त्रता आदि विन्दुओं को आपने युक्ति, प्रमाण एवं अनूठे ढंग से स्पष्ट करते हुए सम्यग्दर्शन की महिमा वतलाई। आपके प्रवचनों के प्रभाव से नगर-नगर में नवीन भव्य जिनालय, स्वाध्याय भवन आदि निर्मित हुए, स्वाध्याय मण्डलों की स्थापना के साथ पंच कल्याणक एवं शिक्षण, प्रशिक्षण, शिविरों की व्यवस्थाएं हुई। जिससे हजारों की संख्या में समाज के वृद्ध, स्त्री, पुरुष एवं वालक-वालिकाओं ने प्राप्त किया। मानो आध्यात्मिक चेतना का घर-घर में जागरण हुआ जिससे क्रिया काण्ड व राग की कर्तृत्व वुद्धि की जड़ें खोखली हुई।

पूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी से पंचम काल भी धर्मकाल सा प्रतीत होने लगा हैं।

आपके सतत् सोनगढ़ विराजने से आप सोनगढ़ के क्रान्तिकारी सन्त के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। आपके सानिध्य से सोनगढ़ का कण-कण पवित्र हो गया है। जिना-

लय, स्वाध्याय भवन, मान स्तम्भ एवं परमागम मन्दिर की रचना ने सोनगढ़ को पावन, प्रसिद्ध तीर्थ वना दिया है। इन भवनों की कला कृतियाँ वहुत अनूठी है। ऐसा लगता है कि यहां साक्षात् समोशरण लगा हो। ज्ञानार्जन की दृष्टि से वर्ष भर में शैक्षणिक कक्षाएं भी आयोजित की जाती है जिसमें सैकड़ों मुमुक्षु भोजन, निवास आदि की सुविधा सहित कुशल शिक्षण, प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं।

गुरुदेव की अंतरंग एवं वाह्य लक्ष्मी का स्पष्ट दिग्दर्शन इन नगरी में दृष्टिगत है। वाह्य लक्ष्मी तो सवको नजर आती है पर अंतरंग लक्ष्मी का सानिध्य भाग्यशाली, वीतराग मार्गी विरले ही भव्य जीवों को प्रतीत होती है।

अलौकिक वात तो यह है कि यहां ९० प्रतिशत सशक्ति गौतम गणधर जैसे जीवों की शंका का समाधान युक्ति, न्याय एवं तर्क द्वारा होता है। जिससे वे विरोधी न रहकर आतम रस के रसिया के ज्योतिर्मयी प्रभावशाली वाणी से लाभान्वित हो अपने आपको कृत कृत्य मानते हैं।

स्वामी जी स्व-पर कल्याणकारी मार्ग पर प्रशस्त हो, दिगम्वर शासन एवं मनुष्य जीवन की सार्थकता में चार चांद लगा रहे हैं।

ऐसे महान सत् पुरुप स्वामी जी के जीवन के सम्वन्ध में मुझ अल्पज्ञ द्वारा जो भक्ति के वशीभूत श्रद्धासुमन समर्पित है, वे पाठकों के हृदय का हार वनें। ★

चारित्रमय मुनिदशा की अचिंत्य महिमा—

गुरुदेव अपने प्रवचन में अनेक वार दिगम्वर सन्त मुनिवरों के प्रति भक्तिपूर्ण उद्गार निकलते हैं। "णमो लोए सव्वसाहूण" पद का जव आप विवेचन करते हैं तव श्रोतागण मुनिवरों की भक्ति से गद्गद् होकर रोमान्चित हो उठते हैं। भगवाद कुन्दकुन्दाचार्य देव, अमृतचन्द्राचार्य देव, धरसेनाचार्य देव, पद्मनन्दी आचार्य देव, वीरसेनाचार्य देव, समन्तभद्राचार्य देव, नेमिचन्द्राचार्य देव इत्यादि दिगम्वर सन्तों का स्मरण करके जव आप भक्ति से कहते हैं कि अहो! छट्ठे सातवें गुणस्थान में आत्मा के आनन्द में झूलने वाले और वन जंगल में वसने वाले उन वीतरागी सन्त मुनिवरो को क्या वात करें!! हम तो उनके दासानुदास हैं। अभी हमारी मुनिदशा नही अभी तो उसकी भावना भाते हैं। उस मुनिदशा की क्या वात!! उनका दर्शन होना भी वड़ा धन्यभाग्य है।

श्री कानजी स्वामी–एक आध्यात्मिक पुण्यशाली व्यक्तित्व के धनी

जिन खोजा तिन पाईयां गहरे पानी पैठ
मैं बोरी ढूंढ़न गई रही किनारे वैठ ॥'

दशरथ लाल जैन रिटा० हे० मा०, सिवनी, म० प्र०

अद्यावधि मेरी धारणा यही वद्ध भूल रही कि रोज सवेरे मंदिर जाना, दर्शन करना, पूजा करना, सूत्र जी भक्ताभर का पाठ करना, व्रत नियम लेना आदि पुण्य कार्य धर्म है और ऐसा करते-करते परम्परा से आत्म कल्याण हो जायेगा। यह रूढ़ी प्रायः आज भी सर्वत्र मान्य चली आ रही है परन्तु वर्णी द्वय और कुछ प्रसिद्ध विद्वानों को छोड़कर हमारे किन्हीं विद्वानों के मुख से आज तक प्रवचन न सुना कि मात्र पुण्य की दृष्टि से किया कार्य संसार भोग कामना की दृष्टि है मोक्ष की नहीं मोक्ष तो आत्म दृष्टि से प्राप्त है छः द्रव्यों का सामान्य और विशेष गुण क्या होते है और उन की क्या उपयोगिता है सात तत्वों में भूल कैसी और किस तरह होती है निश्चय और व्यवहार किसका नाम है और उसको विना जाने धर्म में कैसा अन्ध विश्वास चलता है तथा अगृहीत मिथ्यात्व किस तरह जैनियों में चिपका रहता है कथन शैली को किस तरह समझ कर किसका क्या भाव लेना आज तक समझ नहीं पा रहे थे वाचना-पृच्छना-आगम-आम्नाय-धर्मोपदेश का क्या क्रम है, शव्दार्थ-नयार्थ-मतार्थ-आगमार्थ के वाद भावार्थ कैसे ग्रहण किया जाता है व्यप्य व्यापक भाव निमित नैमित्तिक संबंध द्रव्य गुण पर्याय की स्वतंत्रत सम्यक मिथ्या, अनेकान्त आदि अनेक इस मनुष्य भव दुलर्भ तत्व ज्ञान और उसके निर्णय की आवश्यकता आदि सवका गूढ़तम आगम मंथन जिस सत पुरुष के अलौकिक दिव्य ज्ञान से जन साधारण के लिये सुलभ हुआ वह उनकी अनुपम सूझ की देन है।

हम नास्ति रूप से जो कहते हैं और आचार्य ने भी व्यवहार से उपदेश में कहा है कि क्रोध मान माया लोभ मत करो, राग द्वेष मत करो, पाँचों इन्द्रियों के विषय में रत मत होओ, पर इससे और ऐसे हजारों उपदेशों से कुछ हुआ नहीं और कुछ हो सकता नहीं। कारण ऊपर से नियम लेकर अन्तर में नियत साफ नहीं होने से भाव शून्य क्रिया व्यर्थ ठहरती है क्योंकि जैन धर्म में भावों से पुण्य पाप का बंध माना गया है। स्वामी जी ने सच्चे धार्मिक बनने की युक्ति सुझाई कि भाई अस्ति रूप से अपनी आत्मा की शुद्ध वीतरागी परिणति-अरागी अकषायी स्वभाव की प्रतीति श्रद्धा करो, उसके सन्मुख होओ, उसे पकड़ो तो आत्मा के शुद्ध स्वभाव की प्राप्ति-धर्म में प्रवृत्ति चर्या हो तो विषय कषाय स्वयं छूट जायेंगे। उसे ही व्यवहार में विषय कषाय छोड़ा कहा जावेगा। बलात् छुड़ाना न पड़ेगा और वह कार्यकारी भी नहीं है। जैसे प्रकाश करने से अन्धकार स्वयं भाग जाता हैं अन्यथा अन्धकार के पीछे कितना भी लठ लेकर पीछे पड़ो वह भागेगा नहीं। धर्म के क्षेत्र में हमारी पुरानी रूढ़ीवादी समाज के नगर नगर और जन जन में यह रहस्य कर्णगोचर होते जा रहा है, यह उनके उत्कृष्ट पुण्य का निमित्त ही मानना चाहिये। सूर्य की किरणों को पृथ्वी तक लाने में जिस तरह ईथर (Eather) माध्यम है उसी तरह उस आध्यात्मिक पुण्यशाली पुरुष का आध्यात्मिक कल्याणकारी पुण्य माध्यम (medium) है।

हमारे धर्म के मृत शरीर में आचार्य कुन्द कुन्द के वचनानुसार आत्मा धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझा कर धर्म में स्थितिकरण किया जा रहा है वर्तमान में प्रचलित धर्म क्रिया और रूढ़ी से त्रस्त हो आज का पढ़ा लिखा युवा वर्ग कहने लगा है कि मंदिर जाने में क्या रखा है। इसलिये मंदिर जाना वे लोग बंद करते जाते है क्या यह भयावह (Alarming) स्थिति समाज को सचेत करने के लिये पर्याप्त नहीं है ? क्या किसी कवि के शब्दों में हमारी यह स्थिति नहीं है ?

आत्म की चिन्ता नहीं किसी को,
तन पर चन्दन मला जा रहा।
अर्थ हीन सरगम के बल पर,
भावुकता को छला जा रहा।। इसे क्या कहूं ?
भूखी है भावना भोग,
दुनियां मंदिर को लगा रही है।
टूटे हुए स्वप्न की काया,

पर रेशम जगमगा रहा है ।। इसे क्या कहूं ?
मेरे युग के पहरेदारों,
पूंछ रहा तुम से उत्तर दो ।
लुप्त कर दिया आत्म धर्म को,
और व्यवहार अमर कर दिया ।। इसे क्या कहूं ?
जो उजयाले के विरूद्ध है,
उनसे वात कोई क्या कहे ?
जव वे अंधकार के स्वागत,
में अभिनन्दन पत्र पढ़ रहे ।। इसे क्या कहूं ?

पुरानी परिपाटी के स्थिति पालक लोग उन्हें वदनाम करने को टिके है कि ये व्यवहार धर्म को नहीं मानते । क्या यह गुजरात के सैकड़ों मंदिरों के निर्माण से आज झूठ सिद्ध नहीं हो रहा है ? पर क्या करें फूटी आंख विवेक की कहा करे जगदीश । दूसरे यह कहना कि ये चारित्र पालने का उपदेश नहीं देते तो कोई इनसे पूछे कि ये तुम से चारित्र में कितने भ्रष्ट है और तुम चारित्र की वात करने वाले चारित्र के किस शिखर तक पहुंच गये मंदिर में गा वजा कर पूजा कर लेने मात्र से अपने को श्रेष्ठ मान वैठना तो अपने चांटे गोरे वनने जैसा है मंदिर के वाहर आज भी हम अधर्मी जैसी प्रवृत्ति गें है उनसे किस वात में श्रेष्ठ है कभी अपने आस्तीन में मुंह डालकर देखा ये तो हमारी घोर आत्म वंचना है दूसरों और खुद को वड़ा धोखा है समाज को धोखे में रखकर उसे वैसे ही गुमराह करना है जैसा कि किसी कवि ने कहा है, "कुछ अंध असूझन की आखियांन में झौंकते हैं रज राम दुहाई ।"

धन्य है स्वामी जो को और उनके सहयोगी व्योवृद्ध श्रीराम जी भाई, खेमजी भाई, वावू भाई, नेम चंद भाई, चिमन भाई, जिनके सहयोग से वर्ष में ग्रीष्म, वर्षा और शीत ऋतु में धर्म शिक्षण शिविर का सफल आयोजन होते रहता है । पं० हुकम चन्द जी, पं० नेमी चन्द जी, श्री युगल जी, पं० धन्ना लाल जी आदि जयपुर टोडरमल स्मारक भवन के कर्णधारों के सहयोग से मिशिनरी स्प्रिट से निष्पृह अध्यात्म का अच्छा खासा ठोस प्रचार हो रहा है । हमारे आज के नाटकीय ढंग पर होने वाले गज रथ और पंचकल्याणकों को देखते हुए और सोनगढ़ और जयपुर से आयोजित धर्म-शिक्षण शिविरों में आत्महितकारी तत्वज्ञान का प्रचार और प्रसार देखकर कहना पड़ता है कि हमारे और इनके धार्मिक क्रिया में कितना अन्तर है ; इन शिविरों में जीवित इंसानों में कैसे धर्म की प्राण प्रतिष्ठा की जाती हैं और हमारे यहां हजारों

प्रतिमाओं के रहते निर्जीव प्रतिमाओं में प्राण प्रतिष्ठा कर धर्म की इति श्री मान ली जाती है। हमारे और इनके कार्यों में कितना जमीन आसमान का अन्तर है ? हमें दुख है कि पुरानी परिपाटी के कतिपय विद्वान और समाज के कुछ कर्णधार अध्यात्म की इस श्री वृद्धि को न देख सकने और न समझ पाने के कारण इस प्रवाह को रोकने का असफल और हास्यास्पद प्रयत्न कर रहे है। अनेकान्त दृष्टि और अमितगति आचार्य के "माध्यस्थ भावं विपरीतवृक्षों" को भुला कर यदातदा हिंसक तरीके तक अपनाने से नहीं चूकते स्वयं रूढ़ी को धर्म मानकर एकान्ती व्यवहाराभासी हैं पर दूसरों को निश्चयाभासी एकान्ती कहकर घृणा और कलह के वीज वो रहे है और हर तरह से आध्यात्मिक प्रचार के आड़े आ रहे है यह तो अव ऐसा ही प्रयत्न है जैसे एक बुढ़िया झाडू से समुद्र को पीछे ढकेलने का प्रयत्न करे आध्यात्मका यह प्रवल प्रवाह तो रुकने वाला नहीं है कुछ काल तक ये संघर्ष यत्र तत्र भले ही चलें पर अंत में शान्त होना पड़ेगा दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता से समाज ने इस प्रवाह को आत्मसात करने की क्षमता न दिखाई तो व्यवहाराभासी रूढ़ीवादी स्थितिपालक दल और अध्यात्मवादी दल इन विरोधियों की कृपा से निश्चित वन जावेगे। समाज नीति में और राजनीति में वहुमत का सिद्धान्त भले ही मान्य हो पर धर्म क्षेत्र में यह सिद्धान्त अमान्य ही रहेगा। इसे लोगों को खूव समझ लेना चाहिये। हम तो कहते हैं :—

तुम भी रहो रहेंगे हम भी,
नहीं हमें तुम हटा सकोगे।
तुम आये वनकर तूफान,
यहां विछाने को अवसान।
वैठ गये हम पृथ्वी तल पर,
अचल अटल वनकर चट्टान।
निकल गये तुम कैंचुल अपना छोड़,
अपनी ही कुछ सुन्दर प्रकृति मरोड़।

क्या जीवन आयाम हमारा,
थोड़ा भी नहीं पटा सकोगे।
तुम आये वनकर भूडोल,
हिले हिलाते अखिल खगोल।

लेट गये हम मृतवत् क्षण को,
निकल गये तुम हृदय टटोल।
हिले डुले तुम भय से अपने आप,
चले गये तुम वन अपने अभिशाप।

तोड़ फोड़ अपनी सीमाएँ,
क्या तुम हमसे वढ़ा सकोगे।
हम है चेतन तुम निष्प्राण,
कुन्ठित सभी तुम्हारे वाण।
गये सदा तुम कर कितना उत्पात,
गये हिला तुम अपने ही तरुपात।
रह न सकोगे तुम भी जो तुम,
वात न हमसे पटा सकोगे।

"दिव्य"

कोई माने या न माने स्वामी जी का अखिल जैन-संसार पर आत्म-जाग्रति का अभूतपूर्व उपकार है। उनकी कीर्ति दिग्दिगत व्यप्नी अक्षुण्ण और चिरस्मरणीय है। यह कानजी युग के नाम से इतिहास के पृष्ठों में अमिट छाप वनके रहेगा।

आत्म-दर्शन

दानियों को देखना तो तीर्थों पर जाइये,
संगमर्मर पर खुदे हैं नाम खुद पढ़ आइये,
धर्म और धर्मात्मा ऐसे वहुत मिल जायेंगे,
आत्मा को देखना तो सोनगढ़ में जाइये,

—हजारी लाल 'काका'

संस्मरण

उदासीन ब्रह्मचारी

डॉ० राजेन्द्रकुमार बंसल, शहडोल (म० प्र०)

घटना उस समय की है जब कि मैं सन् 1957 में श्री दिगम्बर जैन छात्रावास जवरीवाग नसिया इन्दौर में रहकर बी० काम० अध्ययन कर रहा था। श्री कानजी स्वामी अपने संघ सहित इन्दौर में एक सप्ताह हेतु आ रहे हैं इस समाचार ने वहाँ के जैन समाज में खलबली मचा दी। कुछ तत्व प्रेमी बन्धु जहाँ उनके निवास, भोजन एवं प्रवचन हेतु पंडाल आदि की व्यवस्था कर रहे थे तो कुछ विरोधी विद्वान उनका संगठित विरोध करने हेतु योजनायें बनाने में तत्पर थे। पक्ष-विपक्ष वालों ने अपने अपने समर्थन में ऐसा धुआँधार प्रचार किया जैसा कि चुनाव के समय भी दृष्टिगोचर नहीं होता। दोनों पक्षों के स्थानीय एवं बाहरी मूर्धन्य विद्वान भी वहाँ यथा समय पहुंच गये। इस वातावरण के बीच में अन्तत: श्री कान जी स्वामी अपने संघ सहित इन्दौर पहुंचे और उन्हें जवरीवाग में ही ठहराया गला।

प्रारम्भ से ही धर्म भीरू होने के कारण मेरी भी रूचि श्री कानजी स्वामी के पक्ष एवं विपक्ष वालों के विचारों को जानने में हुई। विद्वानों से भी सम्पर्क किया। चर्चा के मध्य विरोध के कारणों से अवगत हुआ। वहां पर यह बात फैला दी गयी थी कि श्री कान जी स्वामी किसी से चर्चा नहीं करते, और न किसी की शंका आदि का समाधान ही करते हैं। व्यर्थ के विवाद से अपनी शक्ति को बचाये रखने का यह तरीका भी अपने में अनूठा है। मेरा मन उद्वेलित हो उठा और यह निश्चय किया कि अवश्य ही एक बार स्वामी जी से चर्चा करूँगा। यह विचार आते ही मैंने एक प्रश्न सूची बना डाली। जिसका प्रथम प्रश्न यह था कि साधक की दृष्टि से आपकी भूमिका क्या है? इसी प्रकार से उनके व्यक्तिगत तथ्यों से सम्बन्धित 8-10 प्रश्न और थे। तत्वज्ञान न पहले था और न अब है अत: उस सम्बन्ध में शंका उठने का प्रश्न ही नहीं था।

मैंने स्वामी जी की निजी परिचर्या करने वाले महानुभाव (जिनका नाम स्मरण नहीं है) से सम्पर्क स्थापित किया और प्रश्न सूची दिखाकर उनसे निवेदन किया कि वह 5 मिनट के लिये स्वामी जी से भेंट करवादें। कुछ संयोग की वात थी कि उनके प्रयास से दूसरे दिन प्रात: काल मेरा स्वामी जी से मिलने का समय निश्चित कर दिया गया। छात्रावास में यह वात द्रुतगति से फैल गयी कि मुझे स्वामी जी ने मिलने हेतु समय दिया है। मेरे अनुमान से वहाँ मैं ऐसा प्रथम व्यक्ति था जिसे अवसर मिला। मैं इसमें वड़प्पन महसूस कर रहा था। रात्रि का समय काटना मेरे लिये दुष्कर हो रहा था। करवटों वदलते अंततः सुवह हुआ और मिलने का समय निकट पहुंचा।

वड़ी ही श्रद्धाभाव से मैंने स्वामी जी की चरण रज अपने मस्तिष्क पर लगायी और उनसे पूछा कि धार्मिक भूमिका में आपका क्या पद है? उन्होंने प्रसन्न मुद्रा में कहा कि मैं उदासीन ब्रह्मचारी हूं। लोग अज्ञान में ही मुनि के सादृश्य मेरी तुलना करते हैं। मैं तो अव्रती सम्यक्त्वी हैं। मेरा दूसरा प्रश्न था कि आप लोगों की शंकाओं का समाधान क्यों नहीं करते इससे भ्रम एवं विरोध वढ़ता है। उन्होंने कहा कि यदि शंका हो तो उसका समाध.न किया जा सकता है। तुम भी अपनी शंका का निराकरण कर रहे हो न। जव चर्चा का उद्देश्य टीका टिप्पणी, एवं कीचड़ उछालना ही हो तो उसमें समय एवं शक्ति वर्वाद करने में क्या लाभ यह उनका अज्ञान भाव है। एक के वाद एक मेरी सम्पूर्ण शंकाओं का समाधान हो चुका था। घड़ी की सुई भी पाँच मिनट पूर्ण होने का संकेत दे रही थी। मैंने कृतार्थ भाव से उनके पुन: चरण छुये तो उन्होंने आशीर्वाद देते हुए मुझे सोनगढ़ आने का निमन्त्रण दिया। मैं अपने को गौरन्वित अनुभव करता हुआ उनके सानिध्य से दूर होता हुआ किंचित दुख महसूस करता रहा। वाद में ज्ञात हुआ कि उन्होंने जैन समाज के मूर्धन्य विद्वानों से चर्चा करने हेतु एक घंटे का समय इस शर्त पर दिया है कि वह टीका टिप्पणी रहित अपनी समुचित शंकाओं का समाधान सहृदयभाव से करेंगे। इस घटना को व्यतीत हुए 18-19 वर्ष हो गये किन्तु उनसे मिलने का जो अपूर्व आनन्द था एकान्त क्षणों में स्मृति-पटल का विषय बन कर आह्लादित करता रहता है। दुर्भाग्य का विषय है कि मैं अभी तक उनके निमंत्रण को साकार नहीं कर सका, यद्यपि उनके उपदेशों का लाभ अप्रत्यक्षरूप से ले रहा हूं।

ऐसे हैं श्री कानजी स्वामी जी तत्वज्ञान एवं प्रसिद्धि की पराकाष्ठा पर पहुंच कर भी व्यक्तिगत व्यवहार में सरल, स्पष्ट, निर्मल निहंकारी, विनम्र, निस्पृही एवं

सहृदय हैं और शुद्धोपयोगरूप उच्च चारित्रिक भूमिका सम्बन्धित अपनी अशक्यता को स्वीकारने में किंचित भी संकोच नहीं करते और विरोधियों के कटु वाक् प्रहारों की चिन्ता किये बिना आत्म साधना में लीन रहते हैं। आधुनिक जैन जगत के अध्यात्मिक आन्दोलन के प्रणेता मूक आत्म योगी स्वामी जी को यदि कोई अपनी अज्ञानता से उनके पद एवं भूमिका को अन्यथा समझकर उन्हें अपनी दुर्भावनापूर्ण एकान्तिक आलोचना का विषय बनाये तो इसमें किसकी बुद्धि का दोष? प्रत्येक विवेकवान व्यक्ति को पूर्वाग्रह एवं दुराग्रह छोड़कर इस प्रश्न का उत्तर देना है।

सन् १९६८ में मैं बुरानपुर में सिविल जज था। गिरनार जी की यात्रा के लिये गया था। रास्ते में सोनगढ़ ठहरने का प्रोग्राम बना। प्रथम ही अवसर पर परम पूज्य स्वामी जी के दर्शन हुए। उनका प्रवचन सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। उसके बाद सोनगढ़ से प्रकाशित साहित्य के अध्ययन का अवसर मिलता रहा।

आपके प्रवचनों में सदैव भेद-ज्ञान कराने की मुख्यता से निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान, कारण-कार्य की स्वतंत्रता का विशद विवेचन रहता है। इनके प्रवचन से तथा उनके समागम से मेरा सारा जीवन बदल गया। वस्तु की स्वतंत्रता का भान हुआ। मुझे सच्ची शांति इनके चरणों में ही मिली। आपका मुझ पर महान उपकार है। मैं कभी भी उन्हें नहीं भूल सकता।

— फूल चन्द जैन,
अवकाश प्राप्त जिला एवं सत्रन्यायाधीश

समयसार एवं कहान गुरूदेव

मधुभाई जैन, जलगांव

नमः समयासाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावांतरच्छिदे ।।
जो स्वरूप समझे विना, पाये दुःख अनंत ।
समझाया वह पद, नमूं श्री सद्गुरु भगवंत ।।

'समयसार' अर्थात् द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म से रहितचेतनागुणरूप शुद्ध आत्मा कि जो अपनी ही अनुभवनरूप क्रिया से सदा प्रकाशमान है, शुद्ध सत्तास्वरूप है और स्वतः अन्य सर्व जीवाजीव, चराचर पदार्थों को सर्व क्षेत्र, काल, संबंधी सर्व विशेषणों के साथ एक ही समय में जाननेवाला है; उसे मेरा त्रिकाल नमस्कार हो ।

ऐसे अतिशय महिमावन्त आत्मस्वभावको समझे विना हे प्रभु ! मैंने अनंत दुःख पाये हैं । परन्त हे परमकृपालु गुरुदेव आपने ऐसे अचिंत्य आत्मस्वभावको समझाकर इस दासपर अकारण करुणा की है । अतः हे कहान गुरुदेव ! आपके पुनीत चरणों में वारम्वार नमस्कार हों ।

आज केवल भारतवर्ष में ही नही विदेशों में भी पूज्य स्वामीजी के द्वारा वीतराग धर्मकी महती धर्म प्रभावना हो रही है । अफ्रीका, आदि देशों में भी आज मुमुक्षु मंडल है और जहाँ नित्य प्रतिदिन स्वाध्याय—तत्त्वचर्चा आदि विभिन्न कार्यक्रम होते है और वीतराग वाणी का प्रचार···प्रसार होता है; जिसका सारा श्रेय पू० गुरुदेव को ही है ।

पूज्य गुरुदेव के जीवन में उथल-पुथल मचा देने वाली महान क्राँति तव हुई जव उन्हें सं० १६७८ में श्रीमद् भगवत कुंदकुंदाचार्य विरचित श्री समयसार नामक महान आध्यात्मिक एवम् अलौकिक ग्रंथ की प्राप्ति हुई थी । समयसार पढ़ते समय उनके आनंदकी कोई सीमा नहीं थी । जिसकी खोज में आप थे वह आप को समयसार में मिल गया । श्री समयसार जी में लहराते हुए अमृत सरोवर को स्वामीजी के अंत-

चक्षुने देखा। एक के वाद एक गाथा पढ़ते समय महाराज श्री ने उस अमृत के अनेक घूंट पिये और उनकी आत्मा मानों तृप्त तृप्त हुयी।

ग्रंथाधिराज श्री "समयसार जी" ने स्वामीजी के ऊपर अपूर्व और अनुपम उपकार किया है। महाराजश्री के अन्तरंग जीवन में परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली हुयी परिणति ने निज घर देखा, स्वसत्ता में स्वस्वामीपना आया, निज आत्म वैभव का दावा (कब्जा) लेकर पर्याय की पामरताको सदा सदा के लिये मिटा दिया। मिथ्यात्व-अज्ञानका घोर अंधेरा 'सम्यक्त्व सूर्य' के उदय होते ही दूर हुआ। उपयोगरूपी झरने में अव शीतल अमृत का मीठा प्रवाह वहने लगा।

पूज्य स्वामीजी को श्री 'समयसारजी' के प्रति अतिशय भक्ति है और क्यों न हों? जवकि इसमें संपूर्ण ब्रह्मांड के भाव समाये हुए है। जिस समयसार के पठन मात्र से मिथ्यात्वके मजबूत वंधन ढीले पड़ने लगते हैं, अनादिकालीन मूर्च्छा शीघ्र ही दूर हो जाती है और निज परिणति विभावों से रुक कर स्वभाव की ओर दौड़ने लगती है। जो समयसार राग और ज्ञान की अतिसूक्ष्म संधी को छेदने के लिये प्रज्ञाछैजी है, जो साधक संतो का साथी है, जगत का सूर्य है, भगवान महावीर और सीमंधर परमात्मा का साक्षात् संदेश है; भवभ्रमण से थकित जीवों का जो विश्रामधाम है उसके प्रति इतनी निष्ठा, भक्ति, विनय और वहुमान का होना स्वाभाविक ही है।

इस परम पावन समयसार शास्त्र को स्वामी जी ने सैकड़ों वार पढ़ा है और प्रतिदिन ही पढ़ते रहते है। पूज्य स्वामी जी 'समयसार' शास्त्र को उत्तमोत्तम शास्त्र मानते हैं। सं० १९९४ में स्वाध्याय मंदिर में श्री 'समयसारजी' की मंगल प्रतिष्ठा करने में आयी। तव से आजतक जाहीर प्रवचन सभा में एक समय श्री समयसारजी पर प्रवचन नित्य प्रतिदिन होता ही है और अव १७ वीं वार सामुदायिक सभा में स्वामी जी द्वारा समयसारजी का विशद् प्रवचन हो रहा है।

'समयसार' पर प्रवचन करते समय स्वामीजी को अतिशय उल्लास आ जाता है। पढ़ते-पढ़ते क्षण भर के लिये तो आप स्वमें स्थिर हो जाते है। तव ऐसा लगता है कि आप शास्त्र प्रवचन नहीं, परन्तु अपने अनुभव की वात कर रहे है। अभी क्षणभर पहिले···आपके अनुभव में क्या आया···उसी को आप वचनों द्वारा प्रगट करते है। आपका कहना है कि समयसारजी की प्रत्येक गाथा मोक्ष की प्राप्ति करा दे ऐसी है। 'समयसार' में तो ज्ञानियों का हृदय खोलकर रख दिया गया है। जिसे एक वार 'स्व समयसार' की रुचि हो जाये उसे फिर जगत के किसी भी पदार्थ में रुचि नहीं रहती है।

निज शुद्धात्म तत्त्व ही रुचिकर है, सुंदर है, अलौकिक है, महा महिमावन्त पदार्थ है। अतिशय अद्भुत आश्चर्यवन्त पदार्थ यदि कोई है तो वह निज शुद्धात्म तत्त्व ही है। उसकी तुलना में जगत के सारे पदार्थ तुच्छ है, हेय है।

श्री 'समयसार' शास्त्र आत्म-स्वभाव का अद्वितीय ढंग से सम्पादन करता है। देखिये······

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमित्तिपि ।।

तथा

जो पस्सदि अप्पाण अवद्धपुट्ठं अणण्णमविसेजं।
अपदे स सन्तमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं ।।

जो पुरुष अपनी आत्मा को अवद्धस्पृष्ट, अनन्य, अविशेष, नियत और असंयुक्त देखता है वह सर्व जिनशासन को देखता हैं। अर्थात् जो अपनी आत्मा को इन पाँचो विशेषणों सहित अनंत गुण युक्त, अभेद रूप से जानता है और अनुभव करता है उसने जिनशासन के सारे रहस्य को समझ लिया। हाँ भाई! करना भी तो यही है··· अपनी आत्मा में···अपनी अनुभूति··· यह जिसने कर ली उसने जिनवाणी के मर्म को पा लिया।

'समयसार' शास्त्र में ९ तत्त्वों का वर्णन करने के साथ-साथ कर्ताकर्म का वर्णन करके तो कुन्द-कुन्दाचार्यदेवने कमाल ही कर दिया। मिथ्यादृष्टि जीव की पर पदार्थ के साथ की एकत्वबुद्धि है उसपर तो कर्ताकर्म अधिकार ने कुठाराघात करने जैसा काम किया है। वास्तव में जव तक पर पदार्थ के साथ की एकत्वबुद्धि और कर्तृत्वबुद्धि टूट नही जाती तव तक मिथ्यात्व का अभाव नहीं होता और सम्यक्त्व का अविर्भाव नहीं होता है। इस अधिकार के द्वारा कुंदकुंदस्वाभी ने तो हमें नई दृष्टि प्रदान कर सम्यक् ज्ञान के प्रकाश में लाकर खड़ा कर दिया है। "आत्मा" शरीर, मन, वाणी की क्रिया का कर्ता तो है ही नहीं क्योंकि उसके साथ तो अत्यन्त अभाव हैं। परन्तु अज्ञान दशा में होने वाले रागादिक परिणामों का भी कर्ता नही है। इतना ही नहीं आत्मा को शुद्ध परिणामों का कर्ता भी उपचार से कहा गया है। पर्याय का कर्ता पर्याय हैं द्रव्य नहीं; पर्याय की तत्समय की योग्यता ही उस पर्याय की उत्पादक हैं। इतनी परम निरपेक्षता की, स्वतंत्रता की ओर स्वाधीनता की वात कुंदकुंदाचार्यदेवने की है।

भगवान अमृतचंद्राचार्यदेवने भी आत्मख्याति टीका के अन्त में परिशिष्ट लिखकर आत्माकी अनंत शक्तियों में से ४७ असाधारण शक्तियों का अद्भुत विवेचन

कर आत्मा की ख्याति एवं महिमा को स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है। यदि भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेव ने समयसाररूप भव्य प्रासाद का निर्माण किया है तो अमृत-चंद्राचार्यने भी उस पर कलश चढ़ाकर ध्वजा फहराने का कार्य किया है। ४७ शक्तियों पर प्रवचन करते समय तो स्वामी जी का अंत:करण गद्-गद् हो जाता है; आत्मा के अतींद्रिय आनन्द के अनुभव का रंग ऐसा चढ़ जाता है कि बस देखते ही बनता है। अपने साथ-साथ श्रोताओं को भी वे मंत्रमुग्ध कर आत्मा की मस्ती में डुबो देते हैं।

श्री कुंदकुंदाचार्यदेव, अमृत चंद्राचार्यदेव, समन्तभद्राचार्य, उमास्वामी, योगीन्दुदेव आदि अनेक आचार्यों के रचे हुए सहस्रों शास्त्र आपने पढ़े है, चारों अनुयोगों के ग्रन्थ भी पढ़े है और उन्हीं ग्रन्थों में से आपने हजारों न्याय निकाले है··· जिन भावों से तीर्थंकर नामकर्म बंधता है वह भाव भी हेय है। शरीर के रोम रोम में तीव्र रोग होना वह दुःख ही नहीं है; दुःख का स्वरूप तो अलग ही है। मेरे प्रवचनों को बहुत से जीव समझें तो मुझे लाभ हो ऐसा मानने वाला मिथ्यादृष्टि उपदेशक हैं। इस दु:ख को समता पूर्वक सहन नहीं करूँगा तो नवीन कर्म बधेंगे इस अभिप्राय से समता रखना वह भी सच्ची समता नहीं है। पंचमहाव्रत के पालन का जो शुभ विकल्प है वह पुण्य बंध का कारण है।

प्रत्येक प्रवचन में स्वामी जी सम्यक् दर्शन पर बहुत जोर देते है। वे कहते है कि शरीर की चमड़ी निकालकर उस पर नमक छीटने वाले पर भी क्रोध नहीं किया, इस प्रकार का व्यवहार चरित्र इस जीव ने अनंत बार पालन किया हैं। परंतु सम्यग्दर्शन एक बार भी पाया नहीं। लाखों जीवों को हिंसा से मिथ्यात्वका पाप अनंत गुणा अधिक है। लाखों करोड़ों जीवों में सम्यग्दृष्टि जीव विरले ही होते है। सम्यग्दर्शन इतना सरल नही है जितना कि अज्ञानी समझता है।

मोक्ष अर्थात् परम सुख का कारण सम्यक् चरित्र है, सम्यक् चरित्र का कारण सम्यग्दर्शन है, सम्यग्दर्शन का कारण तत्त्वज्ञान व तत्त्वविचार है और तत्त्वज्ञान का कारण सर्वज्ञ वीतराग कथित आगम का अभ्यास है। इसीलिये मोक्षमार्ग में पहला उपाय आगम का अभ्यास है। इसीलिये मोक्षमार्ग में पहला उपाय आगम-अभ्यास कहा है; अतः यथार्थ बुद्धिद्वारा निर्णय सहित आगम का अभ्यास करना हमारा प्रथम कर्तव्य हैं।

कहते है गुरु विना ज्ञान नहीं और "गम पडया विना आगम पण अनर्थकारक थइ पड़े"। आगम के आर्ष वचन तो है परंतु उनका रहस्य तो ज्ञानियों के हृदय में होता है शास्त्रों के अर्थ करने की प्रद्धति का सही ज्ञान न हो तो अज्ञानी जीव शास्त्र को भी शस्त्र बना लेता है और स्वच्छंदी बन आत्मघात करता रहता हैं। आज के

समय में स्वामीजी सही मायने में "आगमपथ प्रदर्शक" है; मोक्षमार्ग के प्रणेता एवम् तत्पथानुगामि भी है।

पूज्य स्वामीजी को वीतरागी जैनधर्म पर अनन्य श्रद्धा है। अपने अनुभव के बल पर निकलती हुई उनकी न्याय से भरपूर वाणी अच्छे-अच्छे नास्तिकों को भी विचार करने पर मजबूर कर देती है। आपका कहना है ···"जैनधर्म कोई संप्रदाय नहीं हैं, यह तो विश्वधर्म है। वस्तुस्वरूप का सच्चा दिग्दर्शक तो केवल जैनधर्म ही है। सनातन दिगंबर जैन धर्म ही सच्चा जैन धर्म है। तथा अंतरंग और वहिरंग दिगंबरता (अपरिग्रहता) के बिना कोई भी जीव मोक्ष नहीं पा सकता" यह उनकी दृढ़ मान्यता है।

स्वामीजी कहते हैं "मुझपर भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेवका और उनके रचे हुए समयसारादि शास्त्रों का महान उपकार है। मैं तो उनका दासानुदास हूँ।" ऐसा तो वे भक्तिभरे हृदय से अनेक बार कहते है। स्वामीजी सच्ची समझ पर भी वहुत भर देते है. प्रथम समझो, यथार्थ ज्ञान विना व्रत, नियम, संयम, आदि निष्फल हैं।

गुरुदेव को 'समयसार' अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय है। अजी क्या कहूँ समयसार ही स्वामीजी का जीवन है। उनकी वाणी में समयसार है, श्वासोच्छ्वास में समयसार है। उनकी हृदय वीणा के तार २४ घंटे समयसार के सुर सुनाते हैं, गीत सुनाते हैं। उनके रोम रोम में समयसार समाया हुआ है। समयसार उनकी अंतरात्मा है। उन्हें निशदिन धुन रहती है तो वह समयसार की ही। उनकी दृष्टि सदा 'समय-सार' पर ही रहती है। 'समयसार' तो उनका जीवन साथी है। अहो! 'समयसार' तो मोक्षधाम में चलने के लिये एक रोशनी है। यही 'समयसार' आपको शीघ्र ही 'समयसार' (द्रव्यकर्म, नो कर्म, भावकर्म से रहित शुद्ध आत्मा तीर्थंकर पदवी सहित परमात्मा) वना देगा इसमें दो राय नहीं है।

पूज्य कानजी स्वामी भारत की महान प्रतिभाशाली विभूति है। वालब्रह्म-चारी कहान गुरुदेव एक अध्यात्ममस्त आत्मानुभवी पुरुष है। आत्मानुभव उनके प्रत्येक शब्द में प्रतिविंवित होता है। स्वामीजी भारत के अद्वितीय नर रत्न है। अधिक क्या कहे भारत भूमि के आंगन में शीतल छायायुक्त वांछित फलदाता कल्प-वृक्ष फलित हुआ है।

अंत में ····हमारा जीवन भी स्वामीजी के जीवन सदृश ही 'समयसारमय' वन जावे ऐसी भावना सहित 'समयसार स्वरूप' कहान गुरुदेव को········ सविनय प्रणाम। □

'दिव्य प्रकाश रश्मि'

डा० राजेन्द्र कुमार बंसल,

धर्म जब भावहीन शरीरादि क्रियाओं तक ही सीमित रह जाता है तो उसके द्वारा आत्म कल्याण की आशा करना तो दूर रहा वह स्वयं रूढ़ि एवं परम्परा के जाल में उलझकर इतना विकृत हो जाता है कि कालान्तर में वह अपना स्वरुपात्मक अस्तित्व खो बैठने की स्थिति में पहुंच जाता है। 'धर्म' यदि वह सच्चे अर्थ में 'धर्म' अर्थात् 'स्वभाव' रूप है तो वह कदापि विभाव रूप विकृतियों में अपने को परिणत नहीं होने देगा। ऐसी स्थिति में धर्म के वाह्य क्रियात्मक रूप जितने भी होंगे वह सब स्वरूप प्राप्ति के साधक एवं सहयोगी होंगे न कि बाधक। जब हम मुक्ति, कल्याण या मोक्ष की चर्चा करते हैं, तो हमारा तात्पर्य सदैव आत्मा के सम्बन्ध में होता है न कि शरीर के जिन शासन में आत्म कल्याण के शाश्वत् पथ को वीतराग विज्ञान या आत्म-विज्ञान के रूप में सम्बोधित किया गया है। जिस प्रकार जड़ पदार्थों का विश्लेपण एवं व्याख्या आदि का कार्य भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान एवं वनस्पति आदि अन्य विज्ञान करते हैं। उसी प्रकार आत्मा की शुद्धि का विश्लेपण एवं व्याख्या आत्म-विज्ञान या वीतराग-विज्ञान करता है। विज्ञान शब्द विशिष्ट, क्रमवद्ध एवं कार्य-कारण सहित अध्ययन एवं अन्वेपण का सूचक है। वीतराग-विज्ञान आत्मा का धर्म अर्थात् स्वरूप को बताकर उसकी वर्तमान अशुद्ध अवस्था का अनुसंधान करता है, अशुद्धता का कारण खोजता है, और शुद्धता हेतु मार्ग दर्शाता है। यह अनुसंधान एवं आत्म शुद्धिकरण की प्रक्रिया एक साधक की दृष्टि से तब तक चलती है जब तक कि वीतरागता का लक्ष्य प्राप्त नही हो जाता।

वीतरागता का लक्ष्य सम्यक् दर्शन-विज्ञान-चरित्र रूप मुक्ति पथ के अवलम्बन द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। चूंकि प्रश्न आत्म कल्याण का है अत: संक्षेप में आत्म के धर्म एवं गुणों के प्रति आस्था एवं श्रद्धा, आत्म का ज्ञान तथा आत्मलीनता यही मोक्षमार्ग है। यह बात बहुत सीधी एवं सरल है। जब हमारी रुचि धनोपार्जन की होती है तो हम धन प्राप्ति के साधनों का ज्ञान करते हैं और फिर उनका उपयोग

कर धनार्जन करते हैं। इसी प्रकार आत्म शुद्धि की उत्कृष्ट इच्छा होने पर सर्वप्रथम यह आवश्यक हो जाता है कि हम यह जाने कि आत्मा क्या है ? और किसकी हम शुद्धि करना चाहते हैं ? आत्मा का साक्षात्कार किये विना हम उसके प्रति श्रद्धावान नही हो सकते। आत्मा का साक्षात्कार शरीरादिक व वाह्य जड़ क्रियाओं के माध्यम से सम्भव नहीं है क्योंकि वह अतिइन्द्रिय है। शरीरादिक स्वयं अचेतन होने के कारण चेतन के ज्ञान का कारण कैसे वन सकते हैं ? इसके लिये तो हमें अपने प्रकट सम्पूर्ण ज्ञान शक्ति को वाह्य ज्ञेय पदार्थों की ओर से खीचकर अंर्तमुखी करना होगा और इस प्रकार उसे आत्म केन्द्रित कर आत्म साक्षात्कार करना होगा। जव आत्मा से एक वार साक्षात्कार हो जाता है तभी हमारी आत्मा के प्रति सच्ची श्रद्धा होती है। यह आत्म श्रद्धान ही सम्यक दर्शन है। यही प्रक्रिया प्राथमिक आत्म अनुसंधान की है जहां से धर्म प्रारम्भ होता है।

आत्म साक्षात्कार या आत्म अनुसंधान की यह प्रक्रिया अनेक स्तरों से पार होती हैं। इसमें तीर्थंकरों के माध्यम से आत्मा के अनंत ज्ञान, आनन्द, सुख एवं शक्ति के प्रति श्रद्धा-भक्ति, आत्मा साक्षात्कार युक्त सच्चे गुरुओं का सानिध्य, आत्म शुद्धि परक शास्त्रों का पठन, तत्व अभ्यास एवं आत्मचिंतन आदि ऐसे प्रमुख चरण हैं जिन का अवलम्वन लेकर आत्म साधक आत्म साक्षात्कार करता है। आत्मा साक्षात्कार करने के पश्चात् जो हमारा ज्ञान होता है वही ज्ञान सच्चा ज्ञान वन जाता है जिसे सम्यकज्ञान कहा जाता है। इसके उपरान्त ज्यों-ज्यों साधक आत्म साक्षात्कार रूप शुद्धोपयोग में लीन होता हुआ आत्म शुद्धि में वृद्धि करता जाता है, आत्मविकारों से उसकी मुक्ति होती जाती है और वह क्रमिक रूप से समस्त विकार-विभाव रूप कर्म-मल से अपने को पृथक करता हुआ अपने अनंत ज्ञान-आनन्द आदि दिव्य गुणों को प्राप्त कर लेता है। यह शुद्धोपयोग रूप आत्मलीनता ही सम्यक् चारित्र है। इस प्रकार आत्मा अपनी शुद्धता के चरम लक्ष्य, मुक्ति या परमात्मा पद को उक्त पद्धति द्वारा प्राप्त करता है।

आत्म शुद्धि की प्रक्रिया में संलग्न आत्म साधक मुख्यत: गृहस्थ एवं श्रमण मुनि के रूप में पाये जाते हैं। यह दोनों साधक आत्म श्रद्धान एवं ज्ञान की दृष्टि से समान स्तर के होते हैं किन्तु आत्मलीनता या चारित्र की दृष्टि से दोनों में अंतर होता है। गृहस्थ श्रावक को आत्म साक्षात्कार या आत्मानुभव विशेप-विशेप काल के अन्तर से कभी-कभी ही होता है किन्तु श्रमण मुनि को ऐसा आत्मानुभव अल्पकाल के अन्तर से वार-वार होता है। मुनि दशा के अस्तित्त्व के लिये तो यह अनिवार्य है कि उन्हें प्रत्येक अंतर्मुहुर्त अर्थात् प्रति ४८ मिनिट के अन्तराल पर एक वार आत्मानुभव

निश्चित ही हो। यदि ऐसा सम्भव नहीं होता तो भावदृष्टि से मुनि दशा ही खंडित हो जाती है यद्यपि वाह्य भेष मुनि रूप ही दिखता है। आत्मानुभवहीन ऐसे मुनि वेष से अव्रती सम्यकत्ती गृहस्थ निश्चित ही उत्कृष्ट होंगे जो मिथ्यात्व एवं अज्ञान से अपने को वचाये हुये हैं। गृहस्थ एवं श्रमण मुनि के मध्य वाह्य आचार में भी अन्तर है जो व्रत एवं क्रियाओं पर आधारित है। गृहस्थ मद्य-मांस-मधु के त्यागी एवं पांच अणुव्रत के धारी होते हैं। जबकि मुनि पांच महाव्रत युक्त २८ मूल गुणों का पालन करते हैं। यह है वीतराग विज्ञान या आत्म-विज्ञान का पथ एवं पाथिक का संक्षेपसार जो अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर की दिव्य ध्वनि से प्रतिपादित एवं अनुभव गम्य है।

आधुनिक संदर्भ में जब हम आत्म साधकों का विश्लेपण या अवलोकन करते हैं तो हम अपने को निराशा के गहन गहर में पाते हैं। कितने ऐसे गृहस्थ साधक हैं जिन्होंने आत्म साक्षात्कार करके आत्मा के प्रति श्रद्धान किया है? या इसकी वास्तविकता को समझकर उसका प्रयास कर रहे हैं? एवं कौन ऐसे प्रातः स्मरणीय परम श्रद्धेय श्रमण मुनि हैं जो हर अंतर्मुहुर्त में आत्मानुभव करते हुए शुद्धोपयोग में लीन रहते हैं? इस प्रश्न का उत्तर भगवान महावीर के प्रत्येक कथित अनुयायी या आत्म साधक को अपने वर्तमान पद एवं भूमिका के संदर्भ में देना है। आत्मा, आत्मानुभव एवं शुद्धोपयोग की चर्चा करते ही जिनका मन उद्विग्न हो जाता है एवं मानसिक संतुलन भंग हो जाता है। वह किस सीमा तक अपने को छल रहें हैं (समाज को तो भ्रमित कर ही रहे हैं) और अपना भव-भ्रमण वढ़ा रहे हैं, यह प्रश्न विचारणीय है। इनकी वाह्य व्रतादिक क्रियाओं का भी रूप कम विकृत नहीं है। गृहस्थ जीवन त्यागने वाले उत्कृष्ट आत्म साधकों की दैनिक चर्चा लौकिक पत्र-पत्रिकाओं के गठन से प्रारम्भ हो, भवन-मन्दिरों के निर्माण, स्व साहित्य प्रकाशन एवं यशकीर्ति के कार्यों में जिनका अधिकांश समय व्यतीत हो, गृहस्थावस्था के त्यागे परिग्रह से अधिक परिग्रह जिनके वाहर काल में साथ चले तथा वीतरागी महापुरुषों के कथानकों में अवीतरागता के पोषक साहित्य के प्रति जिनका अनुराग एवं समर्थन हो, ऐसे आत्म साधक कहाँ तक निज कल्याण एवं समाज का पथ प्रदर्शन करेंगे यह भी कम विचारणीय नहीं है। गृहस्थ साधकों का वाह्यचार भी कम विकृत नहीं है। असत्याचरण, अनीति, शोपण एवं कानून उल्लंघन की भ्रष्ट क्रियाओं से धनोपार्जन, असंयमित एवं अमर्यादित जीवन, भोग-यश कीर्ति एवं वाह्य प्रदर्शन की उत्कृष्ट लालसा, मिथ्या मान्यता युक्त पाप-पुण्य के भावों में झूलता हुआ हिंस-परिग्रही आचरण आदि विकृतियाँ उनके जीवन में सहज ही दृष्टव्य हैं, जो व्यक्ति के साथ समाज व्यवस्था को भी कलुषित कर रही हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि काल के प्रवाह में धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं की परम्परा एवं प्रथाओं में जड़ता आती है। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि जड़ता इस सीमा तक पहुंच जाये कि वह संख्या अपना अस्तित्व ही गवाँ बैठे। आत्म कल्याण परक धर्म के ऊपर शरीरादिक जड़ क्रिया का वर्चस्व हो जावे; आत्म शुद्धि का लक्ष्य धन, पुत्र वैभव एवं शरीरादिक भोगों में परिणत हो जावे; प्रवृत्ति मूलक आत्मोन्मुखी शुद्धि की प्रक्रिया निवृति मूलक शरीरोन्मुखी जड़ हो जावें; अज्ञान, राग द्वेष मोह तथा असंयम को दूर करने वाला धर्म इनके भी बाहुपाश में जावें तथा विश्व-कल्याण परक कल्याण मार्ग जन्मजात कुछ व्यक्तियों द्वारा कैद कर पंगु एवं प्राणहीन कर दिया जावें ? यह कैसी विडम्बना है। दुर्भाग्य से, भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित आत्म-विज्ञान की वर्तमान अवस्था कुछ इसी प्रकार प्रतीत हो रही है।

आत्म विज्ञान के पराभव के ऐसे काल में अंधकार में प्रकाश की एक किरण तब प्रस्फुटित हुई जब आज से लगभग 55 वर्ष पूर्व अर्थात् सन् 1920 में स्थानकवासी आचार्य बाल ब्रह्मचारी श्री कान जी स्वामी को जब "समयसार" नामक ग्रन्थ की एक प्रति संयोग से प्राप्त हुई। यह ग्रन्थ लगभग दो हजार वर्ष पूर्व श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य देव द्वारा लिखा गया और जिसकी आत्म ख्याति नामक संस्कृत टीका लगभग एक हजार वर्ष पूर्व श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य देव ने की थी। इस ग्रन्थ ने उनके मन की पूर्व आस्थाओं को हिला दिया और उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि वह अश्रद्धान एवं अज्ञान के ऐसे समुद्र में गोते लगा रहे हैं जिसका कोई किनारा ही नहीं है। उनका निष्कपट दुराग्रह एवं पूर्वाग्रह रहित मन व्यथित हो उठा जिसकी चरम परिणति अनेक साथियों सहित उनकी दिगम्बर जैन दीक्षा के रूप में गुई। अब तक वह अहर्निश अध्यात्म शास्त्रों के पठन, मनन, आत्म चिंतन तथा आत्म साक्षात्कार के कार्य में लीन रहते हुये वीतराग-विज्ञान का उपदेश देकर पामर-अज्ञानियों को मुक्ति का मार्ग दर्शा रहे हैं। उन्होंने श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य देव द्वारा रचित अन्य ग्रन्थों सहित "समयसार" ग्रन्थ पर 17 बार प्रवचन किये। इस प्रकार श्री स्वामी ने एक हजार वर्ष के अन्तराल से अपनी प्रवचनरूपी ध्वजा का आरोहण श्रीअमृतचन्द्राचार्य कृत आत्मख्याति नामक समयसार की सँस्कृत टीका एवं समयसार कलश रूप उस कलशबद्ध शिखर पर किया जिसका निर्माण "समयसार" ग्रन्थ रूप परमागम भवन पर किया गया था। हजार वर्षो के क्रमिक व्यवधान के उपरान्त भी आत्म तत्व का स्वरूप एवं उसके निरूपण में भावनात्मक एवं तथ्यात्मक समानता अद्वितीय, एवं अद्भुत हैं, जो इन तीन महान पुरुषों की, भूमिका में भेद होते हुए भी, एक कड़ी में पिरोकर सम्बद्ध करता है। ठीक भी है सत्य काल के प्रवाह से अप्रभावित, कालातीत तथा त्रैकालिक होता हैं। यही उसकी विशेषता है।

श्री कानजी स्वामी के तत्व चिंतन की गहराई, सरलता, निष्छलता, आत्मोन्मुखी वृत्ति तथा तत्व प्रेमी वन्धुओं के प्रति प्रगाढ़ स्नेह का परिणाम है कि सहस्रों जैन-जैनेतर वृत्ति तथा तत्व प्रेमी वन्धुओं ने आत्म-विज्ञान को समझा, जाना, श्रद्धान किया और उसका अनुशरण कर रहे हैं, जब कि भावहीन शरीर क्रिया परक बुद्धि के धनी महानुभावों की ऐसी दयनीय स्थिति है कि वह अपनी संतति से, तत्व ज्ञान तो दूर, कथित धार्मिक क्रियाओं का अनुशरण करवा पाने में अपने को असहाय पा रहे हैं। अध्यात्मिक पथ प्रदर्शक श्री कानजी स्वामी ने आत्मा के गूढ़ रहस्य को जन-जन के मन का विषय बनाकर जैनधर्म को "जैनधर्म" के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। उन्होंने जन्मजात पैत्रिकता में कैद धर्म को प्रचार परक स्वरूप प्रदान किया है। उनके सदप्रयास एवं सतत् साधना से तत्व प्रचार की अद्भुत तरंगें जनमानव को आर्विभूत किये जा रही हैं जिनमें अज्ञान, अश्रद्धान, अंधविश्वास असंयम एवं अमर्यादित आचार तिरोभूत हो रहा। इसे एक महान धार्मिक क्रान्ति के रूप में प्ररूपित किया जा सकता हैं जिसका सम्पूर्ण श्रेय श्री कानजी स्वामी के निष्ठावान दृढ़, निर्मल अनेकांन्तिक तथा पुरुपार्थी आत्मस्वभावोन्मुखी व्यक्ति को है, जो विरोधों के झंझावतों में भी अकंप-निश्चल एवं अडिग रहा। आवश्यकता है समय रहते हम उनके कर्तृत्व के महत्व को समझें, प्रेरणा लें और आत्मविज्ञान के प्रचार-प्रसार में उनका सहयोग करें। यदि हमने अपने दृष्टिकोण को विशाल नहीं वनाया तो निश्चित ही इतिहास हमें क्षमा नहीं करेगा। अध्यात्मवाद के ऐसे निर्मोही महान आत्मसाधक को मेरा कोटिशः प्रणाम जिसके सद्प्रभाव के कारण मुझमें उक्त पक्तियां लिपिवद्ध करने की सामर्थ्य हुई।

मोक्ष-पथ के राही

—पं० ज्ञान चंद जैन जवलपुर (म० प्र०)

अध्यात्म मनुष्य जीवन की आवश्यकता है, सहजता है, शान्ति है, सुख है और संतोष है। अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मनुष्य अडोल और अकम्प वना रह सकता है तो केवल अध्यात्म की वृति द्वारा, आत्मा की चिरन्तन आराधना द्वारा धर्म का मूल तत्व यानी अध्यात्म अर्थात् आत्म तत्त्व की यथार्थ जानकारी कुच दिनों से जैनियों में भी विस्मृत हो चली थी और केवल धर्म के नाम पर कुछ रूढ़ियों का पालन ही शेष रह गया था। परन्तु धर्म के मूल भूत तत्त्व और रहस्य के अनुभवन का जो वातावरण आध्यात्मिक सन्त प्रवर कानजी स्वामी ने कुछ दिनों से पुन: उद्धत किया है वह अत्यन्त संतोष और हर्ष की वात हैं। लोगों को सहज धर्म के स्वरूप का सहजतया वर्णन और अवधारण करा देने के यश:कार्य में स्वामी जी का जो वहुमान किया जाय वह थोड़ा है। स्वामीजी ने, मनुष्यों को अपने जीवन में धर्म का धारण करना कठिन है, धर्म का पालन करना कठिन है इत्यादि भ्रान्त धारणाओं को जड़ मूल से उखाड़ दिया है। उनका प्रचण्ड उद्घोष है कि आत्मा का धर्म आत्मा धारण न कर सके यह सर्वथा असंभव है। सीधे-सादे नपे तुले शब्दों में वे तत्व की वात कहते हैं कि भाई यदि हलुवा वनाना हो तो पहले आटे को घी में सेंकना पड़ेगा और वाद में उसमें शक्कर का पानी डालना पड़ेगा ऐसे तो हलुवा वन सकता है, परन्तु कोई पहले शक्कर का पानी आटे में डाल दें और वाद में घी डाले क्योंकि उसे ऐसा लगता है कि पहले घी आटे में डालने से दिखता तो है नहीं और खर्च ज्यादा हो जाता है यदि वाद में डाला जावे तो खर्च कम होगा और दिखेगा अधिक, परन्तु ऐसा करने से हलुवा वनना तो दूर रहा कूपरी भी अच्छी तैयार नहीं हो सकेगी इसी प्रकार आत्मा में धर्म का स्वरूप प्राप्त करने को पहले सम्यग्दर्शन रूप घी डालना पड़ेगा। वाल सुलभ भाषा में वे नारियल का भी उदाहरण देते हैं कि आत्मा का स्वरूप तो नारियल के खाद्य शुक्कोश के समान अन्त में सुरक्षित है। वाहर के जटा जूट नरेटी और शुक्कता के ऊपर लालिमा की परत वह नारियल नहीं नारियल के साथ पाने जाने वाले नारियल से पृथक विकार हैं शरीर आत्मा नहीं, ज्ञानावरणादि कर्म आत्मा नहीं और रागद्वेषादि भाव भी आत्मा नहीं। इतना ही नहीं आत्मा में उत्पन्न होने वाली आत्मा का शुद्ध पर्याय भी आत्मा नहीं क्योंकि वह क्षणिक है और

त्रैकालिक। अनादिकालीन भ्रम और भ्रान्त धारणाओं को समूल उन्मूलन करने में सक्षम कानजी स्वामी की इस वाणी का हमारी परंपरा के ही कुछ व्यक्तियों द्वारा विरोध किया जाना कहाँ तक संगत और उचित है हमारी समझ में न आ सकने योग्य वात है परन्तु ऐसे समय और प्रसंग में हम सबको ध्यान देकर विचारना है कि कानजी स्वामी के विरोध के धोखे में हम वीतराग भगवान के तत्व दर्शन की ही विराधना तो नहीं करने लग गये हैं। मनुष्य को अपनी वर्तमान स्थिति से ऊँचा उठाने के लिए लौकिक दृष्टि से भी उसमें अविद्यमान ऊँचाइयों और अच्छाइयों का गुणगान किया जाता है जिससे कि वह प्रगतिशील कदम उठा सके। फिर कानजी स्वामी तो हमेशा ही आत्मा में विद्यमान गुणों की महिमा का ही मंगलमयगान करते हैं उनसे हमारा विरोध क्यों और कैसे उचित हो सकता है।

कानजी स्वामी ने तो अपनी कुल परम्परा से प्राप्त कुसंस्कारों को और विपरीतताओं की तिलांजलि दी है। हम अन्ध विश्वास की कारा से निकलें यथार्थ को पहिचानें तो कानजी स्वामी के संबंध में जो विपरीत धारणायें मन में विद्यमान हैं वे समाप्त हो जावेंगी। हम अपनी अपने धर्म की ही वात कानजी स्वामी के मुख से सुनते हैं कोई निराला और वेहूदा सत्य नहीं। धर्म की नींव पर आधारित वस्तु तत्व का प्रखर विश्लेषण करने वाले महापुरुष श्री कानजी स्वामी चिरायु हों।

●

मंगल कामना

"आत्म धरम जिन ज्योति जगा शुभ
मिथ्या तम हर, दे उपदेश।
वीतराग दर्शन फैलाया प्रवचन-मंदिर
वना जिनेश ॥
सोन सुगढ़ सौराष्ट्र केसरी
वाल-ब्रह्मचारी विद्वान्—
समयसार के कुशल प्रवक्ता,
चिरजीवी हो श्री मद् कहान"

सौभाग्य मल दोसी, अजमेर (राज०)

महान् सन्त श्री कानजी स्वामी

—वसन्तलाल नरसिंहपुरा (बम्बई)

भारतीय संविधान की २६ वीं धारा के अनुसार किसी भी नागरिक विधि के अनुसार किसी भी तरह से धार्मिक उपासना कर सकता है। उसी के अनुसार कानजी स्वामी द्वारा जैन धर्म का प्रचार हो रहा हैं। जैन समाज में, विशेषत: सौराष्ट्र में, आज घर-घर की बात हो गया है। कहा जा रहा है—"सोनगढ़ से चला एक जैन संत। अहिंसा का व्रतधारी, आइये हम सब उनके सत् मार्ग का अध्ययन करें।"

संत श्री कानजी महाराज का जन्म सौरराष्ट्र के ऊमराला ग्राम में वैशाख शुक्ल पक्ष की द्वितीय को संवत् १९४६ में हुआ था। साधु-सन्तों के समागम और कौटुम्बिक धार्मिक प्रवृत्ति के कारण आप में बचपन से ही धर्म के प्रति श्रद्धा जाग्रत हुई और आपका समय सांसारिक विषय में न लगकर पाप, पुण्य, कर्त्ता कर्म और उपादान को समझने में ही लगा रहता था। इतने से ही आपको संतोष नही हुआ। श्रद्धा और जिज्ञासा का अविरत 'युद्ध' आपके मनमें हमेशा रहा। इस तरह इस महान आत्मशोधक का चित्त सांसारिक विषयों से बिल्कुल दूर रहने लगा। अन्त में २४ वर्ष कीं आयु में ज्ञान—उपासना के लिये गृहत्याग कर, दीक्षा ग्रहण की और स्था० साधु बने।

दीक्षा के बाद

आपने साधु-दीक्षा अवश्य धारण की, परन्तु मन की कशमकश अर्थात् श्रद्धा और जिज्ञासा के भावों की लड़ाई ने आपको अनेकानेक शास्त्रों के पठन-पाठन में ही लीन रखा और इस तरह इनका आत्मशोधन कार्य निरन्तर चालू रहा। जैन धर्मावलंबी संत होने के नाते आपका शरीररूपी इस पुद्गलको ईंधन देने में बाधा महसूस नही हुई, परन्तु मन की शांति प्राप्त करने के लिए, जितने भी शास्त्र आपके हाथों में आये, पढ़ डाले। फिर भी पुण्य, पाप, कर्त्ता, कर्म और उपादान का झगड़ा मन में वैसा का वैसा ही बना रहा। अन्त में श्री दिगम्बर जैनाचार्य श्री कुंदकुंदाचार्य द्वारा

लिखित श्री समयसार पंथ आपके हाथों पड़ा और मनन के बाद श्रद्धा और जिज्ञासा की मैत्री हुई अर्थात् समाधान होने पर वास्तविक मार्गदर्शन मिला।

संवत् १९९१ में आपके दिगम्बर जैन धर्म के संप्रदाय को अपनाया। दिगम्बर जैन पंथ का साधु होना आसान नही है। इस पंथ को अपनाने के लिए एक साधु को ११ प्रतिमाएँ धारण करनी पड़ती हैं और अन्त में शाश्वत निरंजन निराकार का रूप धारण कर नग्न दिगम्बर होना होता हैं। वाइस परिषह और वत्तीस अंतराय का पालन करना पड़ता हैं। जैन धर्म में ही नहीं विश्व के सभी धर्मो में त्यागी या व्रती का स्थान हमेशा श्रावक या गृहस्थ से ऊँचा होता है और हम सहज कह सकते हैं कि कानजी स्वामी दिगम्बर जैन समाज के ही नहीं बल्कि समस्त जैन समाज के वयोवृद्ध विद्वान त्यागी महापुरुष हैं।

उपदेश को विशेषता

श्री कानजी महाराज के गहरे अध्ययन, पठन-पाठन, विषय-प्रतिपादन, भाषा की सरलता, वाक्पटूता, सुस्मरण शक्ति और गहरे अनुभव की झलक उनके उपदेशों में मिलती है। यही कारण है कि आप समाज में महान बने और आपके दर्शन से जनसाधारण को अलौकिक शांति की प्रेरणा मिलती है। आत्म स्वभाव में अवस्थित परमात्म शक्ति को प्रकट करने की कुन्जी आपके उपदेश से प्राप्त हो सकती है। आत्म-साधना और उसका सत्य उपदेश यही आपके जीवन का मुख्य कार्य है। इनके इस आत्म सन्देश को राष्ट्रपिता गांधी, कस्तूरबा और महादेव भाई देसाई ने भी सूना था। श्री ढेबर और श्री मुरारजी भाई देसाई भी आपके उपदेश का श्रवण कर चुके हैं और श्री लालबहादुर शास्त्री भी बम्बई में इनके उपदेशों से प्रभावित हुए थे।

आपके उपदेशका यही सार है कि आत्माका वास्तविक स्वरूप समझो, जड़ चेतन की अत्यंत भिन्न को समझाकर तत्त्व सम्बन्धी होने वाली भूलों को दूर करो और साक्षात् सत्स्मागम से अत्यधिक प्रयत्न से, सम्यदर्शन सम्यगज्ञान और सम्यक् चरित्र को प्राप्त करो। मोक्षमार्ग का द्वार सम्यग्दर्शन से ही खुलता है।

सोनगढ़

आज सोनगढ़ (सौराष्ट्र) जैनियों का हरिद्वार अथवा ऋषीकेश बन गया है। आपने तीर्थभक्ति की उपासना के हेतु सारे देश का भ्रमण किया। जिस, "गुजरात और सौराष्ट्र में दिगम्बर जैन मन्दिर" नहीं के बराबर थे आपके प्रभाव से गांवों और शहर में नये दिगम्बर जैन मन्दिर बन रहे हैं। आज सारे सौराष्ट्र में ही नहीं बल्कि सारे भारत में आपकी इस धार्मिक लहरने नया रूप लिया है। अन्य धर्मावलम्बी भी

आपसे वहुत प्रभावित हुए हैं। यही कारण है कि भक्त भगवान् को वम्बई में भी पांचवीं वार सन् १९५९, १९६४, १९६९, १९७२, १९७४, में खीच लाये और यहाँ भी आपके प्रभाव से चार नये मन्दिर वने। आपके मानने वाले एक संगठन में सूत्र में वंधकर स्थान-स्थान पर हाउसिंग कालोनी, व्यापार व्यवसाय के साधनों का सदुपयोग करके वन्धुत्व, मातृत्व भावना, मेल-जोल, विद्योन्नति आदि का कार्य कर रहे हैं। अपके उपदेशों का साहित्य गुजराती, हिन्दी और अन्य भाषाओं में मिलता है। इनकी पहुँच अपने देश में ही नहीं वल्कि अफ्रीका तक है।

संसार के सभी धर्मो में उतार-चढ़ाव आये हैं और सम्प्रदाय वने हैं, जैसे कैथोलिक, प्राटेस्ट और प्युरिटन, शीया और सुन्नी, महायन् और हीनयान, द्वैतवाद अद्वैतवाद और तांत्रिकवाद आदि जैनधर्म में भी सर्वप्रथम दिगम्वर, वाद में श्वेतांवर और स्थानकवासी आदि सम्प्रदायों का प्रार्दुभाव हुआ और आज इस देश में सबको विधि के अनुसार विना भेद भाव के अपने इच्छानुसार पूजा और अर्चना करने का पूजा अधिकार है।

उद्धार की पुकार

आज आर्थिक विषमता के कारण, श्रद्धा और विश्वास के स्तभ टूट गये हैं। सर्वत्र लौकिक और भौतिक शिक्षा के कारण परमात्मा के डर का लोप हो रहा है। मन्दिरों, मस्जिदों में भी चोरियां शुरू हो गयी है। मूर्तियों की अविनय, शिरोच्छेद आदि दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ आये दिन घट रही हैं। प्राचीन जैन संस्कृति की रक्षा नहीं हो पा रही है जयपुर के मन्दिरों, पपौरा (वुन्देलखण्ड), उदयगिरि और खण्डगिरि (उड़ीसा) आजननेरी (महाराष्ट्र) श्रवणवेलगोला मुड़वद्री (मैसूर कर्नाटक) की जैन कला और संस्कृति मैसूर, कर्नाटक, आँध्र वस्ती और तमिलनाडू व केरल की कला और संस्कृति श्री कानजी स्वामी के समान सभी साधुओं और श्रेष्ठ वर्गकी और पुकार२ कर वह रही है कि 'हे स्वामिन नई मूर्तियों न विराजमान करें हम अपूजनीय अवस्था में है, हमारा उद्धार करें, नये मन्दिरों में हमें विराजमान करें।

आशा ही नहीं विश्वास है कि श्री कानजी स्वामी इस जैन संस्कृति की कला और परम्पराओं की रक्षा का भार अपने ऊपर लेंगे।

महान तत्ववेत्ता

धन्नालाल जैन, ग्वालियर

उठ जाग मुसाफिर भोर हुआ सीमंधर सूर्य उदय आया।
जिस ज्योति ने श्री कुन्द कुन्द श्री अमृतचन्द्र को प्रगटाया ॥१॥
जिस किरणावलि ने अध्यातम श्री कहांन गुरू को समझाया।
जिनकी अमृत वाणी ने भव्य जीवों को स्वानुभव प्रगटाया ॥२॥
तीर्थंकर का है विरहपड़ हमें दिव्य संदेश न मिल पाया।
वह विरह भुलाकर तीर्थंकर के तुल्य है अमृत पिला दिया ॥३॥
श्री समयसार श्री प्रवचनसार है नियमसार परमागम हैं।
पंचास्तिकाय श्री अष्टपाहुड़ का मर्म हृदय में सजा दिया ॥४॥
चेतन जड़ सभी भिन्न-भिन्न हैं अपने ही चतुष्टय।
ध्रुव स्थाई अविनाशी हैं क्रम वद्ध पर्याय वदलते हैं ॥५॥
निज शक्ति वही है उपादान जो कर्मरूप में परणति हों।
हे सभी निमित्तों उदासीन पर योग रूप में बने रहें ॥६॥
कोई न किसी को करै धरै स्वयमेव परणमन होता है।
वस्तु स्वतंत्र सत् मर्म धन्य ज्ञानी धर्मी ने समझाया ॥७॥
निज आतम तत्वतो अलिंगन ग्राह्य अनुपम ज्ञान तत्व ध्रुवशाश्वत।
रागादि जुद्दा पर ज्ञेय तत्वधन कहान गुरू ने समझाया ॥८॥

इतने वर्ष जिओ जितने हैं अम्बर में तारे !

शर्मन लाल 'सरस'

जाने क्या रहस्य है सचमुच, सद्गुरु की वाणी में।
स्वयं आत्मा खिच आती है, जिनकी अगवानी में,
श्रीमद्राय चन्द्र, वापू की यह धरती कहती है—
चमत्कार होता आया है गुजराती पानी में ॥

जहां जहाँ गये, आपने ऐसा जादू डाला।
जड़ तक को जिसने चेतन के, चिर रंग में रंग डाला,
देख सोनगढ़ महावीर मन्दिर को दर्शक कहता—
मन्दिर की दीवारों को भी, समयसार कर डाला ॥

युग युग पाते रहें पार पाने को, वचन तुम्हारे।
यत्र तत्र सर्वत्र सभी मन से कर रहे इशारे—
'सरस' ८७ वर्ष आपके, सचमुच में थोड़े हैं।
इतने वर्ष जिओ जितने हैं, अम्बर में तारे ॥

अध्यात्म उपदेष्टा
पूज्य श्री कानजी स्वामी

☐ शान्ति कुमार जैन, मौ (भिण्ड)

भारत वर्ष में अध्यात्म की धारा अविछिन्न रूप से सदा से प्रवाहित होती रही है। इस अध्यात्म धारा को प्रवाहित बनाये रखने के लिए समय-समय पर महा-मनीषियों का सद्भाव भी रहा है। विक्रम की पहिली शताब्दि में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने सीमंधर स्वामी से अध्यात्म का अमर संदेश प्राप्त कर अध्यात्म ग्रन्थों की रचना कर और अमृताचन्द्राचार्य ने टीकायें बनाकर आत्म विस्मृत प्राणियों पर महान् उपकार किया है। इन्हीं अध्यात्म ग्रन्थों से प्रेरित बहुत सा अध्यात्म साहित्य प्राकृत संस्कृत और हिन्दी आदि भाषाओं एवं उपभाषाओं में आज तक उपलब्ध है। पिछली कुछ शताब्दियों में ये बनारसीदास जी, दीपचन्द जी शाह, जयचन्द्र जी, दौलतराम जी पण्डित प्रवर टोडरमल जी, श्रीमद् रायचन्द जी आदि के द्वारा अध्यात्मिक ग्रन्थों के आधार पर तत्कालीन-सरल, सुगम्य, भाषा में साहित्य-सृजित होकर अध्यात्म धारा आज तक प्रवाहित रही है।

गुजरात प्रान्त में सोनगढ़ के सुप्रसिद्ध अध्यात्म योगी श्री कानजी स्वामी के अध्यात्म जगत में महत उपकारों को भुलाया नहीं जा सकता। जिन्होंने अपनी अद्वितीय प्रतिभा से इस भौतकीय युग की अंधकार मय जगती पर विलुप्त प्राय: अध्यात्म धारा को पुन: प्रवाहित बनायें रखने का अदम्य कार्य किया है।

पूज्य श्री कानजी स्वामी ने सत्यार्थ वस्तु स्वरूप बताकर जीवों को सन्मार्ग प्रदर्शित किया है। वर्तमान युग के न्याय, व्याकरण, सिद्धान्तादि विषयों के किंचित ज्ञान से मदोन्मत-विद्वान् भी स्वामी जी द्वारा वस्तु स्वरूप का यर्थाथ निरूपण-सुनकर दाँतों तले उंगुली दबा कर अपने सात मद चूर २ होता पाते हैं। वास्तव में बिना-भेद विज्ञान के ग्यारह अङ्गों और नौ पूर्वों तक का ज्ञान भी कल्याणकारी नहीं है। जिस प्रकार सर्वज्ञ भगवन्तों की वाणी का भावलिंगी सन्तों ने अभाव नहीं खटकने दिया उसी प्रकार पूज्य श्री कानजी स्वामी ने अपने परम अमृतमयी अध्यात्म प्रवचनों से कुंदाकुंदादि आचार्यों के वियोग को अखरने दिया है। आपने आबाल-वृद्ध के हृदय

पटल पर अध्यात्म बीज बदल कर अध्यात्म रस सिंचित किया है। आपके द्वारा दिगम्बर धर्म के मूल तत्वों का उसी प्रकार सम्यक् प्ररखण हो रहा है जैसा कि सर्वज्ञ परमात्मा के ज्ञान में झलका है।

पूज्य श्री कानजी स्वामी आत्मानुभावी मेधावी जन हैं। आपने जैन शासन की जो प्रभावना की है वह भूतकालीन १००० वर्षों में भी नहीं हुई है। आत्म-विज्ञान रस के पिप सुजनों की प्यास ज्ञानरूपी अमृत से आपके द्वारा सहज ही में शान्त हो रही है। आपकें प्रवचनों को सुनकर मुमुक्षु भी आत्म रस में विभोर होकर मोक्षपुरी की सैर करने का अनुभव करने लगते हैं। आगम का वास्तविक अभिप्राय क्या है? इसे पूज्य श्री ने ही समझा व समझाया है। आगम के अन्तररहस्य को इस समय के व्रती महाव्रती तथा अन्य विद्वान स्पष्ट नहीं कर पाये हैं, उसका रहस्य श्री कानजी स्वामी ने चारों अनुयोगों के शास्त्रों का निचोड़ एक मात्र वीतरागता प्राप्त करना वताया है, और वीतरागता दो द्रव्यों के भेदज्ञान अथवा आत्म द्रव्य को जाने विना प्राप्त नहीं हो सकती पूज्य गुरुदेव मुक्ति पथ में स्वयं प्रमाण कर रहे हैं और जगत के अन्य भव्य जीवों को भी आत्म शुद्धि रूप मंगलमय परम मुक्ति मार्ग प्रदर्शित कर रहे हैं।

जगत के सर्व द्रव्य उनके अनन्त गुण, उनकी पर्यायें प्रति समय की परिणति स्वतंत्र या निरपेक्ष है। उनके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भी पूर्ण निरपेक्ष है। इससे वस्तु के यथार्थ स्वरूप का दिग्दर्शन जगत के जीवों को कराकर वस्तु स्वातन्त्र्य की उद्घोषणा कर रहे हैं। पर द्रव्य और परभाव में एकत्व बुद्धि संसार परिभ्रमण कर कारण और स्वद्रव्य, स्वभाव का आश्रय मुक्ति कारण वताकर आप सदा निज शुद्ध चैतन्य में रमण करते हैं। आपके अध्यात्म उपदेश द्वारा भगवान महावीर के परम-जीवों को आत्म हितकारी मार्ग प्रशस्त हो रहा है।

वर्तमान काल में साक्षात् तीर्थंकर या केवली श्रुत केवली भगवन्तों, निर्विवाद भावलिंगीं सन्तों का सद्भाव नहीं है तथा धर्मात्मा जीवों का ही समागम अत्यन्त दुर्लभ है क्योंकि सम्यक्त्वधारी जीव इस क्षेत्र में पैदा नहीं होते हैं वल्कि आत्म विधारक या मिथ्या दृष्टि ही इस क्षेत्र में उत्पन्न होते हैं और मिथ्यात्व की वाहुल्यता से मिथ्यात्व के उपदेष्टाओं का सहज संयोग होने से मिथ्यात्व की ही पुष्टि हो रही है। अतः मिथ्या मान्यता के परित्यागी, सन्मार्गी वहुत अल्प दिखाई देते हैं। वल्कि सन्मार्ग के निषेधको की ही वाहुलयता है। अनादि से मिथ्यात्व दशा को छोड़ने और सम्यक्त्त प्राप्ति का पुरुपार्थ अति दुर्लभ हो रहा हैं। ऐसे कठिन काल में पूज्य श्री कानजी स्वामी ने यथार्थ मोक्षमार्ग का दृढ़ता के साथ आगम युक्ति, अनुमान एवं अनुभव से स्पष्ट सरल सुगम्य भाषा में निरूपण कर मुमुक्षुओं पर अति उपकार किया है। आपका एक

एक शब्द आत्मानुभव के रस में भिगा हुआ झरता हुआ सा प्रतीत होता है। देव, शास्त्र, गुरु का यर्थाथ स्वरूप की श्रद्धा और उनके प्रति अपार अनन्य भक्ति आपकी आत्म पवित्रता का द्योतक है। अरहन्त स्वरूप में निज आत्मा की महिमा बतलाते समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानों उनकी आत्मा अरहन्त बनने में संलग्न है। आपकी वाणी के वाक्य "तू श्रद्धा में अरहन्त बन" अरहन्त जो कर सकते हैं वह तू भी कर सकता है अर्थात् अर्रहन्त भी ज्ञाता दृष्टा ही है और तू भी ज्ञाता दृष्टा ही रहकर अरहन्त बनने का पुरुषार्थ कर।

पूज्य श्री गुरुदेव ने अपने चारों ओर विपरीत वातावरण की कभी परवाह न नहीं की और सत्य की खोज कर अपने जीवन में उतारा तथा अन्यों को भी जीवन में उतारने की प्रेरणा दी। श्री स्वामी जी ने जैन सिद्धान्त तथा आगम का गहन अध्ययन किया है और जीवन का सबसे बड़ा भाग अध्ययन मनन चिन्तन में ही व्यतीत किया है। ऐसे महान् आध्यात्मिक क्रान्तिकारी की प्रेरणा से जैन समाज की प्रचलित विचार धाराओं में आमूल परिवर्तन हुआ है। यह परिवर्तन बहुत से कुलागत जैनों को वास्त-विक जैन बनाए रखने में सफल हुआ है तथा जैनेत्तरों को भी जैन सैद्धान्तिक परम्प, राओं से परिचित कराने में महान् योग रहा है।

जैन दर्शन के स्वतन्त्र उद्घोपक पूज्य श्री कानजी स्वामी बार-बार कहते हैं कि धर्म धारण के पूर्व सच्ची श्रद्धा होनी चाहिये। यही सम्यक् दर्शन का सम्यक् उपाय है और सम्यक् दर्शन से ही सर्वज्ञ की सच्ची पहचान हो सकती है। इस तरह सर्वज्ञ की श्रद्धा और सम्यक् दर्शन एक दूसरे के सहभागी हैं। इसीलिए "दंसण मूलों धम्मो" या धर्म का मूल सर्वज्ञ एक ही बात है। इस प्रकार पूज्य गुरुदेव बार-बार प्रवचन सार की ८०-८२ वीं गाथा दुहराते हुए कहते हैं कि जिसने द्रव्य-गुण-पर्याय से अरहन्त को पहिचाना है उसने अपनी आत्मा को भी अवश्य पहिचाना है और उसका मोह (दर्शन मोह) या मिथ्यात्व क्षय लेकर सम्यक् दर्शन की उपलब्धि हुई है। इसके पश्चात् आत्मोन्मुखी वृत्ति से शुद्धोपयोग की वृद्धि से राग द्वेप का क्षय होकर या चारित्र मोह का क्षय होकर अरहन्त दशा प्रकट करने का पुरुपार्थ चालू होने से अपने में सर्वज्ञता प्राप्त कर ली है।

जगता के सर्व पदार्थो को व उनकी त्रिकाली पर्यायों सहित सर्वज्ञ एक साथ जानते हैं और वैसा ही पदार्थो में परिणमन होने का स्वरूप हैं। इसमें कुछ फेर फार या परिवर्तन कर अपने अनुकूल करने की जिसकी वृद्धि है उसके सर्वज्ञ की सर्वज्ञता और वस्तु स्वरूप के निर्णय का पुरुपार्थ ही नहीं। सर्वज्ञ की श्रद्धा और वस्तु स्वरूप के निर्णय में आपकी आत्मा का पुरुपार्थ है। ऐसे पुरुपार्थ के बिना सर्वज्ञ का या क्रम बद्ध पर्याय का सच्चा निर्णय कभी नहीं हो सकता। अतः सर्वज्ञ की श्रद्धा में ही

क्रमबद्ध पर्याय का निर्णय है और इसे ही मोक्षमार्ग का सच्चा उपाय कहते है। इस विषय पर पूज्य गुरुदेव ने नवीन खोज करके पर्याय की क्रम बद्धता बताकर सर्वज्ञ की सर्वज्ञता की सिद्धि की है। आप कहते हैं कि इकाई तूने सर्वज्ञ का निर्णय किया है। क्या इस जगत में सर्वज्ञ है—जिसको भव नहीं राग द्वेष नहीं ऐसे सर्वज्ञ के निर्णय करने में रागादि से भिन्न त्रिकाली शुद्ध परमात्म तत्व या ज्ञान स्वभाव के निर्णय का पुरुषार्थ होता है। इसलिए सर्वज्ञ का निर्णय कर जिसमें क्रम बद्ध पर्याय का निर्णय होते होते तुझे अपने पुरुषार्थ का सहज भान हो जायेगा।

वस्तु का परिणमन उसकी योग्यता के सामर्थ्य से होते समय साक्षी पूर्वक निमित्त की उपस्थिति निश्चित रूप से होते हुए भी उसके परिणमन में निमित्त का अकिंचित्पना है। उपादान और निमित्त दोनों का परिणमन अपने २ में पूर्ण रूप से स्वतंत्र है। उस पूज्य श्री ने अनेक दृष्टान्त युक्ति और शास्त्रीय प्रमाणों से अच्छी प्रकार से समझाया है। जब यह जीव निमित्ताधीन, पराश्रित बुद्धि का परिणाम छोड़ कर अपने स्वाधीन स्वाभाव के सम्मुख परिणमन करता है तब ही उसे मुक्ति का मार्ग प्राप्त होता है। निमित नैमितक सम्बन्ध है पर कर्त्ता कर्म सम्बन्धकारी है। निमित कर्त्ता और नैमित्तक उसका कार्य यह कदापि सिद्ध नहीं होता, क्योंकि एक द्रव्य दो क्रियायें नहीं करता और दो द्रव्य मिल कर एक क्रिया नहीं करते यदि ये हो जायें तो प्रत्येक द्रव्य की स्वतंत्रता नष्ट होकर द्रव्य का भी नाश हो जायेगा। यद्यपि जब नैमित्तक दशा होती है तो उसी समय निमित्त भी मौजूद है। किन्तु वह उस रूप न तो परिणमित हुआ और न परिणमित्त कराने में सहयोगी ही हुआ है। दोनों का सम-काल होने से पराश्रित बुद्धि जीव ऐसा मान लेता है कि इसके कारण ऐसा हुआ जगत के सभी पदार्थों में प्रति समय नैमित्तिक पर्यायें हो रही हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि निमित्त के बिना ही सबका परिणमन हो रहा है। ऐसा एक भी समय नहीं जब कि जगत के पदार्थों में नैमित्तिक दशा या पर्यायें न होती हैं। नैमित्तिक दशा के समय निमित्त न हो ऐसा नहीं होता। अतः नैमित्तिक कार्य होता है तो निमित्त की योग्यता वाले पदार्थ होते ही हैं। नैमित्तिक से ही निमित्त की सिद्धी होती है। बिना नैमित्तिक के निमित्त का ज्ञान नहीं होता। जब निमित्त है तब उसी समय नैमित्तिक कार्य का भी अस्तित्व है। यदि नैमित्तिक है तो पर वस्तु को उसका निमित्त भी कहा जाता है। नैमित्तिक कार्य के बिना पर वस्तु को निमित्त भी नहीं कहा जाता है। क्योंकि नैमित्तिक के बिना निमित्त किसका ? इससे सिद्ध है कि निमित्त तब ही कहलाता है जब नैमित्तिक कार्य होता है। निमित्त को प्रकट करने वाला नैमित्तिक कार्य भी विद्यमानता है। जहाँ ऐसा कहा जाता है कि निमित्त के बिना कार्य नहीं होता वहाँ ऐसा कथन ऐसे अज्ञानी (निश्चयाभापी) को उचित निमित्त का ज्ञान कराने के

लिए है जो छह द्रव्यों को नहीं मानकर आत्मा के सिवा पर वस्तु का अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करता है उसे ऐसा कह कर निमित्त का अस्तित्व भी दिखलाया जाता है। किन्तु जगत के छह द्रव्यों को स्वीकार करने वाले निमित्त नैमित्तिक दोनों की स्वतंत्रता स्वीकार करते हैं उन्हें वस्तु स्वतंत्रता का उपदेश दिया गया है।

निश्चय-व्यवहार के बारे में भी आपकी विवेचन शैली अनूठी है। निश्चय-व्यवहार का स्वरूप आप जिस ढंग से समझाते हैं उसे समझ कर सारे जैन सिद्धांत का रहस्य स्वमेव ही समझ में आ जाता है। व्यवहार करते-करते उसके अवलम्बन से निश्चय हो जायेगा ऐसी मान्यता को जैन सिद्धान्त में व्यवहार मूढ़ कहा है। आप कहते हैं कि निश्चय स्वभाव के आश्रय से ही मुक्ति मार्ग है। व्यवहार के शुभराग के आश्रय से कदापि मुक्ति नहीं हो सकती है और ऐसा भी नहीं है कि मुक्ति में पहिले व्यवहार और पीछे निश्चय अपितु बिना निश्चय के सच्चा व्यवहार हो ही नहीं सकता। निश्चय-व्यवहार के इस महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को जितनी स्पष्टता से आपने समझाया है उतना आज तक कोई नहीं समझा पाया है। आप बार-बार कहते हैं कि निश्चय-व्यवहार को समझना जैन धर्म की मुख्य चीज है। इसमें जिसकी भूल रही वही वह जैन धर्म के मर्म को कभी नहीं समझ सकता है। निश्चय के आश्रय के बिना कभी धर्म की शुरुआत ही नहीं हो सकती है।

विज्ञान के इस युग में जहाँ कि प्रत्येक बात की सिद्धि तर्क और अनुभव के आधार पर की जाने लगी है ऐसे। समय में पूज्य श्री कानजी स्वामी ने जो चमत्कार दिखाया है वह महान चमत्कार है क्योंकि किसी भौतिक पदार्थ का नहीं अपितु अपनी आत्मानुभूति का है। स्वानुभूति के इस पवित्र आदर्श से प्रेरित्त होकर अनेक आत्मायें सम्यक् पथ प्रदर्शन से अपने जीवन को धन्य मान रही हैं। आपकी लोकोपकार कारणी अपूर्व वृत्ति से स्वाभाविक (सहज) दर्शन ज्ञान परिलक्षित होता है।

सर्वज्ञ भावन्तों, भाव लिङ्गी सन्तों की वाणी के रसास्वदन से भौतिक पदार्थों की रुचि का स्वयं ही अभाव आपके जीवन में दिखाई देता है। भव्योपकारी रचनात्मक कार्यों में आपके समय का सदुपयोग होता है जिसके प्रतिकूल (परिणाम) है कि लाखों पुस्तकों एवं ग्रन्थों का सरल सुगम्य भाषाओं में प्रकाशन होकर नाममात्र मूल्य में उपलब्धि, परमावश्यक स्थानों पर जहाँ-जहाँ अधिक उपयोगिता और जैन दर्शन के के प्रचार की महत्ता प्रतीत हुई है वहाँ-वहाँ पंच कल्याणक, वेदी प्रतिष्ठायें शिक्षण प्रशिक्षण वर्गों का आयोजन (आज के युग की अपूर्व देन) आश्रय एवं सिद्धान्त के प्रतिपादनानुसार सम्पन्न हो रहे हैं। अनेक जिन भवनों (जिसमें सोनगढ़ का श्री परमागम मंदिर भी विश्व की एक अद्वितीय कृति है) का निर्माण हुआ है। हजारों

नवीन जैनेतर बन्धुओं ने समीचीन (दिगम्बर) धर्म की दीक्षा ग्रहण की है। अनेकों भाई बहिनों ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर आत्महित का मार्ग प्रशस्त किया है। प्रशंसा या निन्दा से सदैव दूर रह कर आप आत्मा धर्म या वीतराग धर्म के प्रचार एवं प्रसार में अपनी शारीरिक अवस्था का भी ध्यान न रख कर सतत रह सकते हैं।

अस्तु वस्तु स्वरूप के सम्यक् ज्ञाता चैतन्यानुभवी, निज शुद्धात्म के उपासक अध्यात्मक परम्परा को प्रवाहित रखने वाले इस युग के महान आध्यात्मिक संत पूज्य कानजी स्वामी जी की शास्त्र अविरुद्ध अनेकान्त स्याद्वाद अनुरंचित वाणी और पवित्र व्यक्तित्व से अध्यात्म प्रेमी अधिकाधिक सम्बन्धित होकर जीवन सफल करें यही मेरी कामना है। □
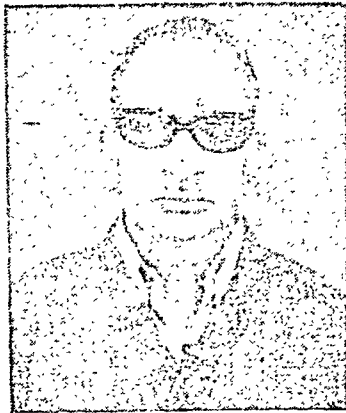
महान् उपकारी सन्त

—रविचन्द्र जैन, दिल्ली

पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी इस युग की महान् विभूति हैं। वे एक ऐसे महापुरुष हैं जिनके रोम रोम में अध्यात्म बसा है।

मुझे कई बार दिल्ली में व सोनगढ़ में स्वामी जी को सुनने का योग हुआ है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि गुरुदेव प्रति समाज वे जो भ्रंतियाँ फैलाई हुई है वे निर्मूल हैं, मिथ्या हैं। स्वामी जी के खान पान के विषय में भी कई गलत धारणायें हैं। लेकिन वे सब निराधार हैं। स्वामी जी का आहार अत्यन्त शुद्ध व सूक्ष्म होता है। स्वयं मेरे घर पर स्वामी जी ने एक बार आहार किया है।

स्वामी जी ने दिगम्बर जैन धर्म का बहुत उपकार किया है। आपने दिगम्बर धर्म अंगीकार किया व लाखों बन्धु स्वधर्मी बने, यह इस युग की सबसे क्रान्तिकारी घटना है।

मैं स्वामी जी प्रति लक्ष-लक्ष विनयांजलि अर्पित करता हूँ।

समयसार के विमोचक

—परमात्म प्रकाश भारिल्ल,
जयपुर (राज०)

महान् आचार्य कुंदकुंद, जिन्हें दि० जैन परम्परा में भगवान् महावीर और उनके गणधर गौतम के बाद तीसरा स्थान प्राप्त है ने तो समयसार जैसे परम अध्यात्म ग्रन्थ रचना करके भव्य जीवों का परम उपकार किया ही है परन्तु वर्तमान समय में जबकि इस महान् ग्रन्थराज को केवल साधुओं के अध्ययन की ही वस्तु मान लिया गया था जन साधारण के लिये समयसार का विमोचन करने वाले आध्यात्मिक संत पूज्य श्री कानजी स्वामी का भी भव्य जीवों पर कम उपकार नहीं है।

पूज्य स्वामी जी ने समयसार के ऊपर ही अपना जीवन समर्पित कर दिया। वे समयसार में ऐसे रम गये कि उन्होंने अपना त्रिकाली नाम समयसार (शुद्धात्मा) पा लिया। आज समयसार का नाम लेते ही सब लोगों के नेत्र पटल पर उस महान् संत का एक रेखाचित्र अंकित हो जाता है।

पूज्य स्वामी जी ने अपनी स्वसम्पत्ति को भूलकर भटकने वाले प्राणियों को आत्म वैभव का ज्ञान कराकर उन्हें वैभवशाली बना दिया है।

आज के समय में जब लोगों की समय सारिणी (Time-Table) में समयसार के लिये कोई स्थान नहीं है वहीं इस महापुरुष की समय-सारिणी (Time-Table) समयसार (शुद्धात्मा) के ऊपर ही समर्पित है।

उन्होंने मनुष्य भव का सार समय पाकर समयसार का चिंतवन करके अपना समय-सार शब्द (सार्थक) कर लिया है।

महान् समयसार का अवलम्बन लेने वाले इस जीवंत समयसार को मेरा कोटिशः प्रणाम।

चैतन्य की मस्ती में झूमते हुये कई बार गुरुदेव के श्री मुख से निकलता है—

ज्याँ चेतन त्याँ आतमा, केवली बोले ऐम
प्रगट अनुभव आतमा, निर्मल को सप्रेम
चैतन्य प्रभु ! प्रभुता तुम्हारी चैतन्य धाम माँ
जिनवर प्रभु ! पधारया समोसरण धाम माँ

सौराष्ट्र का सन्त

☐ अखिल बंसल

भरा पूरा बदन, गौर वर्ण उच्च ललाट तथा ओजस्वी मुख मुद्रा वाले पूज्य श्री कहानजी स्वामी को सर्वप्रथम देखने का सौभाग्य मुझे जयपुर में वीतराग विज्ञान प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर हुआ। उनके प्रवचनों को सुनकर मैं काफी प्रभावित हुआ। मैं आज दृढ़ता पूर्वक कह सकता हूं कि पूज्य गुरुदेव के आध्यात्मिक प्रवचनों ने मुझे नई दिशा दी है।

जैन धर्म के महान् प्रभावक आध्यात्मिक संत पूज्य श्री कहानजी स्वामी का जन्म सौराष्ट्र प्रान्त के उमराला नामक ग्राम में सम्वत् १९४६ वैशाख शुक्ला दूज के दिन हुआ था। बचपन से ही स्वामी जी की रुचि अध्यात्म की ओर थी। २४ वर्ष के कुमार काल में आपने स्थानकवासी सम्प्रदाय में जिन दीक्षा ले ली। कुशाग्र बुद्धि होने के कारण आपने शीघ्र ही श्वेताम्बर धर्म ग्रन्थों का गूढ़ अध्ययन कर समाज में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। आपकी वक्ताशैली काफी प्रभावशील रही है, आपके प्रवचनों को जो सुन लेता है वही मन्त्रमुग्ध हो जाता है।

सम्वत् १९७८ की बात है आपको दिगम्बर जैन आचार्य पूज्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी का समयसार नामक अपूर्व ग्रन्थ पढ़ने को मिला। इस समयसार ने कहानजी स्वामी के अन्तःस्थल को झकझोर दिया, जिसकी उन्हें खोज थी वह स्वयमेव ही उन्हें प्राप्त हो गया। आपने समयसार का गहरा अध्ययन और मनन किया, आपके विचारों ने पलटा खाया और सोनगढ़ जाकर सं० १९९१ में चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन स्थानकवासी सम्प्रदाय का त्यागकर दिगम्बर जैन धर्म की मान्यता स्वीकार कर ली। तब से आप निरन्तर आत्म साधना के अनुसंधान में लगे हुए हैं। सोनगढ़ की तो कहें क्या वहाँ तो स्वर्णपुरी जैसा आनन्द आता है। पूज्य स्वामी जी के कारण आज सोनगढ़ तीर्थधाम बना हुआ है।

धर्म प्रभावना :—पूज्य गुरुदेव के इस परिवर्तन से सौराष्ट्र प्रान्त में क्रन्दन सा मच गया। अपने चारों ओर विरोधपूर्ण वातावरण की परवाह न करते हुए वे अपने विचारों पर सुमेरू के समान अडिग रहे। ठीक ही है "जिसका जितना अधिक विरोध होता है उसका उतना ही अधिक प्रचार होता है।"

आज सौराष्ट्र में ही क्या सम्पूर्ण भारत में दिगम्बर जैन धर्म की प्रभावना पूज्य गुरुदेव के द्वारा हो रही है। जिस सौराष्ट्र प्रान्त में दिगम्बर सम्प्रदाय के इक्के-दुक्के ही मिलते थे आज वहाँ हजारों की संख्या में दिगम्बर जैन हैं। यह सब पूज्य गुरुदेव की कृपा एवं उनकी प्रभावना का फल ही मानना होगा। सोनगढ़ द्वारा प्रकाशित साहित्य के पठन-पाठन से जैन-जैनेतर सभी लाभ ले रहे हैं। पूज्य स्वामी जी ने तत्व के मर्म को वारीकी से समझ कर उसे अपने जीवन में उतारा है, अध्यात्म प्रेमी लोग तो आपके सत्संग को पाकर अपने को धन्य समझता है और अध्यात्म चर्चा का रसिक वन जाता है। कानजी स्वामी जो कुछ कहते हैं उसमें एक निष्पक्ष एवं पवित्र भावना होती है जो श्रोता को प्रभावित किए विना नहीं रहती। उनके प्रवचनों का लाभ लेने हजारों की संख्या में प्रतिवर्ष लोग सोनगढ़ जाते हैं और वहाँ अतीव आनन्द को प्राप्त कर, तथा आत्मा का सच्चा स्वरूप समझकर अपना जीवन सफल वनाते हैं। धन्य हैं वह सौराष्ट्र के संत जो प्रकाश स्तम्भ वनकर सम्पूर्ण जैन जगत का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं।

कोटा प्रशिक्षण शिविर १९७५ में दिए गए प्रवचन का एक अंश :—

"पाप-पुण्य की वृत्ति भी दुःख रूप ही है। दया, दान, पूजा, भक्ति के भाव शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि से दुःख के कारण हैं। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का भंडार है। आत्मा और पुण्य-पाप के भाव एक साथ रहते हैं जो दोनों के वीच एक संधि है। प्रज्ञा (ज्ञान) रूपी छिजा के द्वारा इस संधि को तोड़ा जा सकता है, इस संधि के टूटने पर ज्ञान रूप आत्मा व पुण्य-पाप भाव स्पष्टतः भिन्न-भिन्न प्रतिभासित होने लगते हैं इसे ही सम्यग्दर्शन, आत्मानुभूति भेद विज्ञान कहा जाता है। धर्मी को दया, दान, पूजा, एवं भक्ति के पुण्य भाव आते हैं वे जानने लायक हैं। आश्रय करने लायक एक मात्र ज्ञान रूपी आत्मा है। अभिप्राय में राग के छूटे विना सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन होने पर कर्म वन्ध रुक जाता है। ज्ञान से पुण्य पाप की निवृत्ति होती है, प्रवृत्ति नहीं। जिसका ज्ञान राग में प्रवर्तें वह ज्ञानी नहीं है, ज्ञानी को राग आता है पर वह उसका स्वामी नही होता; मात्र उसका जानने वाला होता है।"

हे भाई, तू आत्मा है, तेरा लक्षण ज्ञातापन है। तू सदा अरूपी (अमूर्त्त) है। और यह शरीर जड़ है, रूपी (मूर्त्त) है। तेरे से भिन्न ही है। आत्मा अपनी अवस्था में कार्य कर सकता है पर शरीरादि पर पदार्थों की अवस्था में कुछ भी कार्य नहीं कर सकता। ऐसा समझ कर यदि जीव अपने स्वभाव में रहे तो विकारी कार्य टल सके और सुख-शांति रूप शुभ हो सके।

विशिष्ट लेख

मुक्ति पथ

ब्र० कुमारी 'कौशल' जी

छोटे-छोटे बच्चों को साँप और सीढ़ी का खेल खेलते देखा होगा, या आपने भी साँप सीढ़ी खेली होगी। हर स्थान पर साँप भी है और सीढ़ी भी है। प्रथम स्थान पर ही लम्बी सीढ़ी है उससे मुक्ति को पहुंचा जा सकता है अर्थात् वहीं मुक्ति हैं। और लम्बी यात्रा करके कठिन परिश्रम के पश्चात मुक्ति के निकट पहुंचकर भी साँप का भय है, वहाँ से ठीक नीचे आ सकता है जहाँ से चला था। जीवन भी ऐसे ही साँप सीढ़ी का खेल है। जहाँ खड़े हो, वहीं से जानो—सम्मोहन को तोड़ो, हृदय की आँखों से देखो तो पाओगे मुक्ति के कहीं रास्ते नहीं—मुक्ति अभी है और यहीं है। अथवा बहुत चल कर भी थककर भी अज्ञानी साधक पा सकता है कि वह अभी वहीं खड़ा हैं, जहाँ से चला था। नींद में पानी पीने से प्यास बुझ नहीं सकती अपितु स्वप्न के कारण निद्रा काल दीर्घ हो सकता है। सोने में थोड़ी सुविधा हो सकती है।

मुझे स्मरण आता है महात्मा बुद्ध के जीवन का एक वृत। रवीन्द्रनाथ ने यशोधरा से एक गहरा मज़ाक कराया है। महात्मा बुद्ध जब बोधि प्राप्ति के पश्चात अपने गाँव को लौटे तो यशोधरा से मिले। तब यशोधरा ने व्यंग्य पूर्वक एक प्रश्न पूछा—"आपने घर छोड़कर जो पाया क्या वह घर में नहीं था।" बुद्ध निरुत्तर हो गए। उत्तर क्या दें बड़ी मुश्किल में पड़ गये। अगर कहें कि वह घर में था, तो फिर घर छोड़ना मूर्खता थी। अगर कहें कि वह घर में नहीं था तो वह असत्य होगा। क्योंकि वह घर में भी मौजूद हैं। उसको जाना भर। जैसे न्यूटन ने पृथ्वी की आकर्षण शक्ति को जाना मात्र जो, कि पहले से मौजूद थी। सत्य सदा सत्य होता है। जो आता है और जाता है वह असत्य है। सत्य को इसीलिए बनाया नहीं जाता मात्र जाना जाता है। जिसको बनाया जा सकता है उसको मिटाया भी जा सकता है अतः वह असत्य होगा। असत्य परिवर्तनशील है और सत्य अपरिवर्तनीय, वासनाओं, क्रोध, राग, द्वेष, शुभ अशुभ चेतना रूपी आकाश पर आते हैं, गरजते हैं और बरसते हैं और विदा हो जाते हैं, किन्तु आकाश अरिवर्तित रहा है। अतः जिस पर परिवर्तन

के नियम लागू होते हैं, वह मात्र संसार है। जिस पर ये परिवर्तन आकर नृत्य करते हैं वह सत्य है व परिवर्तन से मुक्त है।

उक्त सत्य को कहा कैसे जाये ? क्योंकि चेतना का सत्य भावात्मक है। उसको अनुभव किया जा सकता है शब्दों में व्यक्त नही जैसे मैं कहूं "आज सांझ वड़ी प्यारी है, ठण्डी हवा है, आकाश में इन्द्र धनुष है आदि" तो इन शब्दों से आपको ठण्डी हवाओं का आनन्द न मिलेगा और चित्रों के आकाश असीम भी नहीं हो सकते किन्तु मेरे हाव-भाव से अगर प्रभावित होकर आप सांझ में प्रवेश पाएँ तो आनन्द विभोर हो जायेंगे अतः जैन दर्शन में एक विशेष शब्द है 'श्रुत'। उसका वड़ा महत्त्व है। श्रुत का अर्थ है सुना हुआ। अर्थात् जो गुरु के चरणों में वैठकर सुना गया हो जो कहा नहीं जा सकता उसको, अकथ को। शब्दों में कुछ और कहा जाता है तथा सुना कुछ और जाता है। जैसे आप कभी वच्चे को वाजार जाने के समय जव उसको साथ ले जाना नही चाहते तव कहते हो ठहरो, वेटा, मैं अभी आया, तुम्हारे लिए चीज़ लेने जा रहा हूं। तव वच्चा आपके चेहरे को देखता है और कहता है कि आप झूठ वहका रहे हो।" एक नन्हा वालक भी शब्द नहीं सुनता वह भी उसे सुनता है जो कहा नही गया। आपका अभिप्रायः नित्य ही ऐसी घटनायें जीवन में घट रही हैं। अकथ को सुनो।

स्वामीजी जी कहते हैं अगर कोई श्रोता तन्मयता से सुनता है तो उसमें वह उसे सुनता है जो अकथ है, सत्य है, अमृत है, परिवर्तनीय है। परिवर्तन के साथ एकत्व के सम्मोहन की निद्रा उसकी टूट जायेगी और पायेगा कि वह परिवर्तन से वाहर है। जन्म मृत्यु से अतीत सत्य तत्त्व है।

आत्मा में मन किस प्रकार प्रवेश करे ?

एक भाई ने पूछा—आत्मा की वात सुनते समय तो अच्छी लगती है परन्तु उसके विचार में मन रुकता नहीं, उसका क्या कारण ?

उत्तर में गुरुदेव ने कहा—कि जो वास्तव में रुचि हो तो मन क्यों नहीं लगे संसार के विचार में मन क्यों जाता है ? सुनते समय भी जो वास्तव में आत्म-स्वरूप को लक्ष्य रखकर उसका उत्साह आता है तो उपयोग उसमें लगे विना रहता नहीं। आत्मा को जानने की वास्तव में रुचि जागे उसका उसमें वारम्वार उपयोग लगता है। इसके विचार में मन सही लगता तो अपने परिणामों में कमजोरी है। उपयोग को जवरन वलपूर्वक पर से हटा कर स्वसत्ता में, चिन्तन में लगाने का वारम्वार उद्यम (पुरुषार्थ) करना चाहिये। वार वार अन्तर के उग्र अभ्यास द्वारा चैतन्य में उपयोग जरूर लगेगा।

वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर

☐ डा० हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त जितने गूढ, गम्भीर व ग्राह्य हैं; उनका वर्तमान जीवन (भव) उतना ही सादा, सरल एवं सपाट है; उसमें विविधताओं को कोई स्थान प्राप्त नहीं है। उनका वर्तमान जीवन घटना वहुल नहीं है। घटनाओं में उनके व्यक्तित्व को खोजना थी व्यर्थ है।

घटना समग्र जीवन के एक खण्ड पर प्रकाश डालती है। घटनाओं में जीवन को देखना उसे खण्डों में वाँटना है। भगवान महावीर का व्यक्तित्व अखण्ड है, अविभाज्य है, उसका विभाजन संभव नहीं है। उनके व्यक्तित्व को घटनाओं में वाँटना, उनके व्यक्तित्व को खंडित करना है। अखण्डित दर्पण में विम्व अखण्ड और विशाल प्रतिविम्वित होते हैं, किन्तु काँच के टूट जाने पर प्रतिविम्व भी अनेक और क्षुद्र हो जाते हैं। उनकी एकता और विशालता खण्डित हो जाती है। वे अपना वास्तविक अर्थ खो देते हैं।

भगवान महावीर के आकाशवत् विशाल सागर से गम्भीर व्यक्तित्व को वालक वर्द्धमान की वाल-सुलभ क्रीड़ाओं से जोड़ने पर उनकी गरिमा वढ़ती नहीं, वरन खण्डित होती है, सन्मति शव्द का कितना भी महान अर्थ क्यों न हो, वह केवल ज्ञान की विराटता को अपने में नहीं समेट सकता। केवल ज्ञानी के लिये सन्मति नाम छोटा ही पड़ेगा, ओछा ही रहेगा। वह केवल ज्ञानी की महानता व्यक्त करने में समर्थ नहीं हो सकता। जिनकी वाणी एवं दर्शन ने अनेकों की शंकाएँ समाप्त की हो, अनेकों को सन्मार्ग दिखाया हो, सत्पथ में लगाया हो, उनकी महानता को किसी एक की शंका को समाप्त करने वाली घटना कुछ विशेष व्यक्त नहीं कर सकती।

वढ़ते तो अपूर्ण हैं, जो पूर्णता को प्राप्त हो चुका हो; उसे वर्द्धमान कहना कहाँ तक सार्थक हो सकता है। इसी प्रकार महावीर की वीरता को साँप और हाथी वाली घटनाओं से नापना कहां तक संगत है, यह एक विचारने की वात है।

यद्यपि महावीर के जीवन संवंधी उक्त घटनाएँ शास्त्रों में वर्णित हैं तथापि वे वालक वर्द्धमान को वृद्धिगत वनाती हैं, भगवान महावीर को नहीं। साँप से न

डरना बालक वर्द्धमान के लिए गौरव की बात हो सकती है, हाथी को वश-करना राजकुमार वर्द्धमान के लिए प्रशंसनीय कार्य हो सकता है, भगवान महावीर के लिए नहीं। आचार्यों ने उन्हें यथास्थान ही इंगित किया है। वन विहारी पूर्ण अभय को प्राप्त महावीर एवं वीतरागी, सर्वस्वातंत्र के उद्घोषक तीर्थंकर भगवान महावीर के लिए साँप से न डरना, हाथी को काबू में रखना क्या महत्व रखते हैं।

जिस प्रकार बालक के जन्म के साथ इष्ट मित्र सम्बन्धी-जन वस्त्रादि लाते हैं और कभी-कभी तो सैंकड़ों जोड़ी वस्त्र बालक को इकट्ठे हो जाते हैं। लाते तो सभी बालक के अनुरूप ही हैं, पर वे सब कपड़े तो बालक को पहिनाए नहीं जा सकते। बालक दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है, वस्त्र तो बढ़ते नहीं। जब बालक २०-२५ वर्ष का हो जावे तब कोई माँ उन्हें वही वस्त्र पहिनाने की सोचे, जो जन्म के समय आये थे और जिनका प्रयोग नहीं कर पाया है, तो क्या वे वस्त्र २०-२५ वर्षीय युवक को आ पायेंगे ? नहीं आने पर वस्त्र लाने वालों को भला बुरा कहें तो यह उसकी ही मूर्खता मानी जायेगी, वस्त्र लाने वालों की नहीं। इसी प्रकार महावीर के वर्द्धमान वीर, अतिवीर आदि नाम उन्हें उस समय दिये गये थे, जब वे नित्य बढ़ रहे थे, सन्मति (मति-ज्ञानी) थे, राजकुमार थे। उन्हीं घटनाओं और नामों को लेकर हम तीर्थंकर भगवान महावीर को समझाना चाहें, समझना चाहें, तो यह हमारी बुद्धि की ही कमी होगी न कि लिखने वाले आचार्यों की। वे नाम, वे वीरता की चर्चाएँ यथा-समय सार्थक थीं।

तीर्थंकर महावीर के विराट व्यक्तित्व को समझने के लिए हमें उन्हें विरागी दृष्टिकोण से देखना होगा। वे धर्मक्षेत्र के वीर, अतिवीर और महावीर थे, युद्धक्षेत्र और धर्मक्षेत्र में बहुत बड़ा अन्तर है। युद्धक्षेत्र में शत्रु का नाश किया जाता है और धर्मक्षेत्र में शत्रुता का, युद्धक्षेत्र में पर को जीता जाता है और धर्मक्षेत्र में स्वयं को। युद्धक्षेत्र में पर को मारा जाता है और धर्मक्षेत्र में अपने विकारों को।

महावीर की वीरता में दौड़-धूप नहीं, उछलकूद नहीं, मारकाट नहीं, हाहाकार नहीं, अनन्त शान्ति है। उनके व्यक्तित्व में वैभव की नहीं, वीतराग-विज्ञान की विराटता है।

एक बात यह भी तो है कि दुर्घटनाएँ या तो पाप के उदय से घटती हैं या पाप भाव के कारण। जिसके जीवन में न पाप का उदय हो और और न पाप भाव ही, तो फिर दुर्घटनाएँ कैसे घटेंगीं, क्यों घटेंगीं ? अनिष्ट संयोग पाप के उदय के बिना संभव नहीं है तथा वैभव और लोगों में उलझाव पाप भाव के बिना असंभव है। भोग के भावरूप पाप-भाव सद्भाव में घटने वाली घटनाओं में शादी एक ऐसी दुर्घटना है, जिसके घट जाने पर दुर्घटनाओं का एक कभी न समाप्त होने वाला सिल-

सिला आरम्भ हो जाता हैं। सौभाग्य से महावीर के जीवन में यह दुर्घटना न घट सकी। एक कारण यह भी है कि उनका जीवन घटना प्रधान नहीं है।

लोग कहते हैं कि वचपन में किसके साथ क्या नहीं घटता, किसके घुटने नहीं टूटते, किसके दाँत नहीं टूटते? महावीर के साथ भी निश्चित रूप से यह सब कुछ घटा ही होगा? भले ही आचार्यों ने न लिखा हो पर भाई साहव दुर्घटनाएँ वचपन से नहीं, वचपनें से घटती हैं। महावीर के वचपन तो ग्राया था, पर वचपना उनमें नहीं था। ग्रत: घुटने फूटने ग्रौर दाँत टूटने का सवाल ही नहीं उठता। वे तो वचपन से ही सरल, शान्त एवं चिन्तनशील व्यक्तित्व के धनी थे। उपद्रव करना उनके स्वभाव में ही न था ग्रौर विना उपद्रव के दाँत टूटना, घुटने फूटना संभव नहीं।

कुछ का कहना यह भी है कि न सही वचपन में पर जवानी तो घटनाग्रों का ही काल है। जवानी में तो कुछ न कुछ घटा ही होगा। पर वन्धुवर! जवानी में दुर्घटनायें उनके साथ घटती हैं, जिन पर जवानी चढ़ती है, महावीर तो जवानी पर चढ़े थे, जवानी उन पर नहीं। जवानी चढ़ने का अर्थ है—यौवन संवंधी विकृतियाँ उत्पन्न होना ग्रौर जवानी पर चढ़ना का तात्पर्य शारीरिक सौष्ठव का पूर्णता को प्राप्त होना है।

राग संवन्धी विकृति भोगों में प्रगट होती है ग्रौर द्वेप सम्वन्धी विद्रोह में। न वे रागी थे, न द्वेपी। ग्रत: न वे भोगी थे ग्रौर न ही द्रोही।

महावीर ने विद्रोह नहीं, ग्रद्रोह किया था। विद्रोह, द्रोह का ही एक भेद है। द्रोह स्वयं एक विकार है। उन्होंने न स्वयं से द्रोह किया, न दूसरों से। उन्होंने द्रोह का ग्रभाव किया था, ग्रत: उन्हें ग्रद्रोही ही कहा जा सकता है विद्रोही नहीं। द्रोह, द्रोह को उत्पन्न करता है, द्रोह से ग्रद्रोह का जन्म नहीं हो सकता। उन्होंने किसी के प्रति विद्रोह करके घर नहीं छोड़ा था। उनका त्याग विद्रोह मूलक न था। उनके त्याग ग्रौर संयम के कारणों को दूसरों में खोजना महावीर के साथ ग्रन्याय है। वे 'न काहू से दोस्ती न काहू से वैर' के रास्ते पर चले थे।

वीतरागी-पथ पर चलने वाले विरागी महावीर को समझने के लिए उनके ग्रन्तर में झाँकना होगा। उनका वैराग्य देश-काल की परिस्थितियों से उत्पन्न नहीं हुग्रा था। उनके कारण उनके ग्रंतरंग में विद्यमान थे। उनका विराग परोपजीवी नहीं था। जो वैराग्य किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होता है, वह क्षण-जीवी होता है। परिस्थितियों के वदलते ही उसका समाप्त हो जाना संभव है।

यदि देश-काल की परिस्थितियाँ महावीर के अनुकूल होती तो क्या वे वैराग्य धारण न करते, गृहस्थी वसाते, राज्य करते? नहीं कदापि नहीं। और परिस्थितियाँ उनके प्रतिकूल थीं हीं कव? तीर्थंकर महान् पुण्यशाली महापुरुष होते हैं. ग्रत: परिस्थितियों का प्रतिकूल होना संभव नहीं था।

वैराग्य या विराग राग के अभाव का नाम है, विद्रोह का नाम नहीं। वे वैरागी राग के अभाव के कारण बने थे, न कि विद्रोह के कारण। महावीर वैरागी राजकुमार थे, न कि विद्रोही। महावीर जैसे अद्रोही महामानव में विद्रोह खोज लेना अभूतपूर्व खोज बुद्धि का परिणाम है। बालू में तेल निकाल लेने जैसा यत्न है। वन्ध्या के पुत्र के विवाह वर्णनवत् कल्पना की उड़ाने हैं जिनका न ओर है न छोर।

घर में जो कुछ घटता है, अपनी ओर से घटता है, पर वन में तो बाहर से बहुत कुछ घट जाने के प्रसंग रहते हैं क्योंकि घर में बाहर के आक्रमण से सुरक्षा का प्रबन्ध प्रायः रहता है। यदि कोई उत्पात हो, तो, अन्तर के विकारों के कारण ही होता देखा जाता है, पर वन में बाहर से सुरक्षा-प्रबन्ध का अभाव होने से घटनाएँ घटने की संभावना अधिक रहती हैं। माना कि महावीर का अन्तर विशुद्ध था। अतः घर में कुछ न घटा, पर वन में तो घटा ही होगा ?

हाँ ! हां ! अवश्य घटा था पर लोक जैसे घटने को घटना माना है, वैसा कुछ नहीं घटा था। राग-द्वेष घट गये थे, तब तो वे वन को गये ही थे। क्या राग-द्वेष का घटना कोई घटना नहीं है ? पर बहिर्मुखी दृष्टि वालों को राग द्वेष में कुछ घटना सा नहीं लगता। यदि तिजोड़ी में से लाख दो लाख रुपया घट जायें, शरीर में से कुछ खून घट जाये, आँख, नाक, कान घट जाये, कट जाये तो इसे बहुत बड़ी घटना लगती है, पर राग-द्वेष घट जाये तो इसे घटना ही नहीं लगता, वन में ही तो महावीर रागी से वीतरागी बने थे; अल्पज्ञानी से पूर्ण ज्ञानी बने थे। सर्वज्ञता और तीर्थंकरत्व वन में ही तो पाया था। क्या यह घटनायें छोटी हैं ? क्या कम है ? इससे बड़ी भी कोई घटना हो सकती है ? मानव से भगवान बन जाना कोई छोटी घटना है ? पर जगत को इसमें कोई घटना सी ही नहीं लगती। तोड़-फोड की रुचि वाले जगत को तोड़-फोड़ में ही घटना नजर आती है, अन्तर में शांति से चाहे जो कुछ घट जाय, उसे वह घटना सी नहीं लगता है। अन्तर में जो कुछ प्रतिपल घट रहा है वह तो उसे दिखाई नहीं देता। बाहर में कुछ हलचल हो तभी कुछ घटा सा लगता है।

जब तक देवागंनाएँ लुभाने को न आवें और उनके लुभाने पर भी कोई महा-पुरुष न डिगे तब तक हमें उसकी विरागता में शंका बना रहती है, तब तक कोई पत्थर न बरसाएँ, उपद्रव न करे और उपद्रव में भी कोई महात्मा शान्त न बना रहे तब तक हमें उसकी वीत-द्वेषता समझ में नहीं आती। यदि प्रबल पुण्योदय से किसी महात्मा के इस प्रकार के प्रतिकूल संयोग न मिलें तो क्या वह वीतरागी और वीतद्वेषी नहीं बन सकता, क्या वीतरागी और द्वेषी बनने के लिए देवाँगनाओं को डिगाना राक्षसों का उपद्रव आवश्यक है ? क्या वीतरागता इन काल्पनिक घटनाओं के बिना

प्राप्त और संप्रेषित नहीं की जा सकती है ? क्या मुझे क्षमाशील होने के लिए सामने वालों का गाली देना, मुझे सताना जरूरी है, क्या उसके सताए बिना मैं शान्त नहीं हो सकता ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जो बाह्य घटनाओं की कमी के कारण महावीर के चरित्र में स्थापन मानने वालों और चिन्तित होने वालों को विचारणीय हैं।

वन में जाने से पूर्व ही महावीर बहुत कुछ वीतरागी हो गये थे। रहा-सहा राग भी तोड़, पूर्ण वीतरागी बनने, नग्न दिगम्बर हो वन को चल पड़े थे। उनके लिए वन और नगर में कोई भेद नहीं रहा था। सब कुछ छूट गया था, वे सब से टूट गये थे। उन्होंने सब कुछ छोड़ा था, कुछ ओढ़ा न था। वे साधु बने नहीं, हो गये थे। साधु बनने में वेष पलटना पड़ता है। साधु होने में स्वयं ही पलट जाता है। स्वयं के बदल जाने पर वेष भी सहज ही बदल जाता है। वेष बदल क्या जाता है, सहज वेष हो जाता है, यथा जात वेष हो जाता है, जैसा पैदा हुआ था वही रह जाता है, बाकी सब छूट जाता है।

वस्तुतः साधु की कोई ड्रेस ही नहीं है, सब ड्रेसों का त्याग ही साधु का वेष है। ड्रेस बदलने से साधुता नहीं आती, साधुता आने पर ड्रेस छूट जाती है। यथा जातरूप (नग्न) ही सहज वेष है और सब वेष तो श्रमसाध्य हैं, धारण करने रूप हैं। वे साधु के वेष नहीं हो सकते क्योंकि उनमें गाँठ बाँधना अनिवार्य है, साधुता बंधन नहीं है। उसमें सर्वबन्धनों की अस्वीकृति है। साधु कोई वेष नहीं होता, नग्नता कोई वेष नहीं। वेष-साज-शृंगार है, साधु को सजने-संवरने की फ़ुर्सत ही कहाँ है ? उसका सजने का भाव ही चला गया है। सजने में "दूसरों को कैसा लगता हूँ ?" का भाव प्रमुख रहता है। साधु को दूसरों से प्रयोजन ही नहीं है, वह जैसा है वैसा ही है। वह अपने में ऐसा मग्न है कि दूसरों के बारे में सोचने का काम ही नहीं। दूसरे उसके बारे में क्या सोचते हैं, इसकी उसे परवाह ही नहीं। सर्ववेष शृंगार के सूचक हैं। साधु को शृंगार की आवश्यकता ही नहीं। अतः उसका कोई वेष नहीं होता।

दिगम्बर कोई वेष नहीं है, सम्प्रदाय नहीं है, वस्तु का स्वरूप है। पर हम वेषों को देखने के इतने आदि हो गये हैं कि वेष के बिना सोच नहीं सकते। हमारी भाषा वेषों की भाषा हो गयी है। अतः हमारे लिए दिगम्बर भी वेष हो गया है। हो क्या गया कहा जाने लगा है। सब वेषों में कुछ उतारना पड़ता है और कुछ पहिनना होता है, पर इसमें छोड़ना ही छोड़ना है, जोड़ना कुछ भी नहीं है। छोड़ना भी क्या उघड़ना है, छूटना है। अन्दर से सब कुछ छूट गया है, देह भी छूट गयी है, पर बाहर से अभी वस्त्र भी छूटे हैं, देह छूटने में अभी कुछ समय लग सकता है, पर वह भी छूटना है, क्योंकि उसके प्रति भी जो राग था वह टूट चुका है। देह रह गयी है तो रह गयी है, जब छूटेगी तब छूट जायगी, पर उसकी भी परवाह छूट गयी है।

महावीर मुनिराज वर्द्धमान नगर छोड़ वन में चले गये। पर वे वन में भी गये कहाँ ? वे तो अपने में चले गये हैं, उनका वन में भी अपनत्व कहाँ है ? उन्हें वनवासी कहना भी उपचार है, क्योंकि वे वन में भी कहाँ रहे ? वे तो आत्मवासी हैं। न उन्हें नगर से लगाव है, न वन से, वे तो दोनों से अलग हो गये हैं, उनका तो पर से अलगाव ही अलगाव है।

रागी वन में जायगा तो कुटिया बनायगा, वहाँ भी घर बसायगा। ग्राम और नगर बसायगा, भले ही उसका नाम कुछ भी हो, है तो वह घर ही। रागी वन में भी मंदिर के नाम महल बसायेगा, महलों में भी उपवन बसायगा। वह वन में रहकर भी महलों को छोड़ेगा नहीं, महल में रहकर भी वन को छोड़ेगा नहीं।

उनका चित्त जगत् के प्रति सजग न होकर आत्मनिष्ठ था। देश-काल की परिस्थितियों के कारण उन्होंने अपनी वासनाओं का दमन नहीं किया था। उन्हें दमन की आवश्यकता भी न भी क्योंकि वासनायें स्वयमेव अस्त हो चुकी थीं।

उन्होंने सर्वदा मौन धारण कर लिया, था उनको बोलने का भाव भी न रहा था। वाणी पर से जोड़ती है, उन्हें पर जुड़ना ही न था। वाणी विचारों की वाहक है, वह विचारों का आदान-प्रदान करने में निमित्त है, वह समझने-समझाने के काम आती है, उन्हें किसी से कुछ समझना ही न था जो समझने योग्य था उसे वे अच्छी तरह समझ चुके थे, अब तो उसमें मग्न थे। उन्हें किसी को समझने का राग भी न रहा था, अतः वाणी का क्या प्रयोजन ? वाणी उन्हें प्राप्त थी, पर वाणी की उन्हें आवश्यकता ही न थी। जो उन्हें चाहिये ही नहीं, वह रहे तो रहे, उससे उन्हें क्या ? रहे तो ठीक, न रहे तो ठीक। वे निरन्तर आत्म-चिन्तन में ही लगे रहते थे।

नहाना-धोना सब कुछ छूट गया था। वे स्नान और दंत-धवन के विकल्प से भी परे थे। शत्रु और मित्र में समभाव रखने वाले मुनिराज वर्द्धमान गिरिकन्दराओं में वास करते थे। वस्तुतः न उनका कोई शत्रु ही रहा था और न कोई मित्र। मित्र और शत्रु राग-द्वेष की उपज हैं। जब उनके राग-द्वेष ही समाप्त प्रायः थे, तब शत्रु मित्रों के रखने का कोई प्रश्न ही नहीं रह गया था। मित्र रागियों के होते हैं, और शत्रु द्वेषियों के, वीतरागियों का मित्र और कौन शत्रु ? कोई उनसे शत्रुता करो तो करो, मित्रता करो तो करो, उन पर उनकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है। शत्रु-मित्र के प्रति समभाव का अर्थ ही शत्रु-मित्र का अभाव है। उनके लिए उनका न कोई शत्रु था और न कोई मित्र। अन्य लोग उन्हें अपना शत्रु मानों तो मानों, अपना मित्र मानो तो मानो, अब वे किसी के कुछ भी न रह गये थे। किसी का कुछ रहने में कुछ लगाव होता है, उन्हें जगत् से कोई लगाव ही न रहा था।

एक अघट घटना महावीर के जीवन में अवश्य घटी थी आज से २५०१ वर्ष

पहले दीपावली के दिन जब वे घट (देह) से अलग हो गये, अघट हो गये थे। घट-घट के वासी होकर भी घटवासी भी न रहे थे, गृहवासी और वनवासी तो बहुत दूर की बात है। अन्तिम घट (देह) को भी त्याग मुक्त हो गये थे। इससे अभूतपूर्व घटना किसी के जीवन में कोई अन्य नहीं हो सकती पर यह जगत् इसको घटना माने तब है न।

इस प्रकार जगत् से सर्वथा अलिप्त, सम्पूर्णतः आत्मनिष्ठ महावीर के जीवन को समझने के लिए उनके अन्तर में झांकना होगा कि उनके अन्तर में क्या कुछ घटा। उन्हें बाहरी घटनाओं से नापना, बाहरी घटनाओं में बाँधना संभव नहीं है। यदि हमने उनके ऊपर अघट-घटनाओं को थोपने की कोशिश की तो वास्तविक महावीर तिरोहित हो जावेंगे, वे हमारी पकड़ से बाहर हो जावेंगे और जो महावीर हमारे हाथ लगेंगे, वे वास्तविक महावीर न होंगें, तेरी मेरी कल्पना के महावीर होंगें। यदि हमें वास्तविक महावीर चाहिये हो तो उन्हें कल्पनाओं के घेरों में न घेरिये। उन्हें समझने का यत्न कीजिए, अपनी विकृत कल्पनाओं को उन पर थोपने की अनाधिकार चेष्टा मत दीजिए।

●

चैतन्य के एकत्व में परम सुख

अनुभव की मस्ती उसके चित्त को अन्य किसी भी स्थान पर नहीं लगते देती। स्वानुभव के शांत रस से तृप्त-तृप्त है। चैतन्य के आनन्द के रस में ऐसा मस्त है कि अब अन्य कुछ भी करने का रहा नहीं। भेद-ज्ञान के द्वारा अभेद अंतः तत्व को मुख्य करके—

मैं ही ज्ञान-दर्शन-चारित्र हूँ, मैं ही मोक्ष हूँ, मैं ही सुख हूँ, मेरा स्वभाव वृद्धि को प्राप्त करता हूँ पर भाव का मेरे में प्रवेश नहीं। मैं अपने चैतन्य विलास-स्वरूप हूँ। चैतन्य में अन्य किसी की चिन्ता नहीं है—इस प्रकार धर्मी जीव 'पर' से भिन्न अपने एकत्व स्वरूप का चिंतन करता है। चैतन्य के एकत्व चिन्तन में परम सुख है।

आत्म मूल्यांकन करना सीखें

—श्रीमती रूपवती 'किरण'

जैन दर्शन का केन्द्र विन्दु एकमात्र आत्मा है। द्वादशांग वाणी का सार भी आत्मा की उपलब्धि ही है। पूर्वाचार्यो ने आधि-व्याधि-उपाधियों से संतप्तजनों को स्वानुभव के आधार पर सवकी अपेक्षा त्याग स्वतंत्रता से पुरुपार्थ करने की प्रेरणा दी है। सव-संसारी प्राणी स्वयं की भूल से स्वभावच्युत हो विकारों में तन्मय हो रहे हैं एवं दोप कर्मोदय को देकर स्वयं प्रमादी वन निश्चित हो जाते हैं। अर्थात्-कल्याण का मार्ग सवने स्वत: अवरुद्ध कर लिया है। शास्त्र स्वाध्याय करके भी हम उसका मर्म नहीं समझ सके हैं। द्रव्य से द्रव्यान्तर क्रिया में धर्म मान उसी में दत्तचित्त हो संतुष्ट होते रहे हैं। अत: सुख शांति से साक्षात्कार नहीं हो सका।

आत्म स्वीकृति होना अनिवार्य

शताब्दियों पश्चात् जैन दर्शन के मर्मज्ञ महापुरुपों की वर्तमान श्रृंखला में श्री कानजी स्वामी का भी प्रादुर्भाव हुआ है। उन्होंने अपने उपदेशामृत से शास्त्रों को समझने की कला सिखलाई। वह कला और कुछ नहीं केवल यही है कि आत्मस्वातंत्र्य को स्वीकार करो। धर्म या कर्म स्वतंत्रतया आत्मा ही करता है, अन्य चेतन अचेतन पदार्थ नहीं। अतएव पर दोपारोपण वृत्ति को त्याग स्वत: की छानवीन अभीष्ट है। अपने विकारों को अपने ही अज्ञानकृत समझ कर ज्ञान से उन्हें निर्मूल करने का उपक्रम करना योग्य है। अज्ञान की खाद में कपाय-विप से विपैले वृक्ष लगते हैं। जैसे भाव वैसे फल। भावों का फल ही आत्मा को प्राप्त होता है। अतएव भावों की सावधानी वांछनीय है।

धर्म की लीक एक—कानजी स्वामी ने कोई नवीन वात नहीं कही। कहते भी कैसे ? प्राचीन आचार्यो की कथनी पर आपकी दृढ़तम श्रद्धा है। जो आपने अनुभव के आश्रय से प्रकट की है। लोक की लीक विभिन्न होती हैं; परन्तु धर्म की लीक एक है और एक रहेगी। अनादिकाल से जो आत्मायें सिद्ध हो रही हैं, वे सव एक ही पथ की पथिक रही हैं। सवका समान लक्ष्य पाथेय सदृश रहा है। वह लक्ष्य है मुक्ति का एवं पाथेय है परम पावन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र स्वरूप रत्नत्रय। जिसको लेकर मुक्ति पथ का पथिक वीतरागता के मार्ग पर समता भाव से गतिशील हो जाता है।

ममता को इकाई बनाकर श्रमण संस्कृति नहीं चलती। श्रमण के पर्यायवाची शब्द 'समण' और 'शमण' भी हैं। 'श्रमण' शब्द स्वावलंबी बन श्रमपूर्वक आत्मपुरुषार्थ करने का सूचक है तो 'समण' राग द्वेष जन्म इष्टानिष्ट का समन कर समता भाव को बतलाता है। एवं 'शमण' विषय कषायों को शमन करने को प्रेरित करता है। इस संस्कृति का ध्येय एक मात्र परिपूर्ण वीतरागता की प्राप्ति है। गृहस्थ श्रावक भी साधु भांति इसी के अंग हैं। लक्ष्य समान होने से गृहस्थ जीवन में ही शुद्ध श्रद्धा, विवेक, क्रिया अनिवार्य है।

चरित्र की आधार आत्मा

यह निर्विरोध सत्य है कि ज्ञान के अभाव में सम्यग्दर्शन नहीं होता। ज्ञान पूर्वक सम्यग्दर्शन होता है, पर ज्ञान सम्यग्र्शन के साथ सम्यक्ज्ञान व चरित्र सम्यक् चरित्र की संज्ञा धारण करता है। वह चारित्र साक्षात् धर्म है, जो सम्यग्ज्ञान पूर्वक ही होता है। 'स्व' की विस्मृति में दिशा परिष्करण के पूर्व जो चरित्र होता है; वह अन्य पदार्थों में ग्रहण या त्याग के आश्रय से होता है। इसीलिये वह सुगतियों का लाभ कराते हुये भी उद्देश्य पूर्ति में असमर्थ होने के कारण श्रेयस्कर नहीं है। मोक्ष-मार्ग में उसका कोई मूल्य नहीं। वह निरर्थक व बंध का कारण है। गिरी सहित बादाम ही बहुमूल्य है, छिलका तो केवल भार है।

शाश्वत सुख का मार्ग

आत्मा का लक्ष्य बंधन-मुक्त हो सुख प्राप्त करना है। जिस सुख में व्यग्रता हो, जो क्षणश्वर हो, अनेक पदार्थों से प्रतिबंधित हो; ऐसा सुख किसी भी प्राणी का अभिधेय नहीं हो सकता। सुख वह जिसका कभी वियोग न हो, सदैव सर्वत्र जिसका उपयोग किया सके। वह परम सुख इन्द्रिय विषयों की उपेक्षा कर पापपुण्यमय राग द्वेषादि वृत्ति को अतिक्रांत कर आत्मस्वभाव के आश्रय से स्वद्रव्य में स्थित होने पर ही उपलब्ध होता है। समस्त द्रव्यों से दृष्टि को मुक्त करके प्राणी मुक्ति पथ का पथिक बनकर मुक्त होता है। अन्य मार्ग नहीं है।

कतिपय सदाचरण अपनाकर नियम संयम ग्रहण कर जगतजन धर्मात्मा हो जाने की कल्पनाकर अभिमान करता है अथवा धर्म कर रहा हूँ ऐसा मानकर संतुष्ट हो जाता है। जितने अधिक कठोर नियम उतना ही श्रेष्ठ धर्मात्मा धर्म क्रियाकांड के कठिन नियंत्रण में बंदी हो गया। आत्मधर्म का माप शारीरिक क्रियायें बन बैठीं। कायक्लेश को भी धर्म का अंग मान बैठे। विषय भोग के त्याग से अहंकार का प्रादुर्भाव हुआ। अहंकार की भूख यश, सम्मान, प्रतिष्ठा की आहुति पाकर अधिकाधिक ज्वलन शील होती गई। कदाचित् यशादि की उपलब्धि न हुई तो जागीं क्रोधादित् कषायें, जो उपार्जित पुण्य को भी भस्म कर गई। यथार्थतः द्रव्य की द्रव्यांतर क्रिया

मानकर महत् भूल हो रही है। देह की क्रिया से आत्मा की क्रिया कैसे हो सकती है ? आत्मानुभूति की इकाई के साथ शून्यवत् व्रतादि क्रियायें कई गुनी मूल्यवान कहलाने लगती हैं। शून्य मिटाने की नहीं, अपितु इकाई लगाने की आवश्यकता है।

धर्म के मर्म से अनभिज्ञ प्राणी अज्ञान के कारण पाप छिपकर करते हैं और पुण्य उजागर। स्पष्ट है कि वह पाप को हेय एवं पुण्य को उपादेय मानते हैं। जब कि दोनों एक ही जाति के आत्मस्वरूप से विरुद्ध हैं। पाप पुण्य रूप भाव आत्मा में होते हैं तथा क्रिया पुदगल में। यह नियम नहीं है कि भावानुसार क्रिया हो ही। हो भी न भी हो। अतएव मोक्षाभिलाषी जीव आत्मा की अंनत सामर्थ्य का अटल श्रद्धान कर भेद ज्ञान के द्वारा प्रत्येक द्रव्य की भिन्नता ज्ञात कर अन्य द्रव्य के कर्त्तव्य से दृष्टि हटाकर पुरातन मान्यताओं से निर्मूल कर देता है पौद्गालिक क्रिया का स्वामित्व छोड़ देने के साथ ही धर्म का प्रादुर्भाव होता है।

अग्नि व जल एक साथ नही रह सकते। अग्नि दाहक है, जल शामक। राग दाहक है वीतरागता शामक। वीतराग की ओर दृष्टि होते ही राग की रुचि टूट जाती है। फिर राग को सहेजने का नही वरन उससे हटने का प्रयत्न प्रारम्भ हो जाता है। यद्यपि प्रारम्भिक अवस्था में राग और विराग दोनों एक साथ पाये जाते हैं; तथापि दोनों की रुचि एक साथ नही रहती। जैसे किसी कक्ष में बहुत दिनों से कूड़ा कचरा भरा हुआ हो। कोई व्यक्ति उसको अपना निवास स्थान बनाना चाहे तो वह उसे स्वच्छ करने का संकल्प बिना विकल्प के कर लेगा; पर संकल्प करते ही स्वच्छता नहीं आयगी। वह शनैःशनैः स्वच्छ संकल्प के अनुसार स्वच्छता की क्रिया करेगा। जितने हिस्से से कचड़ा बुहर जायगा वह स्वच्छ, शेष अस्वच्छ रहेगा। इसी प्रकार राग की रुचि न होते हुए भी राग व विराग एक साथ पाये जाते हैं।

'स्व' की ओर आयें

अनादि काल से जीवन की संपूर्ण ऊर्जा 'पर' की ओर प्रवाहित हो रही है। जैन दर्शन का अव्ययन का सत् देव शास्त्र गुरु की, शरण पाकर व्रत संयम धारण करके भी यदि संसरण की प्रक्रिया चलती रही तो फिर कल्याण का अन्य कोई मार्ग नहीं है। पाप पुण्य रूप शुभ अशुभ उपयोग से प्राणी की स्थिति समुद्र में डूबे हुये मनुष्य जैसी होती है। वह कभी पाप में डूबता है तो कभी पुण्य की सतह पर भी आ जाता है; किन्तु किनारे नहीं लगता। ऊर्जा को अपनी ओर मोड़े बिना मुक्ति का संकल्प पूर्ण नहीं होता।

आचार्यों ने बतलाया है कि विकार धर्म की कोटि में नहीं आता; भले ही वह कितना ही शुभ क्यों न हो धर्म तो आत्मा का स्वभाव है। आत्म स्वभाव की आधार शिला पर ही धर्म का भवन निर्मित होता है। आत्मा ही धर्म का आदि व अन्त है।

धर्म आत्मा से प्रारम्भ होकर आत्मा में समाविस्थ होता है। वे अपना अभिमत व्यक्त करते हैं कि प्रत्येक द्रव्य की क्रिया स्वयं उसी में होती है। अन्य द्रव्य में नहीं। द्रव्य स्वयं कारण स्वयं कार्य है।

जीवादि षट् द्रव्यों का निरूपण वस्तु की अत्यन्त स्वतंत्रता की सिद्धि के अर्थ ही है आचार्य श्री नियमसार में कहते हैं—

> **इहगमननिमित्त यात्स्यितेःकारणं वा।**
> **यदपरमखिलानां स्थान दान प्रवीणम्॥**
> **तदखिल मवलोक्य द्रव रूपेण सम्यक्**
> **प्रविशतु निज तत्त्वं सर्वदा भव्य लोकः॥४६॥**

यहां ऐसा अभिप्राय है कि जो धर्म द्रव्य का निमित्त है, अधर्मद्रव्य स्थिति का का कारण है एवं आकाश द्रव्य सर्व को स्थान देने में प्रवीण है, उन सबको सम्यक् द्रव्य रूप से अवलोकन कर भव्यजन सर्वदा निजतत्त्व में प्रवेश करो।

ध्येय में तन्मयता इष्ट है

प्राणी को सर्वप्रथम निज ज्ञानमय अस्तित्व की स्वीकृति होनी चाहिये। संसारी जन समस्त को स्वीकार करते हैं, पर स्वयं को नहीं। यह अज्ञानता छाया को स्वीकार कर छायावान को नकार ने जैसी है। समस्त ज्ञेयों को जानने वाले ज्ञान को ही हम अस्वीकार कर बैठे है। अध्यात्मशास्त्र केवल आत्मस्वभाव की ही चर्चा करता है। वह दो टूक निर्णय दे चुका है कि आत्मा का ध्येय स्वयं को पाना है, अन्य कुछ नहीं। यद्यपि आत्मा में वर्तमान में रागादि विभाव क्रोधादि कषायें हैं, तथापि मोक्षाभिलाषी ज्ञानी इन सब विकारों की उपेक्षा कर निःशंक मुक्ति पथ पर अग्रसर होता है, क्योंकि ये सब उसके पथ की बाधा है। अतः इनकी ओर दृष्टिपात नहीं करता। यह नीति भी है कि प्रयोजक प्रतिपक्षी का विरोध न कर अपने विवक्षित प्रयोजन की सिद्धि में संलग्न रहता रहता है।

रहस्य : अनुयोगों में

चारों अनुयोगों का रहस्य भी यही है कि आत्मा स्वस्थित हो। प्रथमानुयोग कथाओं के माध्यम से पापपुण्य का फल संसार भ्रमण का दिग्दर्शन कराते हुये आत्मा को अंतर्मुखी बनने का उपदेश देता है। तभी वह निर्बंध हो सकता है। चरणानुयोग राग के साधनों के त्याग का कथन करता है। क्योंकि तिल तुम मात्र परिग्रह भी परम-पद की प्राप्ति में बाधक है। अतएव त्याग मात्र से ध्येय की प्राप्ति नहीं होगी। त्याग का राग भी त्यागना अनिवार्य है, जो आत्म स्वभाव से परिचित्त हुये बिना असंभव है।

चरणानुयोग

अभी तक हम 'पर' में चरण करते रहे हैं। अतः यात्रा का श्रम करके भी लक्ष्य से दूर रहे। विषय भोग सम्बन्धी पदार्थों से राग किया अथवा द्वेष किया, जो अभीष्ट नहीं है। अतएव त्यागपूर्वक विषयों से हटकर आत्माभिरुचि की वृद्धि करते हुए वीतराग होने का सतत अभ्यास अनिवार्य है। 'चारित्त खल्लु धम्मो, चारित्र ही निश्चय से धर्म है। चारित्र का अर्थ सम्यक् चारित्र से ही है। सम्यक् चारित्र वही है कि जब आत्मा स्वयं में ही चरण करे अथवा निज स्वरूप के अनुरूप आत्मा की की सहज वृत्ति बन जाये। चारित्र भारस्वरूप कष्टदायक नहीं है। आचार्यों ने स्वाभाविक परिणति में सहज रमण को ही सम्यक् चारित्र स्वीकार किया है अथवा ज्ञान का ज्ञान रूप हो जाना चारित्र है।

करणानुयोग

करणानुयोग कर्म की प्रधानता से कथन कर सद्भावात्मक या आभावात्मक आत्मपरिणामों को सूचित करता है। कर्मोदय में अज्ञानी आत्मा के परिणाम तद्रूप होते हैं। यदि कर्मोदय के समय शुभाशुभ भाव न कर आत्मा निज स्वभाव में लीन रहे, तो कर्म बलात् उसे कर्म रूप परिणाम करने को बाध्य नहीं करते। यह जीव पर निर्भर है कि वह अपना उपयोग जहाँ लगाना चाहे वहाँ लगा सकता है। यह भी देखने में आता है कि जीव सुख के उदय में दुःखी एवं दुख के उदय में सुखी होता है। उदाहरणतः स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों ने सर्व सुविधा संपन्न होते हुये भी देश की परतंत्रता से दुखी हो गृह त्याग कर राष्ट्रहित में जेल का बंदी जीवन अपना हर्षपूर्वक नृशंस यंत्रणायें सहन कीं। फाँसी के तख्ते पर हँसते-हँसते भूल गये। जब लौकिक जीवों की यह अवस्था है, तब अध्यात्मयोगियों में तो अलौकिकता होगी ही। उनके अनेक दृष्टांत पुराणों में चर्चित हैं। कुमार सुकुमार आदि को जिस क्षण आत्मबोध हुआ कि फूलों की शैया शूलों सी चुभन देने लगी है और स्पालिनी के भक्षण के भयंकर कष्ट में कष्ट का अनुभव न कर स्वरमण का आनन्द लेते रहे। कोई-कोई आत्मपुरुषार्थी तो ऐसे उपसर्गों में अपने शुद्धोपयोग के अवलंबन से तत्काल केवल ज्ञानी हो मुक्त हो जाते हैं।

कर्म अति सूक्ष्म हैं। उनसे भी अत्यंत सूक्ष्म आत्मा के विकार मोह राग द्वेषादि कषायें हैं। कर्म भावों से अधिक स्थूल हैं। फिर भी हमें नहीं दिखते जब कि भाव सूक्ष्मातिसूक्ष्म होते हुये भी हमारे अनुभव में आते हैं। भावों से उस समय में आने वाले कर्मों का अनुमान हो जाता है। आत्मा की रागद्वेषमय परिणति कर्मोदय का अस्तित्व सिद्ध करती है। जैसे जैसे धूम देखकर अग्नि का ज्ञान हो जाता है। उसी प्रकार राग भावमय धूम कर्मोदय रूप अग्नि के सूचक हैं।

करणानुयोग का अभिप्राय यही है कि कपायमिश्रित भाव आत्मज्ञान से नहीं अज्ञान से उत्पन्न होते हैं। कर्मो का संबंध-अज्ञान से है। वे इसके माध्यम से ही आत्मा से संयोग करते हैं। अज्ञान के अभाव में संबंध टूट जाता है। देह भोग सम्बन्धी ज्ञान चाहे वह कितना भी विशद क्यों न हो समस्त अज्ञान ही है। शास्त्र-ज्ञान भी जब तक आत्मज्ञान में परिणित नहीं हो जाता; तब तक वह भी अज्ञान है। अतः आत्मप्रेमी कर्मों की वलवत्ता को अस्वीकृत कर उससे भिन्न अनंत वलशाली आत्मसामर्थ्य की प्रतीतिकर उसमें तन्मय होने का प्रयत्न करता है।

द्रव्यानुयोग

द्रव्यानुयोग वस्तु के स्वभाव की चर्चाकर उसमें होने वाले वैभाविक भावों को स्पर्श नहीं करता। वस्तु का शुद्ध स्वभाव ही उसका विवेच्य विषय है। षट्द्रव्यों के मध्य रहने वाले सार द्रव्य आत्मा की विशेष रूप से कथनी कर आत्मस्वभाव में प्रविष्ट होने की प्रेरणा देता है। इस संदर्भ में अन्य द्रव्यों की भी चर्चा आती है; परन्तु उससे भी विवक्षित द्रव्य की स्वतंत्रता का ही प्रतिपादन होता है। तात्पर्य यह कि चारों अनुयोग आत्मा को केन्द्रीभूत कर आत्म लीन होने का ही उपदेश देते हैं।

आत्मसाधना एक अद्वितीय कला है। इसमें सच्चे देव, शास्त्र, गुरु आदि प्रत्ययों का आश्रय लेकर उनके सानिध्य में जीव अपनी मलिन आत्मा को दर्शन-ज्ञान-चारित्र से माँज माँजकर चमका उनकी स्वच्छता से अपनी तुलना करता है और जब तक पूर्णतः निर्मलता नहीं आती तब तक अनवरत अभ्यास, श्रम चला करता है। यदि जीव सानिध्य प्राप्त कर उपर्युक्त क्रिया नहीं करता, उनके लिये द्रव्यानुयोग डंके की चोट उद्घोषणा करता है कि शुभ पराश्रयों से भी मोक्ष का हेतु सिद्ध नही होगा, अपितु इनके सानिध्य में स्वाश्रित होने का अभ्यास कर स्वात्मस्थित होने का प्रयत्न अनिवार्य है। अंततोगत्वा समस्त आश्रयों का परित्याग कर संपूर्णतः स्वावलम्बी वन कर ही भवसागर पार किया जा सकता है।

अपने से एकाकार होने का प्रयत्न ही ग्राह्य है। शेष भटकन है। आत्मा की चरमोत्कृष्टा वीतराग हो जाने में है। परन्तु जब तक प्राणी अपने अभीष्ट को उपलब्ध नहीं होता; तब तक पुण्य फल में अभिरुचि न कर उसे पुण्य क्रिया औषधि की भांति उपादेय होती है मोक्ष का हेतु न होने से ज्ञानी फल की अभिलाषा नहीं करता। अन्य द्रव के आधार से 'स्व' में निखार कैसे आ सकेगा ? भावों का विकार शुद्ध भावों से ही नष्ट होता है।

तत्वाभ्यास आवश्यक अंग

अनादि मिथ्या दृष्टि को सम्यक्त्व प्रकट करने के लिये ज्ञानपूर्वक वस्तु स्वातंत्र्य की महिमा को आत्मसात् करना पड़ेगा। भेद ज्ञान जागृत होते ही आत्म-

दर्शन से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। सम्यक्त्व के सोपान पर चढ़कर स्वाभावतः पुरुषार्थ में सक्रियता आ जाती है। सम्यग्दृष्टि आत्मायें कालांतर में निश्चित ही सम्यक् चारित्र को अपना समस्त कर्मो की निर्जरा कर पूर्ण बंधनों से मुक्त होंगी। दृष्टिमुक्त ही जीवन्मुक्त हो देहमुक्त होता है। अन्य नहीं। व्रतरूप शारीरिक क्रिया बाह्य में होती है, किन्तु व्रतरूप भाव आत्मा में ही होते हैं, जो आत्मा को निःश्रेयस पद पर पहुँचाते हैं। भेदज्ञान के उदयाचल पर सम्यक्त्व का सूर्य उदित होता है। अस्तु तत्त्व अभ्यास कर बार बार मनन चिंतन करना अनिवार्य है; ताकि सम्यक्त्व के उपयुक्त निर्मलता आ सके।

सम्यग्दर्शन की ऐसी अपूर्व महिमा है कि उसके साथ ही रत्नत्रय की आंशिक उपलब्धि हो जाती है। जिसने आत्मा में प्रविष्ट हो उसका आनन्द लिया है, निज स्वभाव का आस्वादन किया है, अपने में झाँककर आत्मा के अलौकिक वैभव को देख लिया है, वही चरित्रनिष्ठ हो सम्यक् चरित्र की संज्ञा को सार्थक करता है। अतएव हम संसारियों को इच्छाओं पर नियंत्रण कर स्वभाव प्राप्ति की सतत चेष्टा करणीय है। भौतिकता से ऊपर उठकर हम आत्ममूल्यांकन करना सीखें, जिससे निःश्रेयसपद सुलभ हो सके।

हे जीव !
जो तेरे को शरीर रहित बनना हो,
कर्म का ध्वंस करना हो,
और विकारभावों का अभाव करना हो,
तो—
शरीर रहित ऐसा अशरीरी
कर्म से रहित ऐसा अबंध
और विकार रहित ज्ञान स्वभावी

ऐसे तेरे आत्मा को शुद्धनय की दृष्टि से तू देख। इस स्वभाव को अनुभव में लाने से तेरे भाव कर्म दूर हो जायेंगे, द्रव्य कर्म पृथक् हो जायेंगे और कर्म रहित ऐसे सिद्ध पद की तुझे प्राप्ति होगी।

श्री कानजी स्वामी चित्रों में :

आध्यात्मिक भजनों का आत्मिक आनन्द लेते हुये पूज्य गुरुदेव

प्रवचन करते हुये आत्म-विभोर !
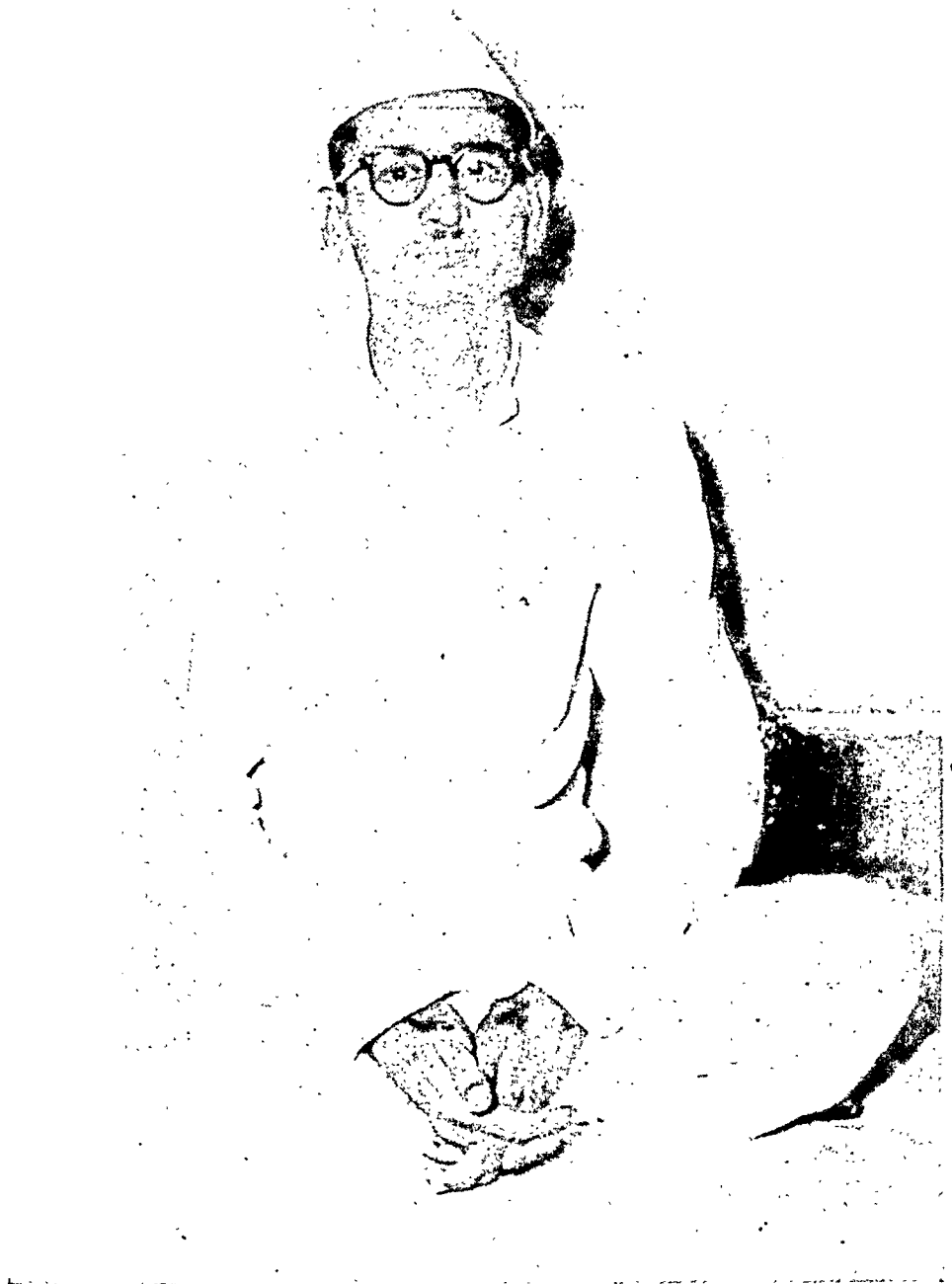
वीतराग वाणी के प्रमुख प्रवक्ता—पण्डित बाबू भाई महेता, फतेपुर मोटा (गुजरात)
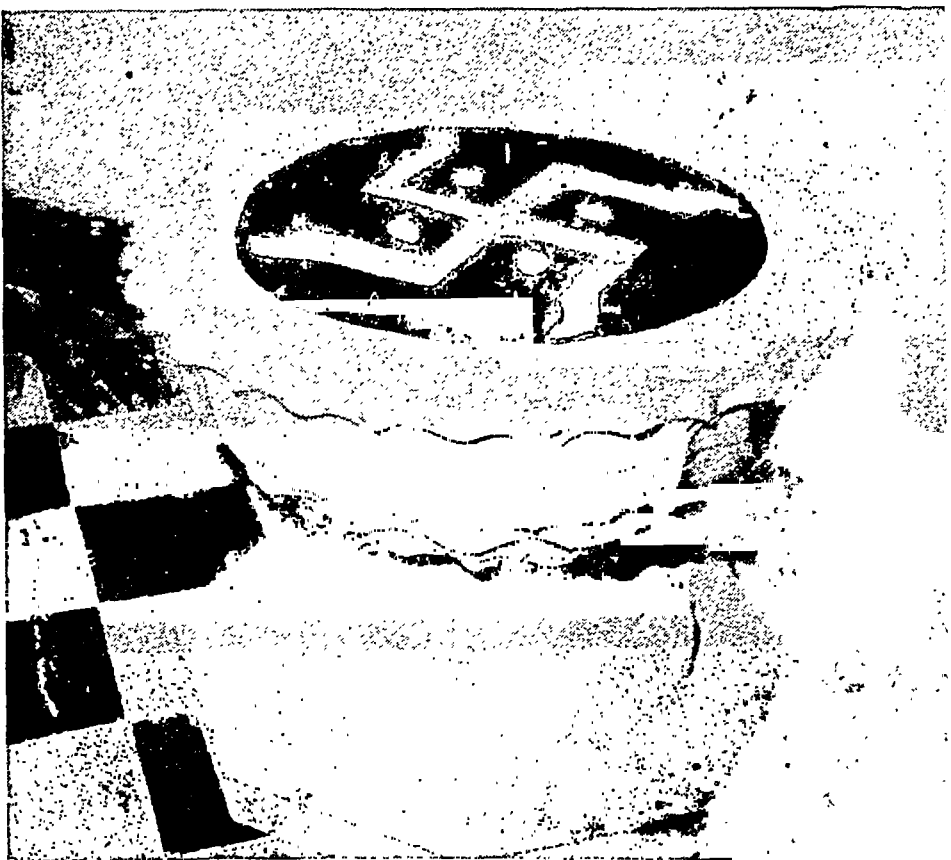
'उमराला' में जहां पर श्री कानजी स्वामी का जन्म हुआ था, उस स्थान पर यह स्वस्तिक स्थापित किया गया है।

सुप्रसिद्ध उद्योगपति साहू श्री श्रेयांस प्रसाद जी गुरुदेव से विचार-विमर्श करते हुये।
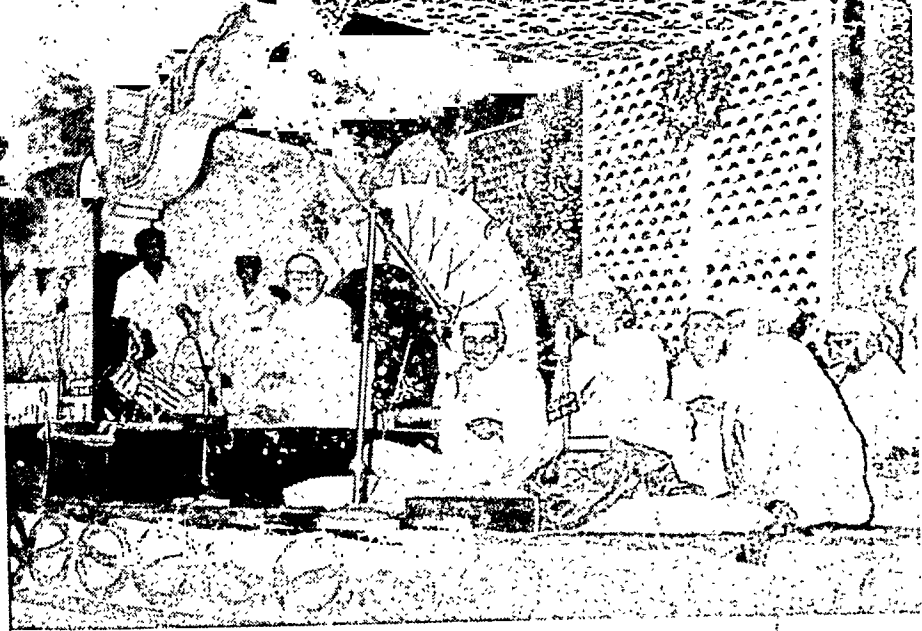
श्री कानजी स्वामी जी की हीरक जयन्ती (मई १९६४, बम्बई) का चित्र । मंच पर हैं—
श्री लाल बहादुर शास्त्री, श्री यू० एन० ढेबर, श्री मिश्री लाल जी गंगवाल आदि ।
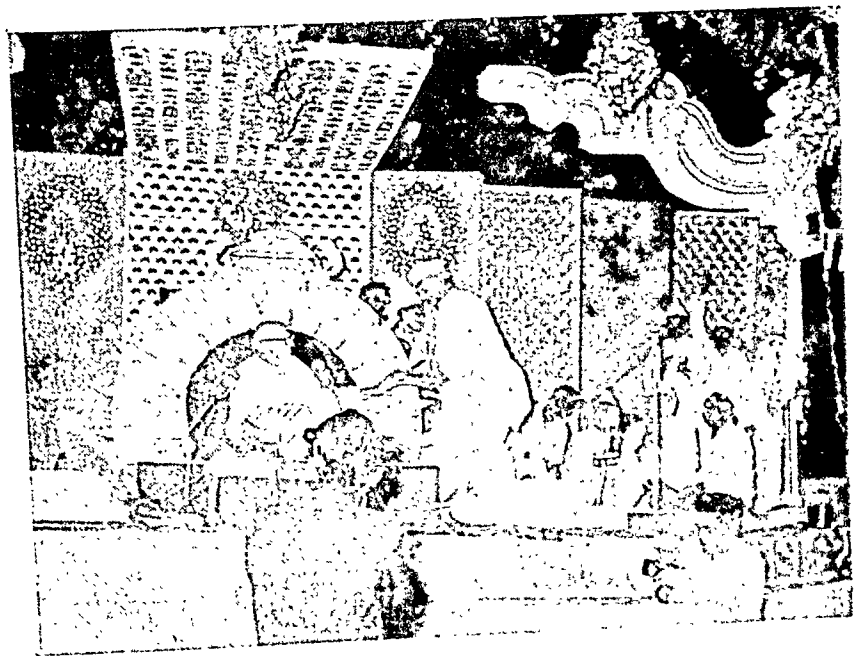
बम्बई में हीरक जयन्ती महोत्सव पर गुरुदेव को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करते हुए श्री लाल बहादुर शास्त्री ।

उपाध्याय श्री मुनि विद्यानन्द जी के साथ कानजी स्वामी
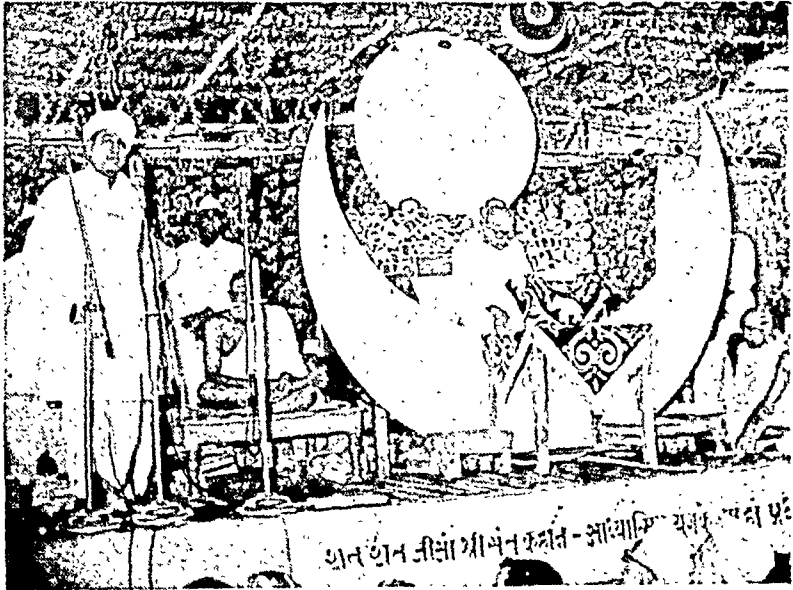
पूज्य गुरुदेव की धर्मसभा दिगम्बर जैन महासभा के प्रमुख स्तम्भ
सर सेठ भागचन्द सोनी अपने विचार प्रगट करते हुए।

मन्तरिक्ष पार्श्वनाथ (शिरपुर) के पंच कल्याणक महोत्सव पर स्वामी जी मुनि श्री नेमि सागर जी महाराज के साथ

श्री कानजी स्वामी मुनि श्री आदि सागर तथा क्षु० श्री पूर्ण सागर जी के साथ द्रोणगिरि तीर्थ क्षेत्र के पहाड़ पर।

बम्बई में ८५वीं जन्म-जयन्ती के अवसर पर सेठ कस्तूर चन्द स्वामी जी के प्रति अपने उद्गार प्रगट करते हुए।

सन् १९७३ में दादर (वम्बई) में पंचकल्याणक प्रतिष्ठोत्सव के समय पं० फूलचन्द्र जी प्रवचन करते हुए। साथ में पं० वंशीधर जी इन्दौर, पं० कैलाश चन्द्र जी, पं० नाथूलाल जी आदि बैठे हैं।

पं० खेमचन्द भाई शेठ, ब्र० हरि लाल जी स्वामी जी से तत्व चर्चा करते हुए।
(प्रसंग—वम्बई—हीरक जयन्ती महोत्सव)

वीतराग पथ के राहियों को सम्बोधित करते हुए श्री कानजी स्वामी !

बम्बई में गुरुदेव के साथ सेठ श्री नवनीत भाई सी० जवेरी,
सेठ पूरण चन्द जी गोदिका, पं० खेमचन्द भाई शेठ आदि ।

तीर्थंकर महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में आल इण्डिया दिगम्बर भगवान् महावीर २५००वां निर्वाण महोत्सव सोसायटी गुजरात की ओर से धर्म-चक्र-प्रवंतन !
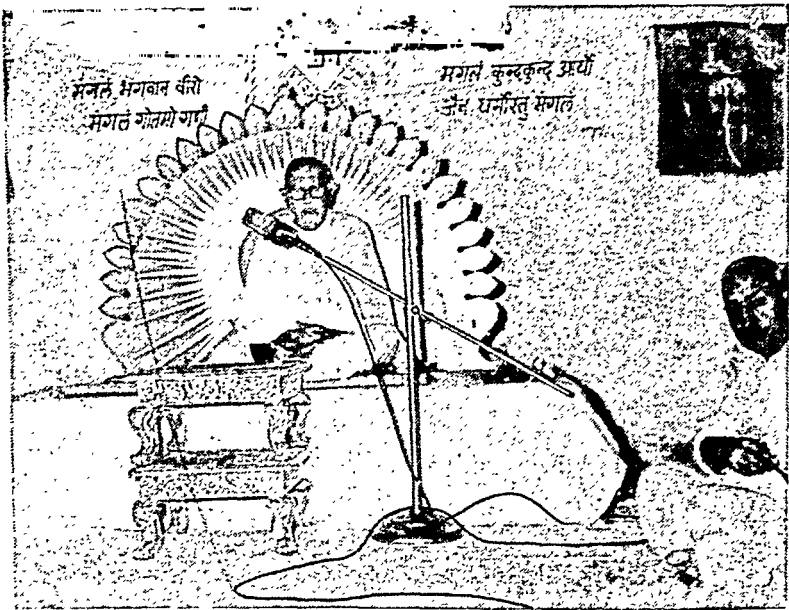
श्री जैन दर्शन शिक्षण-प्रशिक्षण-शिविर के अवसर पर कोटा में १ जून, १९७५ को पूज्य श्री कानजी स्वामी के विशाल जुलूस का दृश्य । स्वामी जी के साथ हैं—
पं० हुकम चन्द जी, श्री नेमीचन्द जी पाटनी, श्री जम्बू कुमार जी बज ।

पूज्य गुरुदेव प्रवचन मण्डप में आते हुए । साथ में हैं—लाला भगत राम जी जैन, श्री रवि चन्द जी मन्त्री मुमुक्षु मण्डल दिल्ली, श्रीपाल जी जैन एवं अन्य ।

(दिल्ली, १९७३)

श्री जैन-दर्शन-प्रशिक्षण शिविर समारोह के समापन पर स्वागत मन्त्री
श्री 'युगल' जी गद्‌गद् होकर समापन भाषण कर रहे हैं।

श्री पं० टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के उद्‌घाटन के मंगल अवसर पर हुई
विशाल रथ यात्रा में स्वामी जी सर सेठ भागचन्द सोनी अजमेर वालों के रथ में।

दिल्ली जैन समाज द्वारा कानजी स्वामी के भव्य स्वागत का एक विहंगम दृश्य। (दिल्ली, १९७३)
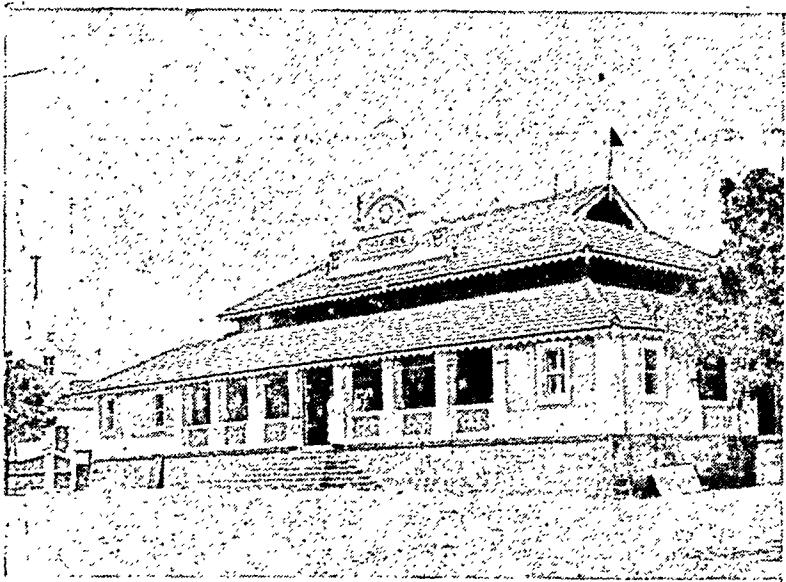
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर, जहां कानजी स्वामी विराजते हैं। (सोनगढ़)
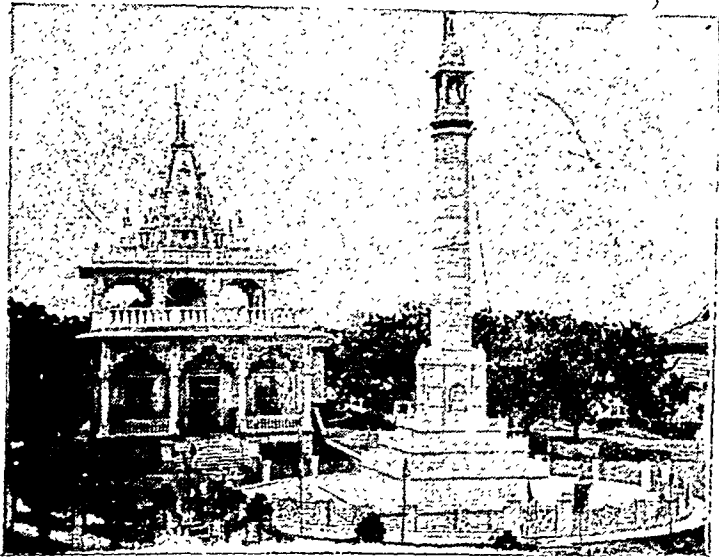
परिपेक्ष्य में—श्री सीमंधर स्वामी दिगम्बर जैन मन्दिर, सोनगढ़
एवं पूरा संगमरमर से निर्मित मानस्तम्भ (ऊंचाई ६३ फुट)
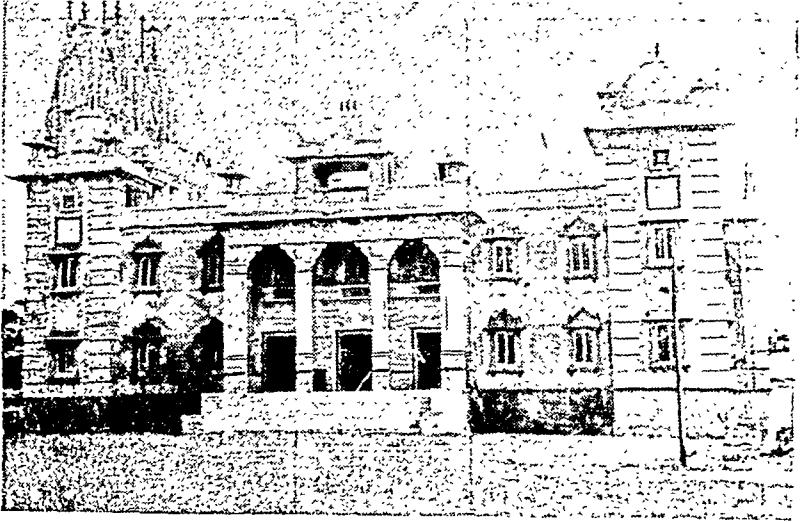
सोनगढ़ का श्री महावीर कुन्द कुन्द दिगम्बर जैन परमागम मन्दिर।

उपरोक्त मन्दिर में विराजित भगवान् महावीर की भव्य प्रतिमा।

परमागम मन्दिर में विराजमान :
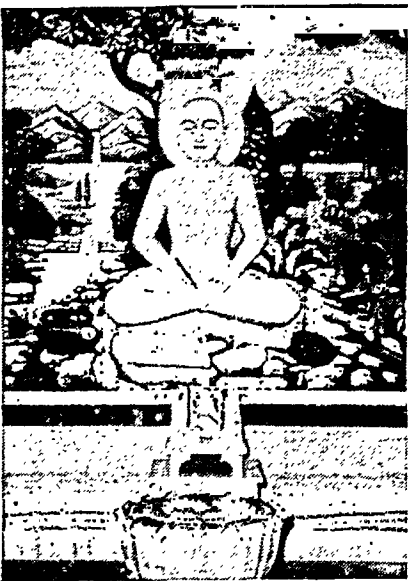
भगवान् कुन्द कुन्दाचार्य देव
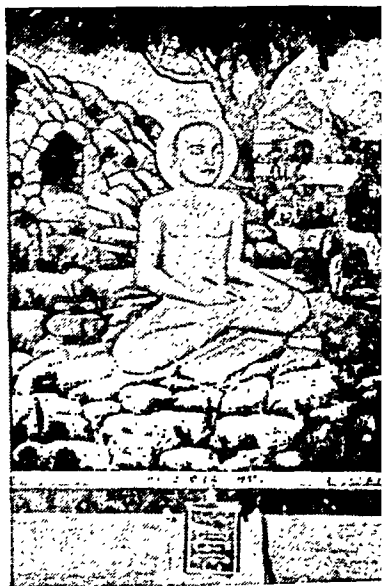
आचार्यवर श्री अमृतचन्द्राचार्य देव
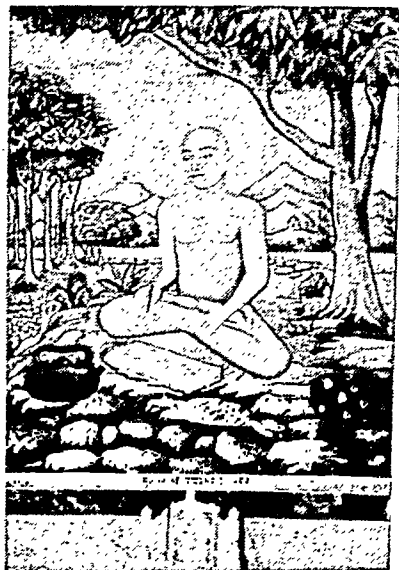
मुनिवर पद्मप्रभमलधारि देव

दिल्ली का प्रसिद्ध
दिगम्बर जैन मन्दिर
(भारत नगर)
इस मन्दिर का
शिलान्यास
पूज्य गुरुदेव के
कर-कमलों द्वारा
सम्पन्न हुआ था।
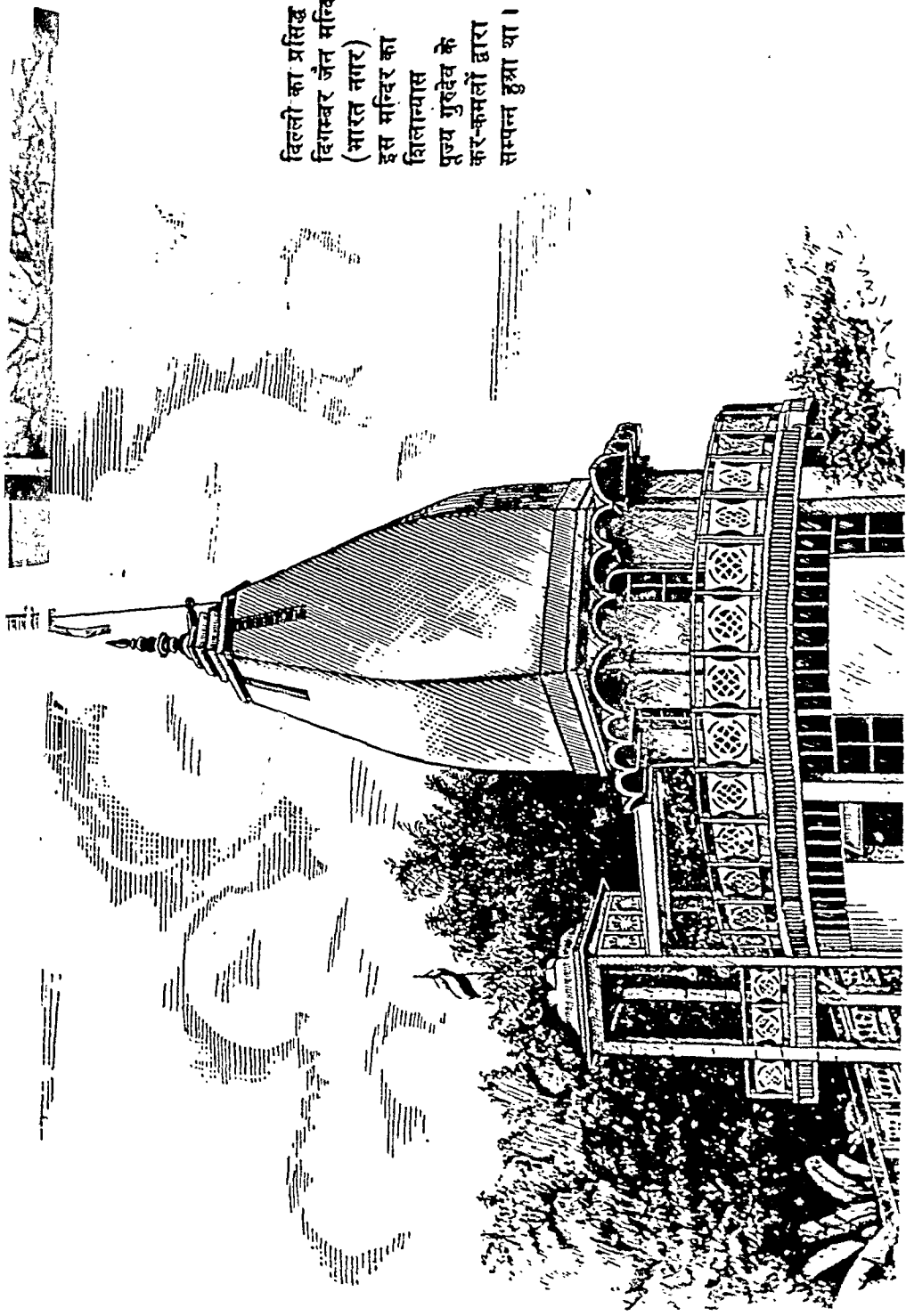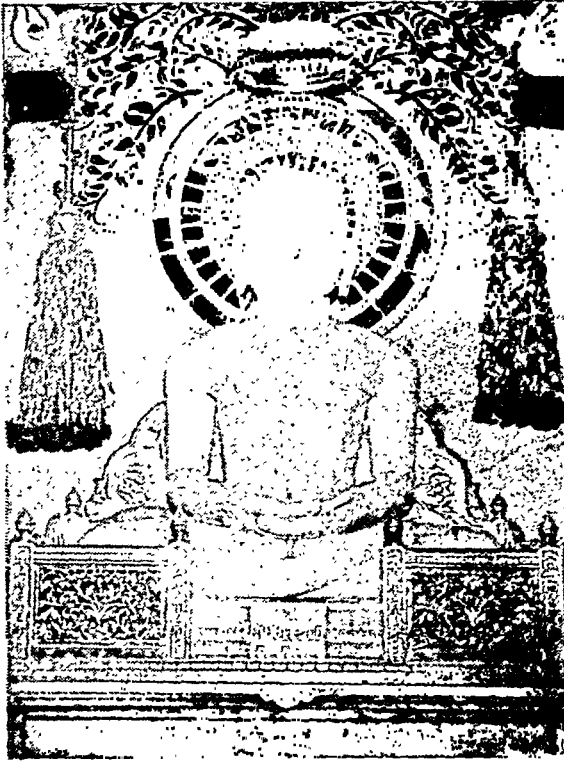
श्री सीमंधर स्वामी दिगम्बर जैन मन्दिर सोनगढ़ में विराजमान
सीमंधर स्वामी की भव्य प्रतिमा ।
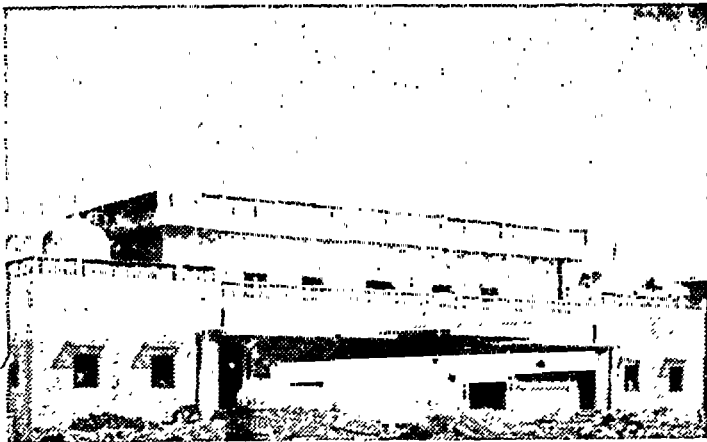
श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट भवन, जयपुर

'जिन्होंने ज्ञायक स्वभाव आत्मा का अनुभव कर हमें ज्ञान मार्ग पर चलने की अपूर्व शिक्षा दी, ऐसे परम वीतराग मार्ग के उपदेष्टा पूज्य श्री कानजी स्वामी के चरणों में विनम्र भाव से श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मंगल कामना करते हैं कि उनकी पावन जन्म जयन्ती हमारे समान भूले-भटके प्राणियों को सन्मार्ग का दर्शन कराने में समर्थ हो।'

पूज्य गुरुदेव चिरायु हों !
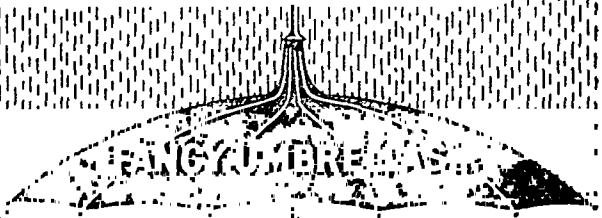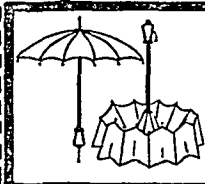
आध्यात्म - प्रवक्ता पूज्य श्री कानजी स्वामी जी की
८७ वीं जन्म-जयन्ती के शुभ अवसर पर
हमारी मंगल कामनायें लीजिये।

शुभ कामनाओं सहित

लुहाड़िया ब्रादर्स

प्रसिद्ध मिलों के कपड़ों के थोक विक्रेता

पुरोहित जी का नया कटला, जयपुर-३ (राज०)

दूरभाष : कार्यालय : 72839 निवास : 73946

अन्य सहयोगी प्रतिष्ठान :

लुहाड़िया टेक्सटाइल,
बाम्बे डाइंग मिल के कपड़ों का रिटेल शो रूम
मिर्जा इस्माइल रोड, जयपुर-3 दूरभाष : 75869

लुहाड़ियाज एम्पोरियम,
जियाजी राव काटन मिल्स लि० के कपड़ों का रिटेल शो रूम
136, बापू बाजार, जयपुर-3

लुहाड़ियाज,
सवाई मानसिंह हाइवे, जयपुर-3
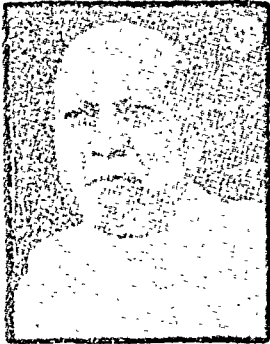
परम उपकारी सन्त, पूज्य गुरुदेव

श्री कानजी स्वामी जी

को

हमारा

शतः शतः प्रणाम !

श्रद्धा अर्पण :

महावीर प्रसाद श्री राम जैन

भारत टिम्बर ट्रेडिंग क०

2800, सदर टिम्बर मार्केट,
दिल्ली-6
दूरभाप : 514734

26, डिप्टीगंज,
सदर बाजार, दिल्ली-6
दूरभाप : 514648
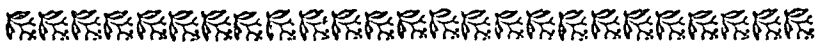
शुभ
कामनाओं
सहित

शाश्वत सुख के मार्ग दर्शक, धर्म के यथार्थ स्वरूप के दिग्दर्शक, परम पूज्य सत्पुरुष, आध्यात्मिक क्रांतिकारी सन्त कानजी स्वामी जी के श्री चरणों में शतः शतः नमन।

नत मस्तक

नन्द राम सूरज मल

कागज के थोक विक्रेता एवं स्टेशनरी निर्माता

वितरक :

*

१०१७, चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६

दूरभाष :
262608
277620

तीर्थंकर महावीर की निर्वाण रजत-शती

के उपलक्ष में प्रकाशित

पूज्य श्री कानजी स्वामी विशेषांक

सफल हो !

★

हमारी कामना है कि स्वामी जी चिरायु हों एवं युगों तक

हमें सत्पथ का प्रदर्शन कराते रहें !!

तेरी आत्मा के आश्रय से ही तेरा मोक्ष मार्ग है, तू अकेला अकेला ही अपने से मोक्ष मार्ग की साधना कर सकता है।

—श्री कानजी स्वामी

•

जिन्होंने शाश्वत सुख का मर्म बताया है ऐसे महापुरुष को हमारा शतः शतः नमन।

•

श्रद्धा के पुष्पों में एक पुष्प हमारा भी स्वीकार करें।

"आत्मा है वह भगवान है। भले ही उसे अपने स्वरुप की खबर नहीं है, तथापि उसका भगवान पना मिट नहीं गया है। अपने को भगवान स्वरुप जाने वह भगवान होता है।"

●

भगवान आत्मा......हा हा......जब गुरुदेव के मुखारविंद से आत्म विभोर हो शब्द निकलता है, तब सच्चे आत्मानुसुख की अनुभूति होती है।

●

हम पर स्वामी जी का बहुत उपकार है। आपने सच्चे वीतराग धर्म का उपदेश देकर धर्म को सही समझने की दृष्टि प्रदान की है।

हम अपने हार्दिक श्रद्धासुमन अर्पण करते हैं!

●

आध्यात्मिक सत्पुरुष, बाल ब्रह्मचारी, परम पूज्य, सद्गुरुदेव,
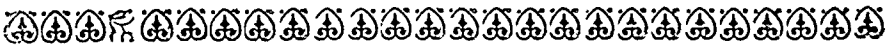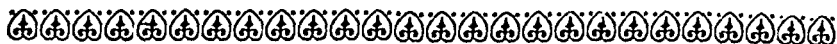
परम कृपालु श्री कानजी स्वामी जी

की 87 वीं जन्म जयन्ती पर

हमारी हार्दिक मंगल कामनायें स्वीकार करें।

हे गुरुदेव ! आप दीर्घायु हों और हमें सदा धर्म उपदेश देते हुए वीतराग मार्ग पर चलायें।

भावना है

श्री गुरुदेव के मुखारविंद से युगों युगों तक वीतरागी वाणी खिरती रहे

★

"परम श्रद्धेय पूज्य कानजी स्वामी जी का हम पर महान उपकार है, जिन्होंने जबकि सर्व साधारण की धर्म की ओर से रुचि हटती जा रही थी, ऐसे समय में महान आध्यात्मिक दृष्टिकोण देकर महान ग्रन्थों के मनन की ओर सर्व साधारण को आकर्षक किया है।"

हमारी मंगल भावना है कि पूज्य स्वामी हमारे बीच चिरकाल तक विद्यमान रहे और भव्य जीवों का नित्य सच्चे आत्मधर्म का स्वरूप समझाकर मोक्ष मार्ग पर लगावें।

अश्वनि कुमार छोटालाल महेता

तथा

छोटालाल भीखालाल महेता

मीभि स्ट्रीट, बम्बई-३

पूज्य गुरुदेव

सत्पुरुष

कानजी स्वामी जी

को

हमारी विनम्र

श्रद्धांजलि !
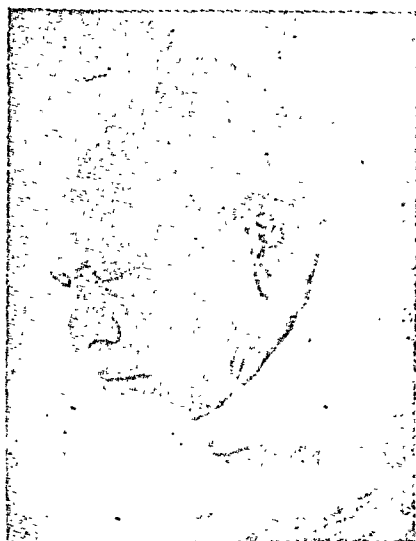
बल्लुभाई चुनीलाल शाह

'वसंत' पेडर रोड,

बम्बई-२६

भगवान कुन्द कुन्दाचार्य की वाणी के समर्थ उद्घोषक, आध्यात्मिक सत्पुरुष, पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी जी को शतशः प्रणाम !
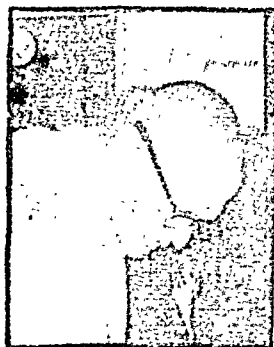
शुभाकांक्षी

अनिल ट्रेडर्स

डीलर्स एण्ड एक्सपोर्टरस् इन आप्टीकल गुड्स

प्रोप्राइटरस्—कान्ती लाल मोटाणी

दूरभाष { 317626
319147

ग्राम : KUNDKAHAN

कार्यालय : 1, आनन्द भवन
प्रिन्सेस स्ट्रीट,
बम्बई 400002.

राग-द्वेष की उत्पत्ति नहीं होना अहिंसा है और राग-द्वेष की उत्पत्ति होना हिंसा है यही जिनागम का सार है।

—अमृतचन्द्राचार्य देव

●
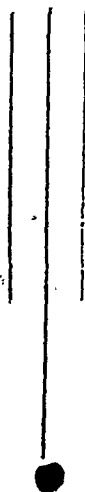
आत्म धर्म के राही, आपको हमारा

शत शत वन्दन !

हमारा मनोदय है कि आप श्री का अपूर्व प्रभावना योग चिर काल तक समस्त विश्व को उपलब्ध होता रहे ।

'वीतराग वाणी के समर्थ उद्घोषक, प्रख्यात क्रांतिकारी आध्यात्मिक सन्त, परम पूज्य श्रद्धेय सद्गुरुदेव श्री कानजी का हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। हम हार्दिक श्रद्धासुमन पूज्य स्वामी जी के श्रीचरण में अर्पित करते हुए कामना करते हैं कि सद्गुरुदेव दीर्घायु बन कर भगवान महावीर के पवित्र शासन की चमत्कारिक प्रभावना करते रहें।'
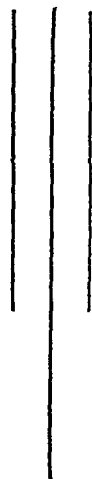
विनम्र :

हीरा लाल पाटोदी   मानक चन्द पाटोदी

फर्म :

बछराज हजारी मल पाटोदी

लोहारदा (इन्दौर) म० प्र०

आत्मा का बोध

नहीं हो सकता :

1. स्पर्शन इन्द्रिय से............क्योंकि आत्मा में स्पर्श नहीं है ।
2. रसना इन्द्रिय से...... .... क्योंकि आत्मा में रस नहीं है ।
3. नासिका इन्द्रिय से· ....क्योंकि आत्मा में गंध नहीं है ।
4. चक्षु इन्द्रिय से....... ...क्योंकि आत्मा का रूप नहीं है ।
5. शब्द से ....क्योंकि आत्मा शब्द रहित है ।
6. आकृति से... ....क्योंकि आत्मा आकार रहित है ।

आत्मा अस्पर्श है, अरस है, अगंध है, अरूप है, अशब्द है, आकारहीन है। केवल चेतना में उसका अनुभव किया जा सकता हैं क्योंकि आत्मा चेतना स्वरूप है ।

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी (राजस्थान) द्वारा प्रसारित ।

परम कृपालु गुरुदेव की हम पर सदा से अपार कृपा रही है। उन्होंने हमें संसार से पार होने का उपाय बता कर हमारा महान उपकार किया है। इस हेतु हमारा उनके चरणों में शत-शत वन्दन । . ...

गोकल चन्द पहाड़्या
चुन्नी लाल पहाड़्या
छगन लाल पहाड़्या

★

फर्म : **रिखव चन्द गोकल चन्द**

लोहारदा (इन्दौर) म. प्र.

वीतराग वाणी के समर्थ उद्घोषक
परम पूज्य गुरुदेव कानजी स्वामी जी
के चरणों में
हमारी विनम्र श्रद्धांजलि !

●

चिरयुग तक हमें गुरुदेव की वाणी का अमृत-पान मिलता रहें ।

●

हमारा जीवन

आध्यात्मिकता से ओतप्रोत हो

ऐसी मांगलिक कामना के साथ......

"तीर्थंकर महावीर एवं वीतराग वाणी के समर्थ उद्घोषक, महान् धर्म प्रचारक, आध्यात्म वेत्ता, तत्त्व चिंतक, मंगल ज्ञान मूर्ति, परम पूज्य गुरुदेव श्रद्धेय कानजी स्वामी जी को हमारा शत् शत् अभिनन्दन !......"

जिन्होंने आत्मा का स्वरूप समझाकर भवभ्रमण के दुख से बचाया, ऐसे सत्पुरुष को हमारा शतः शतः नमन !

●

"न राग ही आत्मा का स्वभाव हैं और न द्वेष तथा मोह ही।
ये सब आत्मा से भिन्न जड़ पदार्थ हैं।"